लेशमात्र भी भक्ति है, वह समस्त देहधारियोंके लिये वन्दनीय है।

उज्जयिनीमें चन्द्रसेन नामक एक राजा थे। वे उसी नगरमें निवास करनेवाले भगवान् महाकालका पूजन करते थे। शिवके पार्षदोंमें अग्रगण्य तथा अमंगलोंको जीतनेवाले विश्ववन्दित मणिभद्रजी राजा चन्द्रसेनके सखा हो गये थे। उन्होंने राजापर प्रसन्न होकर एक समय उन्हें दिव्य चिन्तामणि प्रदान की, जो कौस्तुभमणि तथा सूर्यके समान देदीप्यमान थी। वह देखने, सुनने अथवा ध्यान करनेपर भी मनुष्योंको मनोवांछित वस्तु प्रदान करती थी। राजा उस चिन्तामणिको कण्ठमें धारण करके जब सिंहासनपर बैठते थे, तब देवताओंमें सूर्यनारायणकी भाँति उनकी शोभा होती थी। राजा चन्द्रसेनके विषयमें यह सब बात सुनकर समस्त राजाओंके मनमें उस मणिके प्रति लोभकी मात्रा बढ़ गयी और वे क्षुब्ध रहने लगे। एक बार उन सबने बहुत-सी सेना साथ लेकर क्रोधपूर्वक पृथ्वीको कम्पित करते हुए आक्रमण किया और उज्जयिनीके चारों द्वारोंको घेर लिया। अपनी पुरीको घिरी हुई देख राजा चन्द्रसेन भगवान् महाकालकी शरणमें गये और मनको सन्देहरहित करके दृढ़ निश्चयके साथ उपवासपूर्वक दिन-रात अनन्यभावसे भगवान् गौरीपतिकी आराधना करने लगे। उन्हीं दिनों उस नगरमें कोई ग्वालिन रहती थी, जिसके एकमात्र पुत्र था। वह विधवा थी और उज्जयिनीमें बहुत दिनोंसे रहती थी। वह अपने पाँच वर्षके बालकको लिये हुए महाकालके मन्दिरमें गयी और राजा चन्द्रसेनद्वारा की हुई गिरिजापतिकी महापूजाका दर्शन किया। शिवपूजनका वह आश्चर्यमय उत्सव देखकर उसने भगवान्को प्रणाम किया और पुनः अपने निवासस्थानपर लौट आयी। ग्वालिनके उस बालकने भी वह सारी पूजा देखी थी। अतः घर आनेपर उसने कौतूहलवश शिवजीकी पूजा प्रारम्भ की, जो संसारसे वैराग्य प्रदान करनेवाली है। एक सुन्दर पत्थर लाकर उसे घरसे थोड़ी ही दूरपर एकान्त स्थानमें रख दिया और उसीको शिवलिंग माना। फिर अपने हाथसे मिलने लायक जो कोई भी फूल दिखायी दिये, उन सबका संग्रह करके उस बालकने जलसे शिवलिंगको स्नान कराया और भक्तिपूर्वक पूजन किया। तत्पश्चात् कृत्रिम अलंकार, चन्दन, धूप, दीप और अक्षत आदि उपचारोंसे अर्चना करके मनःकल्पित दिव्य वस्तुओंसे भगवान्को नैवेद्य निवेदन किया। सुन्दर-सुन्दर पत्रों और फूलोंसे बार-बार पूजा करके भाँति-भाँतिसे नृत्य किया और बारंबार भगवान्के चरणोंमें सीस झुकाया। इस प्रकार अनन्यचित्त होकर शिवकी आराधनामें लगे हुए अपने पुत्रको ग्वालिनने बड़े प्यारसे भोजनके लिये बुलाया। उसका मन तो पूजामें लगा हुआ था, माताके बहुत बुलानेपर भी उसे भोजन करनेकी इच्छा न हुई। तब उसकी माँ स्वयं उसके पास गयी और उसे शिवके आगे आँख बंद करके ध्यान लगाये बैठा देख हाथ पकड़कर खींचने लगी। इतनेपर भी जब वह न उठा, तब उसने क्रोधमें आकर उसे खूब पीटा। खींचने और मारने-पीटनेपर भी जब उसका पुत्र नहीं आया, तब उसने वह शिवलिंग उठाकर दूर फेंक दिया और उसपर चढ़ायी हुई सारी पूजा-सामग्री नष्ट कर दी। यह देख बालक 'हाय-हाय' करके रो उठा। रोषमें भरी हुई ग्वालिन अपने बेटेको डाँट-डपटकर पुनः घरमें चली गयी। भगवान् शिवकी पूजाको माताके द्वारा नष्ट की हुई देखकर वह बालक 'देव! देव! महादेव!' की पुकार करते हुए सहसा मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। उसके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा प्रवाहित हो रही थी। दो घड़ी बाद जब उसे चेत हुआ, तब उसने

आँखें खोलीं और देखा—उसका वही निवासस्थान परम सुन्दर शिवालय हो गया था। मणियोंके खम्भे उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। उसके द्वार, किवाड़ तथा सदर फाटक सब सुवर्णमय हो गये थे। वहाँकी भूमि बहुमूल्य नीलमणि तथा हीरोंकी वेदिकाओंसे सुशोभित थी। यह सब देखकर वह सहसा उठा और हर्षसे परमानन्दके समुद्रमें निमग्न-सा हो गया। उसने समझ लिया कि यह सब शिवजीकी पूजाका माहात्म्य है। उसीके प्रभावसे यह दिव्य विभूति प्रकट हुई है। तत्पश्चात् उस बालकने अपनी माताके अपराधकी शान्तिके लिये पृथ्वीपर मस्तक रखकर साष्टांग प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'देव! उमापते! मेरी माताका अपराध क्षमा कीजिये। वह मूढ़ है, आपके प्रभावको नहीं जानती है। शंकर! आप उसपर प्रसन्न होइये, यदि मुझमें आपकी भक्तिसे उत्पन्न हुआ कुछ भी पुण्य है, तो उससे मेरी माता आपकी दया प्राप्त करे।'

इस प्रकार भगवान् शंकरको बार-बार प्रसन्न करके उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर सूर्यास्तके समय वह बालक शिवालयसे बाहर निकला और उसने अपने शिविरको देखा। वह इन्द्रनगरके समान शोभा पा रहा था। वहाँ सब कुछ तत्काल सुवर्णमय होकर विचित्र वैभवसे प्रकाशित होने लगा। भवनके भीतर प्रवेश करके बालकने देखा, उसकी माँ बहुमूल्य रत्नमय पलंगपर बिछी हुई श्वेत रंगकी शय्यापर निर्भय होकर सो रही है और उसीको याद करती है। उसने माताको जगाया। ग्वालिन बड़े वेगसे उठी और अपनेको, अपने पुत्रको तथा अपने घरको भी अपूर्व रूपमें देखकर आनन्दसे विह्वल हो गयी। पुत्रके मुखसे गिरिजापति शंकरका वह सब प्रसाद सुनकर ग्वालिनने राजाको सूचना दी, जो निरन्तर भगवान् शिवके भजनमें लगे रहते थे। राजा अपना नियम पूरा करके रातमें सहसा वहाँ आये और ग्वालिनके पुत्रका वह प्रभाव, जो शंकरजीके सन्तोषसे प्रकट हुआ था, देखा। सुवर्णमय शिव-मन्दिर, रत्नमय शिवलिंग तथा सुन्दर मणि-माणिक्योंसे जगमगाता हुआ ग्वालिनका महल देखकर राजा चन्द्रसेन पुरोहित और मन्त्रियोंके साथ दो घड़ीतक आश्चर्य-चकित हो परमानन्दमें डूबे रहे। तत्पश्चात् उन्होंने नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहाते हुए ग्वालिनके उस बालकको हृदयसे लगा लिया। भगवान् शिवके इस अद्भुत माहात्म्यकी चर्चा समस्त पुरवासियोंमें बड़े वेगसे फैली और यही कहते-सुनते वह रात मानो क्षणभरमें व्यतीत हो गयी।

युद्धके लिये आये हुए और नगरको चारों ओरसे घेरकर खड़े हुए राजाओंने भी प्रातःकाल दूतोंके मुखसे यह परम अद्भुत समाचार सुना। सुनते ही उनके मनसे वैरभाव निकल गया। उन्होंने सहसा हथियार डाल दिये और चकित होकर महाराज चन्द्रसेनकी आज्ञासे नगरमें प्रवेश किया। उस रमणीय नगरीमें प्रवेश करके भगवान् महाकालको प्रणाम करनेके पश्चात् सब राजा उस ग्वालिनके घरपर आये। वहाँ राजा चन्द्रसेनने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। वे बहुमूल्य आसनोंपर बैठे और प्रीतिपूर्वक विस्मित एवं आनन्दित हुए। गोप-बालकपर कृपा करनेके लिये स्वतः प्रकट हुए शिवालय और शिवलिंगका दर्शन करके सब राजाओंने भगवान् शिवको अपनी उत्तम बुद्धि समर्पित की, उनमें भक्तिपूर्वक मन लगाया।

इसी समय सब देवताओंसे पूजित परम तेजस्वी वानरराज हनुमान्जी वहाँ प्रकट हुए। उनके आते ही सब राजाओंने बड़े वेगसे उठकर भक्तिभावसे विनीत हो उन्हें नमस्कार किया। तब हनुमान्जीने कहा—'राजाओ! भगवान् शिवकी पूजाके सिवा देहधारियोंके लिये दूसरी कोई गति नहीं है। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि इस गोप-बालकने शनिवारको प्रदोषव्रतके दिन बिना

मन्त्रके भी शिवका पूजन करके उन्हें पा लिया। शनिवारको प्रदोषव्रत समस्त देहधारियोंके लिये दुर्लभ है। कृष्ण पक्ष आनेपर तो वह और भी दुर्लभ है। गोपवंशकी कीर्ति बढ़ानेवाला यह बालक संसारमें सबसे अधिक पुण्यात्मा है। इसकी वंश-परम्परामें आठवीं पीढ़ीमें महायशस्वी नन्द उत्पन्न होंगे, जिनके यहाँ साक्षात् भगवान् नारायण उनके पुत्ररूपसे प्रकट हो श्रीकृष्णके नामसे प्रसिद्ध होंगे। आजसे यह गोपालनन्दन संसारमें 'श्रीकर' नामसे विख्यात होगा।'

अंजनिनन्दन हनुमान्‌जी ऐसा कहकर उस गोपबालकको शिवोपासनाके आचार-व्यवहारका उपदेश दे वहीं अन्तर्धान हो गये। वे सब राजा हर्षमें भरकर महाराज चन्द्रसेनकी आज्ञा ले जैसे आये थे वैसे ही लौट गये। महातेजस्वी श्रीकर भी हनुमान्‌जीका उपदेश पाकर धर्मज्ञ ब्राह्मणोंके साथ शंकरजीकी आराधना करने लगा। समयानुसार भक्त श्रीकर गोप तथा राजा चन्द्रसेन दोनोंने भक्तिपूर्वक शिवकी आराधना करके परम पद प्राप्त किया। यह परम पवित्र उपाख्यान कहा गया। यह गोपनीय रहस्य है, सुयश एवं पुण्यसमृद्धिको बढ़ानेवाला है तथा गौरीपति भगवान् शिवके चरणारविन्दोंमें भक्तिभावकी वृद्धि और पापराशिका निवारण करनेवाला है।

प्रदोषमें शिवपूजनकी अवहेलनासे दोषकी प्राप्तिके प्रसंगमें विदर्भराज और उसके पुत्रकी कथा

सूतजी कहते हैं—त्रयोदशी तिथिमें सायंकाल प्रदोष कहा गया है। प्रदोषके समय महादेवजी कैलासपर्वतके रजतभवनमें नृत्य करते हैं और देवता उनके गुणोंका स्तवन करते हैं। अतः धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको प्रदोषमें नियमपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा, होम, कथा और गुणगान करने चाहिये। दरिद्रताके तिमिरसे अन्धे और भवसागरमें डूबे हुए संसारभयसे भीरु मनुष्योंके लिये यह प्रदोषव्रत पार लगानेवाली नौका है। भगवान् शिवकी पूजा करनेसे मनुष्य दरिद्रता, मृत्यु-दुःख और पर्वतके समान भारी ऋण-भारको शीघ्र ही दूर करके सम्पत्तियोंसे पूजित होता है।

विदर्भ देशमें सत्यरथ नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे, जो सब धर्मोंमें तत्पर, धीर, सुशील और सत्यप्रतिज्ञ थे। धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करते हुए उनका बहुत-सा समय सुखपूर्वक बीत गया। तदनन्तर शाल्व देशके राजाओंने विदर्भनगरपर आक्रमण करके उसे चारों ओरसे घेर लिया। अपनी पुरीको शत्रुओंसे घिरी हुई देख विदर्भराज विशाल सेना साथ लेकर युद्धके लिये आये। बलोन्मत्त शाल्वदेशीय क्षत्रियोंके साथ राजाका अत्यन्त भयंकर युद्ध हुआ। शाल्वोंकी बहुत बड़ी सेना मारी गयी; परंतु अन्तमें विदर्भराज भी उनके हाथसे मारे गये। मन्त्रियोंसहित उस महारथी वीर राजाके मारे जानेपर मरनेसे बचे हुए सैनिक भाग खड़े हुए। उस समय विदर्भराज सत्यरथकी एक पतिव्रता स्त्री अत्यन्त शोकग्रस्त हो रातके समय राजभवनसे निकलकर पश्चिम दिशाकी ओर चली गयी। वह गर्भवती थी। सबेरा होनेपर धीरे-धीरे मार्गसे जाती हुई उस साध्वी रानीने बहुत दूरका रास्ता तै कर लेनेके पश्चात् एक स्वच्छ तालाब देखा और वह उसके किनारे शोभा पानेवाले एक छायादार वृक्षके नीचे बैठ गयी। भाग्यवश उसी निर्जन स्थानमें वृक्षके ही नीचे पतिव्रता रानीने उत्तम गुणोंसे युक्त शुभ

मुहूर्तमें एक पुत्रको जन्म दिया। तत्पश्चात् अत्यन्त प्याससे व्याकुल हो वह सुन्दर अंगोंवाली रानी जलाशयमें उतरी। इतनेमें ही एक बड़े भारी ग्राहने आकर उसे अपना ग्रास बना लिया। वह बालक पैदा होते ही माता-पितासे हीन हो गया और भूख-प्याससे पीड़ित हो उस सरोवरके किनारे जोर-जोरसे रोने लगा। वह नवजात शिशु जब इस प्रकार क्रन्दन कर रहा था, उसी समय भाग्यवश वहाँ एक श्रेष्ठ ब्राह्मणी आ पहुँची। वह भी अपने एक वर्षके बालकको गोदमें लिये हुए आयी थी। ब्राह्मणी निर्धन और विधवा थी।

घर-घर भीख माँगकर जीवन-निर्वाह करती थी। उसका नाम उमा था। उसी सती-साध्वी ब्राह्मणीने उस राजकुमारको देखा। उसे अनाथकी भाँति क्रन्दन करते देखकर उसने मन-ही-मन विचार किया—'अहो! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात दिखायी देती है कि यह नवजात शिशु, जिसकी नाल भी अभीतक नहीं कटी है, पड़ा हुआ है। इसकी माता कहाँ चली गयी। न इसका पिता है न और कोई बन्धु-बान्धव है। यह दीन अनाथ बालक बिना बिस्तरके भूमिपर सो रहा है। यह चाण्डालका पुत्र है या शूद्रका, वैश्यका बालक है या ब्राह्मणका अथवा यह क्षत्रियका शिशु है। इसका निश्चय कैसे किया जाय? मैं इस शिशुको उठाकर अपने सगे पुत्रकी तरह अवश्य पालन कर सकती हूँ; परंतु यह किस कुलका है, यह न जाननेके कारण इसे छूनेका साहस नहीं होता।' वह पतिव्रता ब्राह्मणी जब इस प्रकार कह रही थी, उसी समय कोई संन्यासी महात्मा वहाँ आ गये। वे ऐसे जान पड़ते थे, मानो साक्षात् शंकर हों। उन श्रेष्ठ भिक्षुने उस स्त्रीसे कहा—'ब्राह्मणी! खेद न करो, हृदयकी संशयवृत्ति दूरकर इस बालककी रक्षा करो। इससे तुम्हें शीघ्र ही परम कल्याणकी प्राप्ति होगी।' इतना कहकर वे दयालु भिक्षु तुरंत वहाँसे चले गये। उनके जानेके बाद ब्राह्मणीने विश्वासपूर्वक उस बालकको लेकर अपने घरकी ओर प्रस्थान किया। उस राजकुमारका ब्राह्मणीने अपने बेटेके समान ही पालन-पोषण किया। एकचक्रा नामक नगरमें उस ब्राह्मणीका घर था। वह भिक्षाके अन्नसे ही अपने पुत्र और राजकुमारको भी पालने लगी। ब्राह्मणोंने ब्राह्मणीके तथा राजाके भी पुत्रका संस्कार कर दिया। वे दोनों सर्वत्र सम्मानित होकर दिन-दिन बढ़ने लगे। समय आनेपर उनका उपनयन-संस्कार हुआ। अब वे दोनों बालक एक साथ रहकर नियमोंका पालन करने लगे। दोनों माताके साथ प्रतिदिन भिक्षाके लिये जाते थे। एक दिन वह ब्राह्मणी उन दोनों बालकोंके साथ भीख माँगती हुई दैवयोगसे देव-मन्दिरमें गयी। वहाँ बड़े-बूढ़े ऋषि-मुनि रहा करते थे। उन दोनों बालकोंको देखकर परम बुद्धिमान् शाण्डिल्य नामक मुनिने कहा—'अहो! दैवका बल बड़ा विचित्र है। कर्मोंका उल्लंघन करना किसी भी जीवके लिये अत्यन्त कठिन है। देखो न, यह बालक दूसरी माताकी शरण लेकर भिक्षासे जीवननिर्वाह करता है। इस ब्राह्मणीको

ही श्रेष्ठ माताके रूपमें पाकर ब्राह्मण बालकके साथ ब्राह्मणभावको प्राप्त हो गया है।' शाण्डिल्य मुनिका यह वचन सुनकर ब्राह्मणीको बड़ा विस्मय हुआ। उसने भरी सभामें मुनिको प्रणाम करके पूछा—'ब्रह्मन्! एक संन्यासीके कहनेसे मैं इस बालकको अपने घर ले आयी हूँ। यद्यपि अभीतक इसके कुलका पता नहीं लगा, तथापि मैं पुत्रकी भाँति इसका पालन-पोषण करती हूँ। आप ज्ञानके नेत्रोंसे देखते हैं, अतः आपसे मैं यह जानना चाहती हूँ कि यह बालक किस कुलमें उत्पन्न हुआ है और इसके माता-पिता कौन हैं?'

मुनि बोले—यह विदर्भदेशके राजाका पुत्र है।

इतना कहकर मुनिने उस बालकके पिताके युद्धमें मारे जानेका तथा उसकी माताके ग्राहद्वारा ग्रस्त होनेका सब समाचार पूर्णरूपसे बतलाया। यह सुनकर ब्राह्मणीको और भी आश्चर्य हुआ। अतः उसने फिर प्रश्न किया—'महामुने! वे राजा सम्पूर्ण भोगोंको छोड़कर युद्धमें क्यों मरे और इस बालकको दरिद्रता कैसे प्राप्त हुई? अब दरिद्रताको पूर्णतः नष्ट करके यह पुनः राज्य कैसे प्राप्त करेगा? मेरा यह पुत्र भी भिक्षान्नसे ही जीवन-निर्वाह करता है। अतः इसकी दरिद्रताके निवारणका भी क्या उपाय है, यह बतानेकी कृपा करें?'

शाण्डिल्यने कहा—इस राजकुमारके पिता विदर्भराज पूर्वजन्ममें पाण्ड्य देशके श्रेष्ठ राजा थे। वे सब धर्मोंके ज्ञाता थे और सम्पूर्ण पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन करते थे। एक दिन प्रदोषकालमें राजा भगवान् शंकरका पूजन कर रहे थे और बड़ी भक्तिसे त्रिलोकीनाथ महादेवजीकी आराधनामें संलग्न थे। उसी समय नगरमें सब ओर बड़ा भारी कोलाहल मचा। उस उत्कट शब्दको सुनकर राजाने बीचमें ही भगवान् शंकरकी पूजा छोड़ दी और नगरमें क्षोभ फैलनेकी आशंकासे राजभवनसे बाहर निकल गये। इसी समय राजाका महाबली मन्त्री शत्रुको पकड़कर उनके समीप ले आया। वह शत्रु पाण्ड्यराजका ही सामन्त था। उसे देखकर राजाने क्रोधपूर्वक उसका मस्तक कटवा दिया। शिवपूजा छोड़कर नियमको समाप्त किये बिना ही राजाने रातमें भोजन भी कर लिया। इसी प्रकार राजकुमार भी प्रदोषकालमें शिवजीकी पूजा किये बिना ही भोजन करके सो गया। वही राजा दूसरे जन्ममें विदर्भराज हुआ था। शिवजीकी पूजामें विघ्न होनेके कारण शत्रुओंने उसको सुखभोगके बीचमें ही मार डाला। पूर्वजन्ममें जो उसका पुत्र था, वही इस जन्ममें भी हुआ है। शिवजीकी पूजाका उल्लंघन करनेके कारण यह दरिद्रताको प्राप्त हुआ है। इसकी माताने पूर्वजन्ममें छलसे अपनी सौतको मार डाला था। उस महान् पापके कारण ही वह इस जन्ममें ग्राहके द्वारा मारी गयी। मैं सत्य कहता हूँ, परलोकमें हितकी बात कहता हूँ, शास्त्रोंका सार एवं उपनिषदोंका हृदय कहता हूँ, इस भयंकर असार संसारको प्राप्त हुए जीवके लिये ईश्वरके चरणारविन्दोंकी सेवा ही सार वस्तु है। जो प्रदोषकालमें अनन्यचित्त होकर परमेश्वरके चरणारविन्दोंकी पूजा करते हैं, वे इसी संसारमें सदा बढ़नेवाले धन-धान्य, स्त्री-पुत्र, सौभाग्य और सम्पत्तिके द्वारा सबसे बढ़कर होते हैं। ब्राह्मणी! यह तुम्हारा पुत्र पूर्वजन्ममें उत्तम ब्राह्मण था। इसने सारी आयु केवल दान लेनेमें बितायी है। यज्ञ आदि सत्कर्म नहीं किये हैं। इसीलिये यह दरिद्रताको प्राप्त हुआ है। उस दोषका निवारण करनेके लिये अब यह भगवान् शंकरकी शरणमें जाय।

प्रदोषव्रतकी विधि, इसके पालनसे द्विजकुमार और राजकुमारकी दरिद्रताका निवारण तथा राज्यकी प्राप्ति

सूतजी कहते हैं—मुनिके इस प्रकार कहनेपर साध्वी ब्राह्मणीने उन्हें प्रणाम करके शिवपूजनकी विधिका क्रम पूछा।

शाण्डिल्य बोले—दोनों पक्षोंकी त्रयोदशीको मनुष्य जब निराहार रहे, तब सूर्यास्तसे तीन घड़ी पहले स्नान करे। फिर श्वेत वस्त्र धारण करके धीर पुरुष सन्ध्या और जप आदि नित्यकर्मकी विधि पूरी करके मौन हो शास्त्रविधिका पालन करते हुए भगवान् शिवकी पूजा प्रारम्भ करे। भगवद्विग्रहके आगेकी भूमिको नये निकाले हुए शुद्ध जलसे भलीभाँति लीप-पोतकर सुन्दर मण्डल बनावे। धौत-वस्त्र आदिके द्वारा उस मण्डलको सब ओरसे घेर दे। ऊपरसे चँदोवा आदि लगाकर फल-फूल और नवीन अंकुरोंसे उसको सजावे। मण्डलके मध्यकी भूमिमें पाँच रंगोंसे युक्त विचित्र कमल अंकित करके उसीपर सुस्थिर एवं उत्तम आसन बिछाकर बैठे और हृदयमें भक्तिभावसे युक्त हो पूजाकी सब सामग्री एकत्र करे। फिर पवित्र भावसे शास्त्रोक्त मन्त्रद्वारा देवपीठको आमन्त्रित करे। तत्पश्चात् क्रमशः आत्मशुद्धि और भूतशुद्धि आदि करके तीन प्राणायाम करे। उसके बाद विन्दुयुक्त बीजाक्षरोंके द्वारा विधिपूर्वक मातृकान्यास करे। तदनन्तर परा देवताका ध्यान करके मातृकान्यासकी विधि पूरी करे। फिर परम शिवका ध्यान करके पीठके वाम भागमें गुरुको प्रणाम करे, दक्षिण भागमें गणेशजीको मस्तक झुकावे, दोनों अंशों (कन्धों) और ऊरुओं (जाँघों) में धर्म आदि (धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य) का न्यास करे। नाभि तथा पार्श्वभागोंमें अधर्म (अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य) आदिका न्यास करे। तत्पश्चात् हृदयमें अनन्त आदिका न्यास करके देवपीठपर मन्त्रका न्यास करे। आधारशक्तिसे लेकर ज्ञानात्मातकका क्रमशः न्यास करके हृदयमें एक कमलकी भलीभाँति भावना करे। वह कमल नौ शक्तियोंसे युक्त एवं परम सुन्दर हो। उसी कमलकी कर्णिकामें कोटि-कोटि चन्द्रमाओंके समान प्रकाशमान उमापति भगवान् शिवका ध्यान करे। भगवान्‌के तीन नेत्र हैं। मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट शोभा पाता है। जटाजूट कुछ-कुछ पीला हो गया है। उसपर रत्नजटित किरीट सुशोभित है। उनके कण्ठमें नील चिह्न है और अंग-अंगसे उदारता सूचित होती है। सर्पोंके हारसे उनकी बड़ी शोभा हो रही है। उनके एक हाथमें वरद और दूसरेमें अभयकी मुद्रा है। वे फरसा धारण करते हैं। उन्होंने नागोंका कंकण, केयूर, अंगद तथा मुद्रिका धारण कर रखी है। वे व्याघ्रचर्म पहने हुए रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हैं। उनके वाम भागमें गिरिराजनन्दिनी उमादेवीका चिन्तन करे। इस प्रकार महादेवजी तथा गिरिजादेवीका ध्यान करके क्रमशः गन्ध आदिसे उनकी मानसिक पूजा करे। पाँच वैदिक मन्त्रोंसे गन्ध आदि द्वारा पूर्वोक्त पाँच स्थानोंमें अथवा हृदयमें पूजा करे। फिर मूलमन्त्रसे तीन बार हृदयमें ही पुष्पांजलि दे। उसके बाद बाह्यपीठ (सिंहासन) पर महादेवजीका पुनः पूजन प्रारम्भ करे। पूजाके आरम्भमें एकाग्रचित्त होकर संकल्प पढ़े। तदनन्तर हाथ जोड़कर मन-ही-मन भगवान् शिवका ध्यान एवं आवाहन करे—'हे भगवान् शंकर! आप ऋण, पातक, दुर्भाग्य और दरिद्रता आदिकी निवृत्तिके लिये तथा सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेके लिये मुझपर प्रसन्न होइये। मैं दुःख और शोककी आगमें जल रहा हूँ, संसारभयसे पीड़ित हूँ, अनेक प्रकारके रोगोंसे व्याकुल और दीन हूँ। वृषवाहन! मेरी रक्षा कीजिये। देवदेवेश्वर! सबको निर्भय

कर देनेवाले महादेवजी! आप यहाँ पधारिये और मेरी की हुई इस पूजाको पार्वतीजीके साथ ग्रहण कीजिये।' इस प्रकार संकल्प और आवाहन करके पूजा आरम्भ करनी चाहिये। तत्पश्चात् मनुष्य एकाग्रचित्त हो रुद्रसूक्तका पाठ करते हुए वहाँ स्थापित किये हुए शंखके जलसे और पंचामृतसे महादेवजीका अभिषेक करके भाँति-भाँतिके मन्त्रोंसे आसन आदि उपचारोंको समर्पित करे। भावनाद्वारा दिव्य वस्त्रोंसे विभूषित स्वर्णसिंहासनकी कल्पना करे और उसीपर भगवान्‌को विराजमान करके अष्टगुणयुक्त अर्घ्य और पाद्य निवेदन करे। फिर शुद्ध जलसे आचमन कराकर मधुपर्क दे। उसके बाद पुनः आचमनके लिये जल देकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान करावे। फिर यज्ञोपवीत, वस्त्र और आभूषण अर्पण करे। परम पवित्र अष्टांगयुक्त चन्दन चढ़ावे। बिल्व, मदार, लाल कमल, धतूर, कनेर, सनईका फूल, चमेली, कुशा, अपामार्ग, तुलसी, जूही, चम्पा, भटकटइया और करवीरके फूलोंमेंसे जितने मिल जायँ, उन सबको शिवोपासक भगवान् शिवपर चढ़ावे। इनके अतिरिक्त भी नाना प्रकारके सुगन्धित पुष्प निवेदन करे। तत्पश्चात् लाल चन्दनसे उत्पन्न धूप और निर्मल दीप समर्पित करे। उसके बाद हाथ धोकर घी, नमकीन और साग, मिठाई, पूआ, शक्कर तथा गुड़के बने हुए पदार्थ एवं खीरका नैवेद्य भोग लगावे। मधु, दही और जल भी अर्पण करे। उस खीरका ही मन्त्रद्वारा प्रज्वलित की हुई अग्निमें हवन करे। यह होम शास्त्रोक्तविधिसे आचार्यके कथनानुसार सम्पन्न करना चाहिये। भगवान् शंकरको नैवेद्य देकर मुखशुद्धिके लिये उत्तम ताम्बूल अर्पण करे। धूप, आरती, सुन्दर छत्र, उत्तम दर्पणको वैदिक—तान्त्रिक मन्त्रोंद्वारा विधिपूर्वक समर्पित करे। यदि यह सब करनेकी अपनेमें शक्ति न हो, अधिक धनका अभाव हो, तो अपने पास जितना धन हो, उसीके अनुसार भगवान्‌की पूजा करे। गौरीपति भगवान् शंकर भक्तिपूर्वक भेंट किये हुए पुष्पमात्रसे भी सन्तुष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर स्तोत्रोंद्वारा स्तुति करके भगवान्‌को साष्टांग प्रणाम करे। फिर परिक्रमा करके पूजा समर्पित करनेके पश्चात् विधिपूर्वक श्रीगिरिजापतिकी प्रार्थना करे।

'देव! जगन्नाथ! आपकी जय हो। सनातन शंकर! आपकी जय हो। सम्पूर्ण देवताओंके अधीश्वर! आपकी जय हो। सर्वदेवपूजित! आपकी जय हो। सर्वगुणातीत! आपकी जय हो। सबको वर देनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। नित्य, आधाररहित, अविनाशी विश्वम्भर! आपकी जय हो, जय हो। सम्पूर्ण विश्वके लिये एकमात्र जानने योग्य महेश्वर! आपकी जय हो। नागराज वासुकिको आभूषणके रूपमें धारण करनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। गौरीपते! आपकी जय हो। चन्द्रार्धशेखर शम्भो! आपकी जय हो। कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी शिव! आपकी जय हो। अनन्त गुणोंके आश्रय! आपकी जय हो। भयंकर नेत्रोंवाले रुद्र! आपकी जय हो। अचिन्त्य! निरंजन! आपकी जय हो। नाथ! दयासिन्धो! आपकी जय हो। भक्तोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। दुस्तर संसारसागरसे पार उतारनेवाले परमेश्वर! आपकी जय हो। महादेव! मैं संसारके दुःखोंसे पीड़ित एवं खिन्न हूँ, मुझपर प्रसन्न होइये। परमेश्वर! समस्त पापोंके भयका अपहरण करके मेरी रक्षा कीजिये। मैं महान् दारिद्र्यके समुद्रमें डूबा हुआ हूँ। बड़े-बड़े पापोंने मुझे आक्रान्त कर लिया है। मैं महान् शोकसे नष्ट और बड़े-बड़े रोगोंसे व्याकुल हूँ। सब ओरसे ऋणके भारसे लदा हुआ हूँ। पापकर्मोंकी आगमें जल रहा हूँ और ग्रहोंसे पीड़ित हो रहा हूँ। शंकर! मुझपर प्रसन्न होइये*।'

* जय देव जगन्नाथ जय शंकर शाश्वत। जय सर्वसुराध्यक्ष जय सर्वसुरार्चित॥
जय सर्वगुणातीत जय सर्ववरप्रद। जय नित्य निराधार जय विश्वम्भराव्यय॥

निर्धन मनुष्य इस प्रकार पूजाके अन्तमें भगवान् गिरिजापतिकी प्रार्थना करे। धनाढ्य अथवा राजाको इस प्रकार भगवान् शंकरकी प्रार्थना करनी चाहिये—'हे शंकरजी! आपके प्रसादसे मेरे सदा आनन्द रहे। मेरे राज्यमें लुटेरे न रहें, सब लोग निरापद होकर रहें। पृथ्वीपर अकाल, महामारी आदिके सन्ताप शान्त हो जायँ। सबकी खेती धन-धान्यसे समृद्ध हो। सम्पूर्ण दिशाओंमें सुखका साम्राज्य छा जाय।' इस प्रकार प्रदोषव्रतके दिन गिरिजापति भगवान् शंकरकी आराधना करे, ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करे। इस प्रकार मैंने सब पापोंका नाश, सब प्रकारकी दरिद्रताका निवारण तथा समस्त मनोवांछित वस्तुओंका दान करनेवाली शिवपूजाका वर्णन किया। यह शिवकी पूजा शिवजीके द्रव्यका हरण करनेके पापको छोड़कर शेष सभी महापातकों और उपपातकोंके महान् समुदायका नाश करती है। यदि ये दोनों बालक इसी प्रकार भगवान् शंकरका पूजन प्रत्येक प्रदोषके दिन करते रहें, तो वर्षभरके भीतर ही इन्हें उत्तम सिद्धिकी प्राप्ति होगी।

शाण्डिल्य मुनिका यह वचन सुनकर उस ब्राह्मणीने दोनों बालकोंके साथ मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'भगवन्! आज मैं आपके दर्शनमात्रसे कृतार्थ हो गयी। ये दोनों बालक आजसे आपकी शरणमें हैं। ब्रह्मन्! यह मेरा पुत्र है और इसका नाम शुचिव्रत है और यह राजकुमार है, जिसका नाम मैंने धर्मगुप्त रख दिया है। ये दोनों बालक और मैं सभी आपके चरणोंके दास हैं। इस घोर दारिद्र्यसागरमें गिरे हुए हम सबका आप उद्धार कीजिये।'

इस प्रकार शरणमें आयी हुई ब्राह्मणीको अमृतके समान मधुर वचनोंद्वारा आश्वासन देकर मुनिने उसके दोनों बालकोंको भगवान् शंकरके आराधनकी मन्त्र-विद्याका उपदेश दिया। तत्पश्चात् दोनों बालक और ब्राह्मणी मुनिकी आज्ञा ले वहाँसे चले गये। मुनिवरके उपदेशानुसार दोनों बालक प्रत्येक प्रदोषव्रतके दिन पार्वतीवल्लभ शिवकी आराधना करने लगे। इस प्रकार शिवपूजा करते हुए द्विजकुमार और राजकुमारके चार महीने सुखपूर्वक बीत गये। एक दिन द्विजकुमार राजकुमारको साथ लिये बिना ही नदीके तटपर स्नान करनेके लिये गया और वहाँ मौजसे देरतक इधर-उधर घूमता रहा। वहाँ झरनेके जलके आघातसे खाईकी भूमि कट जानेसे उसमें गड़ा हुआ एक बड़ा भारी खजानेका कलश चमक रहा था, जिसपर ब्राह्मणकुमारकी दृष्टि पड़ी। उसे देखकर वह सहसा हर्ष और कौतूहलमें भरकर उसके समीप गया और उसे देवताके प्रसादसे प्राप्त हुआ मानकर सिरपर लेकर घरको चल दिया तथा घरके भीतर उस घड़ेको रखकर मातासे कहा—'माँ! यह भगवान् शंकरका प्रसाद तो देखो, उन्होंने दया करके घड़ेके रूपमें यह खजाना दिखला दिया।' तब उस पतिव्रता ब्राह्मणीने राजकुमारको भी बुलाकर कहा—'पुत्रो! इस खजानेके घड़ेको तुम दोनों आपसमें बराबर-बराबर बाँट लो।' माताकी बातको सुनकर ब्राह्मणके पुत्रको प्रसन्नता हुई। किंतु राजपुत्रने उससे कहा—'माँ! यह तुम्हारे ही पुत्रके पुण्यसे प्राप्त हुआ है, अतः मैं इस खजानेको बाँटकर लेना नहीं चाहता हूँ। अपने पुण्यसे प्राप्त हुए खजानेका ये स्वयं ही उपभोग करें। वे ही भगवान्

जय विश्वैकवंद्येश जय नागेन्द्रभूषण। जय गौरीपते शम्भो जय चन्द्रार्धशेखर॥
जय कोट्यर्कसंकाश जयानन्तगुणाश्रय। जय रुद्र विरूपाक्ष जयाचिन्त्य निरञ्जन॥
जय नाथ कृपासिन्धो जय भक्तार्तिभञ्जन। जय दुस्तरसंसारसागरोत्तारण प्रभो॥
प्रसीद मे महादेव संसारार्तस्य खिद्यतः। सर्वपापभयं हत्वा रक्ष मां परमेश्वर॥
महादारिद्र्यमग्नस्य महापापहतस्य च। महाशोकविनष्टस्य महारोगातुरस्य च॥
ऋणभारपरीतस्य दह्यमानस्य कर्मभिः। ग्रहैः प्रपीड्यमानस्य प्रसीद मम शंकर॥

(स्क० पु०, ब्रा० ब्रह्मो० ७।५९—६६)

शंकर मुझपर भी कृपा करेंगे।' इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक भगवान् शंकरकी पूजा करते हुए उन दोनों कुमारोंका उसी घरमें एक वर्ष व्यतीत हो गया। एक दिन राजकुमार उस ब्राह्मणकुमारके साथ वसन्त-ऋतुमें वनमें भ्रमण करनेके लिये गया। कुछ दूर जानेपर उन्होंने सैकड़ों गन्धर्वकन्याओंको परस्पर क्रीडा करते हुए देखा। उन्हें देखकर ब्राह्मणकुमारने दूरसे ही राजकुमारसे कहा—'यहाँसे आगे जाना उचित नहीं है; क्योंकि उधर स्त्रियाँ विहार कर रही हैं। स्वच्छ अन्तःकरणवाले विद्वान् पुरुष स्त्रियोंका सामीप्य त्याग देते हैं। ये रमणियाँ छल करनेवाली तथा वाणीद्वारा अनुनय-विनय करनेमें कुशल हैं। ये पुरुषोंको अपनी दृष्टिमात्रसे मोहित कर लेती हैं। इसलिये अपने धर्ममें तत्पर ब्रह्मचारी कभी स्त्रियोंके समीप जाकर उनके साथ वार्तालाप न करे।' ऐसा कहकर ब्राह्मणकुमार लौट पड़ा और दूर जाकर खड़ा हो गया। किंतु राजकुमार अकेला ही निर्भय होकर स्त्रियोंकी उस क्रीडास्थलीकी ओर चला गया। उन गन्धर्वकन्याओंमेंसे एकने राजकुमारको आते देख मन-ही-मन कुछ विचार किया और सखियोंसे कहा—'सहेलियो! यहाँसे थोड़ी ही दूरपर एक उत्तम वन है, जहाँ विचित्र चम्पा, अशोक, पुन्नाग और बकुल आदि वृक्ष खिले हुए हैं। वहाँ जाकर तुम सब लोग फूल तोड़ो। तबतक मैं यहीं बैठी हूँ। तुम फूलोंका संग्रह करके पुनः यहाँ आ जाना।' उसके इस प्रकार आदेश देनेपर सखियाँ वनके भीतर चली गयीं और वह गन्धर्वकन्या राजकुमारपर दृष्टि लगाये वहीं खड़ी रही। उसे देखकर राजकुमार कामदेवके बाणोंसे पीड़ित हो गया। गन्धर्वकन्याने अपने पास आये हुए राजकुमारको बैठनेके लिये कोमल पल्लवोंका आसन दिया और पूछा—'कमलनयन! तुम कौन हो? किस देशसे यहाँ आये हो और किसके पुत्र हो?' इस प्रकार पूछनेपर राजकुमारने अपना पूरा परिचय बतलाया—'मैं विदर्भराजका पुत्र हूँ। मेरे पिता-माता बचपनमें ही मर गये हैं। शत्रुओंने मेरे राज्यपर अधिकार जमा लिया है और मैं दूसरेके राज्यमें गुजारा करता हूँ।'

ये सारी बातें बताकर राजकुमारने उस गन्धर्वकन्यासे पूछा—सुन्दरी! तुम कौन हो? यहाँ तुम्हारा क्या कार्य है और तुम किसकी पुत्री हो? उनके इस प्रकार पूछनेपर कन्याने कहा—'महाराजकुमार! एक द्रविक नामक गन्धर्व हैं, जो समस्त गन्धर्वकुलके अगुआ माने जाते हैं। मैं उन्हींकी पुत्री हूँ और मेरा नाम अंशुमती है। सब सखियोंको छोड़कर मैं यहाँ अकेली हूँ। मैं तुम्हारी अभिलाषा जानती हूँ। तुम्हारा मन मुझमें आसक्त हो गया है। इसी प्रकार दैवने मेरे मनमें भी तुम्हारे लिये उत्कण्ठा भर दी है। अब हम दोनोंका स्नेह कभी भंग नहीं होना चाहिये।' ऐसा कहकर गन्धर्वकुमारीने शीघ्र ही अपने गलेसे मोतीका हार निकालकर प्रेमपूर्वक राजकुमारको भेंट किया। उस अद्भुत हारको देखकर राजकुमारने पूछा—'भीरु! मैं एक बात कहता हूँ। मैं राज्यहीन और निर्धन हूँ। तुम मेरी प्रिया कैसे होना चाहती हो? मूर्ख स्त्रीकी भाँति पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करके अपनी इच्छाके अनुसार आचरण क्यों करती हो?' यह सुनकर गन्धर्वकन्याने कहा—'प्रियतम! आपका कहना ठीक है। मैं पिताकी आज्ञाके विरुद्ध नहीं करूँगी। आप इस समय घरको पधारें और परसों प्रातःकाल पुनः यहीं दर्शन दें। आपसे कुछ हमारा कार्य है।' इतना कहकर वह गन्धर्वकन्या अपनी सखियोंके आ जानेसे उनके साथ चली गयी और राजकुमार भी हर्षपूर्वक ब्राह्मणकुमारके समीप लौट आया। उसने द्विजपुत्रसे सब बातें बतायीं और उसके साथ घरको प्रस्थान किया। वहाँ पतिव्रता ब्राह्मणीको भी यह शुभ समाचार सुनाकर राजकुमारने प्रसन्न किया तथा पूर्वनिश्चित समय आनेपर वह पुनः द्विजपुत्रके साथ वनमें गया।

नियत स्थानपर पहुँचकर राजकुमारने देखा—

गन्धर्वराज और उनकी कन्या दोनों उपस्थित हैं। गन्धर्वराजने वहाँ आये हुए दोनों कुमारोंका अभिनन्दन किया और सुन्दर आसनपर बिठाकर राजपुत्रसे कहा—'विदर्भराजकुमार ! मैं कल कैलास पर्वतपर गया था। वहाँ मैंने पार्वतीजीके साथ महादेवजीके दर्शन किये। देवेश्वर भगवान् शिव करुणारूपी अमृतके सागर हैं। उन्होंने मुझे बुलाकर सब देवताओंके समीप इस प्रकार कहा—'पृथ्वीतलपर धर्मगुप्त नामसे प्रसिद्ध एक राजकुमार है, जो इस समय अकिंचन है। उसका राज्य छिन गया है, शत्रुओंने उसके देशको अपने अधिकारमें कर लिया है। अब वह बालक अपने गुरुकी आज्ञासे सदा मेरी आराधनामें संलग्न रहता है। उसीके प्रभावसे आज उसके समस्त पितर मेरे स्वरूपको प्राप्त हो गये हैं। गन्धर्वश्रेष्ठ! तुम भी उस राजकुमारकी सहायता करो। अब वह शत्रुओंको मारकर अपने राज्यसिंहासनपर आसीन हो जायगा।' महादेवजीके इस प्रकार आज्ञा देनेपर मैं अपने घरको आया। यहाँ इस मेरी कन्याने भी तुम्हारे लिये बहुत प्रार्थना की। यह सब परमदयालु भगवान् शिवकी प्रेरणासे ही हो रहा है, ऐसा समझकर मैं इस कन्याको साथ लेकर आया हूँ। अत: अपनी पुत्री अंशुमतीको मैं तुम्हें पत्नीरूपमें देता हूँ और भगवान् शिवजीकी आज्ञासे शत्रुओंको मारकर तुम्हें तुम्हारे राज्यपर बिठाऊँगा। अपने उस नगरमें तुम अपनी इस धर्मपत्नीके साथ दस हजार वर्षोंतक मनोवांछित सुख भोगकर अन्तमें भगवान् शिवके लोकमें जाओगे और वहाँ भी मेरी यह कन्या तुम्हारी ही सेवामें प्रस्तुत रहेगी।'

इस प्रकार कहकर गन्धर्वराजने उसी वनमें राजकुमारके साथ अपनी पुत्रीका विवाह कर दिया और दहेजमें परम उज्ज्वल रत्नभार भेंट किये। चन्द्रमाके समान चमकीली चूडामणि तथा दमकते हुए मोतियोंके मनोहर हार दिये। दिव्य आभूषण, वस्त्र, सुवर्णके बने हुए बहुत-से सामान, दस हजार हाथी, एक लाख नीले घोड़े और हजारों सोनेके बड़े-बड़े रथ प्रदान किये। अन्तमें एक दिव्य रथ, इन्द्रके धनुषके समान विशाल धनुष, सहस्रों अस्त्र-शस्त्र, अक्षय बाणोंसे भरे हुए दो तरकस, अभेद्य सुवर्णमय कवच तथा शत्रुओंका संहार करनेवाली शक्ति समर्पित की। अपनी पुत्रीकी सेवाके लिये गन्धर्वराजने प्रसन्नचित्त होकर पाँच हजार दासियाँ दीं। इतना ही नहीं, राजकुमारकी सहायताके लिये उन्होंने अत्यन्त उग्र गन्धर्वोंकी चतुरंगिणी सेना भी भेंट की। इस प्रकार परम उत्तम सम्पत्तिको पाकर राजकुमार अपनी मनोवांछित पत्नीके साथ बहुत प्रसन्न हुए। पुत्रीका विवाह कराकर गन्धर्वराज स्वर्गलोकमें चले गये। धर्मगुप्त विवाहके अनन्तर गन्धर्वोंकी सेनाके साथ अपने नगरको गये और वहाँ उन्होंने शत्रुसेनाका संहार करके राजधानीमें प्रवेश किया। तत्पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मणों और मन्त्रियोंने मिलकर राजकुमारका अभिषेक किया और वे रत्नमय सिंहासनपर आरूढ़ होकर अकण्टक राज्यका उपभोग करने लगे। जिस ब्राह्मण-पत्नीने उनका अपने पुत्रकी भाँति पालन किया था, वही उनकी माता हुईं। वह द्विजकुमार ही भाई हुआ तथा गन्धर्वराजपुत्री अंशुमती महारानीके पदपर प्रतिष्ठित हुई। भगवान् शंकरकी आराधना करके धर्मगुप्त विदर्भ देशके राजा हो गये। इसी प्रकार दूसरे लोग भी प्रदोषव्रतके दिन गिरिजापतिकी आराधना करके मनोवांछित कामनाओंको प्राप्त कर लेते हैं और देहावसान होनेपर परम गतिको प्राप्त होते हैं।

सूतजी कहते हैं—जो प्रदोषव्रतके परम अद्भुत पुण्यमय माहात्म्यको उस व्रतके दिन शिवपूजनके पश्चात् एकाग्रचित्त होकर सुनता अथवा पढ़ता है, उसे सौ जन्मोंतक कभी दरिद्रता नहीं होती और अन्तमें वह ज्ञानके ऐश्वर्यसे युक्त हो भगवान् शंकरके परमधामको प्राप्त होता है।

सोमवार-व्रतके प्रभावसे सीमन्तिनीको पुनः परम सौभाग्यकी प्राप्ति

सूतजी कहते हैं—जो नित्य, आनन्दमय, शान्त, निर्विकल्प, निरामय, अनादि, अनन्त शिव-तत्त्वको जानते हैं, वे परम पदको प्राप्त होते हैं। जो धीर पुरुष कामभोगोंसे विरक्त हो भगवान् शंकरमें हेतुरहित पराभक्ति करते हैं, उनका मोक्ष हो जाता है, वे संसारबन्धनमें नहीं पड़ते। जो मायामय संसारमें चिरकालतक सुखपूर्वक विहार करके देहावसान होनेपर मोक्ष चाहते हैं, उनके लिये यह धर्म बताया गया है कि संसारमें भगवान् शिवकी पूजा सदा ही स्वर्ग और मोक्षका हेतु है। यदि प्रदोष आदिके गुणोंसे युक्त सोमवारके दिन यह पूजा की जाय तो उसका विशेष माहात्म्य है। जो केवल सोमवारको भी भगवान् शंकरकी पूजा करते हैं, उनके लिये इहलोक और परलोकमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है। सोमवारको उपवास करके पवित्र हो इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए वैदिक अथवा लौकिक मन्त्रोंसे विधिपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा करनी चाहिये। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, कन्या, सुहागिन स्त्री अथवा विधवा कोई भी क्यों न हो, भगवान् शिवकी पूजा करके मनोवांछित वर पाता है। इस विषयमें मैं एक कथा कहूँगा, जिसको सुनकर मनुष्य मोक्ष पाते हैं और उनके मनमें भगवान् शिवकी भक्ति होती है।

आर्यावर्तमें चित्रवर्मा नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे। वे दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये यमराजके समान समझे जाते थे। वे धर्ममर्यादाओंके रक्षक, कुमार्गगामी पुरुषोंको दण्ड देकर राहपर लानेवाले, समस्त यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले और शरणार्थियोंकी रक्षा करनेमें समर्थ थे। भगवान् शिव और विष्णुमें उनकी बड़ी भक्ति थी। राजा चित्रवर्माने अनेक परम पराक्रमी पुत्रोंको पाकर अन्तमें एक सुन्दर मुखवाली कन्या प्राप्त की। एक दिन राजाने जातकके लक्षण जाननेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको बुलाकर कन्याकी जन्मकुण्डलीके अनुसार भावी फल पूछे। तब उन ब्राह्मणोंमेंसे एक बहुज्ञ विद्वान्ने कहा—'महाराज! यह आपकी कन्या सीमन्तिनी नामसे प्रसिद्ध होगी। यह भगवती उमाकी भाँति मांगल्यमयी, दमयन्तीकी भाँति परम सुन्दरी, सरस्वतीके समान सब कलाओंको जाननेवाली तथा लक्ष्मीकी भाँति अत्यन्त सद्‌गुणोंसे सुशोभित होगी। यह दस हजार वर्षोंतक अपने स्वामीके साथ आनन्द भोगेगी और आठ पुत्रोंको जन्म देकर उत्तम सुखका उपभोग करेगी।' तत्पश्चात् एक दूसरे ब्राह्मणने कहा—'यह कन्या चौदहवें

वर्षमें विधवा हो जायगी।' यह वज्राघातके समान दारुण वचन सुनकर राजा दो घड़ीतक चिन्तामें डूबे रहे। तदनन्तर सब ब्राह्मणोंको विदा करके राजाने 'सब कुछ भाग्यके अनुसार ही होता है' ऐसा समझकर चिन्ता छोड़ दी। सीमन्तिनी धीरे-धीरे सयानी हुई। अपनी सखीके मुखसे भावी वैधव्यकी बात सुनकर उसे बड़ा खेद हुआ। उसने चिन्तामग्न होकर याज्ञवल्क्य मुनिकी पत्नी

मैत्रेयीसे पूछा—'माताजी! मैं आपके चरणोंकी शरणमें आयी हूँ। मुझे सौभाग्य बढ़ानेवाले सत्कर्मका उपदेश दीजिये।' इस प्रकार शरणमें आयी हुई राजकन्यासे पतिव्रता मैत्रेयीने कहा—'सुन्दरी! तू शिवसहित पार्वतीजीकी शरणमें जा और सोमवारको एकाग्रचित्त हो स्नान और उपवासपूर्वक स्वच्छ वस्त्र धारण करके शिव और पार्वतीका पूजन कर। सोमवारके दिन शिव और पार्वतीकी आराधना करती रह। इससे बड़ी भारी आपत्ति पड़नेपर भी तू उससे मुक्त हो जायगी। घोर-से-घोर एवं भयंकर महाक्लेशमें पड़कर भी शिव-पूजा न छोड़ना। उसके प्रभावसे महान् भयसे पार हो जाओगी।' इस प्रकर सीमन्तिनीको आश्वासन देकर पतिव्रता मैत्रेयी आश्रमको चली गयीं। राजकुमारीने उनके कथनानुसार भगवान् शिवका पूजन प्रारम्भ किया।

निषध देशमें नलकी पत्नी दमयन्तीके गर्भसे इन्द्रसेन नामक पुत्र हुआ था। राजा इन्द्रसेनके पुत्र चन्द्रांगद हुए। नृपश्रेष्ठ चित्रवर्माने राजकुमार चन्द्रांगदको बुलाकर गुरुजनोंकी आज्ञासे उन्हींके साथ अपनी पुत्री सीमन्तिनीका विवाह कर दिया। उस विवाहमें बड़ा उत्सव हुआ था। विवाहके पश्चात् चन्द्रांगद कुछ कालतक ससुरालमें ही रहे। एक दिन राजकुमार यमुनाके पार जानेके लिये कुछ मित्रोंके साथ नावपर सवार हुए। भाग्यवश नाव यमुनाके भँवरमें मल्लाहोंसहित डूब गयी। यमुनाके दोनों तटोंपर बड़ा भारी हाहाकार मच गया। इस दुर्घटनाको देखनेवाले समस्त सैनिकोंके विलापसे सारा आकाशमण्डल गूँज उठा। डूबनेवालोंमेंसे कुछ तो मर गये और कुछ ग्राहोंके पेटमें चले गये तथा राजकुमार आदि कुछ लोग उस महाजलमें अदृश्य हो गये। यह समाचार सुनकर राजा चित्रवर्मा बड़े व्याकुल हुए और यमुनाके किनारे आकर मूर्छित होकर गिर पड़े। सीमन्तिनीने भी जब यह समाचार सुना तब वह अचेत होकर धरतीपर गिर पड़ी। राजा इन्द्रसेन भी अपने पुत्रके डूबनेका समाचार पाकर रानियोंसहित बहुत दुःखी हुए और सुध-बुध खोकर गिर पड़े। तदनन्तर बड़े-बूढ़ोंके समझानेपर राजा चित्रवर्मा धीरे-धीरे नगरमें आये और उन्होंने अपनी पुत्रीको धीरज बँधाया।

राजा चित्रवर्माने जलमें डूबे हुए अपने दामादका और्ध्वदैहिक कृत्य वहाँ आये हुए उनके बन्धु-बान्धवोंसे करवाया। पतिव्रता सीमन्तिनीने चितामें बैठकर पतिलोकमें जानेका विचार किया। किंतु उसके पिताने स्नेहवश रोक दिया। तब वह विधवा-जीवन व्यतीत करने लगी। मुनिपत्नी मैत्रेयीने जिस शुभ सोमवार व्रतका उपदेश दिया था, उसे सदाचारपरायणा सीमन्तिनीने विधवा होनेपर भी नहीं छोड़ा। इस प्रकार चौदहवें वर्षकी आयुमें अत्यन्त दारुण दुःख पाकर वह भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन करने लगी। शिवकी आराधना करते-करते उसके तीन वर्ष व्यतीत हो गये। उधर पुत्रशोकसे उन्मत्त हुए राजा इन्द्रसेनको बलपूर्वक दबाकर उनके भाइयोंने सारा राज्य छीन लिया और उन्हें पत्नीसहित पकड़कर कारागृहमें डाल दिया।

इन्द्रसेनके पुत्र चन्द्रांगद यमुनाके जलमें डूबनेपर नीचे-नीचे गहराईमें उतरने लगे। बहुत नीचे जानेपर उन्होंने नागवधुओंको जलक्रीडामें निमग्न देखा। राजकुमारको देखकर वे भी विस्मित हुईं और उन्हें पाताललोकमें ले गयीं। वहाँ चन्द्रांगदने तक्षक नागके परम अद्भुत रमणीय नगरमें प्रवेश किया और इन्द्रभवनके समान मनोहर एक सुन्दर महल देखा, जो बड़े-बड़े रत्नोंकी प्रकाशमान किरणोंसे उद्दीप्त हो रहा था। भगवान् सूर्यके समान तेजस्वी तक्षक नागको सभाभवनमें विराजमान देख परम बुद्धिमान् राजकुमारने प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। तक्षकके तेजसे उनके नेत्र

चौंधिया गये। नागराजने भी मनोरम राजकुमारको देखकर उन नागिनोंसे पूछा—'यह कौन है और कहाँसे आया है?' उन्होंने उत्तर दिया—'हमने इसे यमुनाजलमें देखा है और इसके कुल तथा नामका परिचय न होनेके कारण आपके पास ले आयी हैं।' तब तक्षकने राजकुमारसे पूछा—'तुम किसके पुत्र हो, कौन हो, कौन-सा तुम्हारा देश है और यहाँपर तुम्हारा कैसे आगमन हुआ है?'

राजपुत्रने कहा—भूमण्डलमें निषध नामसे प्रसिद्ध एक देश है। उसके स्वामी राजा नल महायशस्वी हो गये हैं। वे पुण्यश्लोक माने जाते हैं। उनके पुत्र इन्द्रसेन हुए और इन्द्रसेनका पुत्र मैं हुआ। मेरा नाम 'चन्द्रांगद' है। मैं अभी नूतन विवाह करके ससुरालमें ही टिका था और यमुनाजीके जलमें विहार करता हुआ दैवकी प्रेरणासे डूब गया। ये नागपत्नियाँ मुझे आपके पास ले आयी हैं। जन्मान्तरके उपार्जित पुण्योंके प्रभावसे यहाँ मैंने आपके चरणारविन्दोंका दर्शन किया है। आज मैं धन्य हूँ, मेरे माता-पिता कृतार्थ हो गये; क्योंकि आपने दया करके मेरी ओर देखा और मुझसे वार्तालाप किया है।

इस प्रकार अत्यन्त मनोहर उदारतापूर्ण वचन सुनकर तक्षकने कहा—राजकुमार! तुम भय न करो, धैर्य रखो और बताओ, तुम सम्पूर्ण देवताओंमें किसकी पूजा करते हो?

राजकुमारने कहा—जो सम्पूर्ण देवोंमें महादेव कहे जाते हैं, उन्हीं विश्वात्मा उमापति भगवान् शिवकी मैं पूजा करता हूँ। जो विधाताके भी विधाता, कारणके भी कारण और तेजोंमें सर्वोत्कृष्ट तेज हैं, वे भगवान् शिव मेरी परम गति हैं। जो अत्यन्त निकट होकर भी पापसे दूषित चित्तवाले पुरुषोंके लिये बहुत दूर हैं तथा जिनके तेजकी कोई सीमा नहीं है, जो अग्नि, भूमि, वायु, जल और आकाशमें भी स्थित हैं, वे विश्वात्मा भगवान् सदाशिव हम सबके लिये परम पूजनीय हैं। जो सम्पूर्ण भूतोंके साक्षी, सबकी आत्मामें स्थित रहनेवाले परमेश्वर तथा निरंजन हैं, सम्पूर्ण संसार जिनकी इच्छाके अधीन है, मैं उन भगवान् शिवकी पूजा करता हूँ। ज्ञानी पुरुष जिन्हें एक, आदि और पुराणपुरुष कहते हैं, गुणोंके भेदसे जिनमें भिन्नताकी प्रतीति होती है, जिन्हें कोई तो क्षेत्रज्ञ, कोई तुरीय और कोई कूटस्थ कहते हैं, वे भगवान् शिव मेरे परम आश्रय हैं। जो चैतन्यमय अचिन्त्य तत्त्व हैं, जिनके तेजका कहीं अन्त नहीं है, श्रुतिके नेति-नेति वचनोंसे तद्भिन्न समस्त वस्तुओंका बाध करके जिनके स्वरूपका निश्चय किया जाता है तथा आत्मज्ञानी पुरुषोंके भी मन और वाणीकी वृत्तियाँ जिनका स्पर्श नहीं कर पातीं, वे ही ये भगवान् शिव मेरे परम पूज्य हैं। जिनका प्रसाद पाकर साधुपुरुष अत्यन्त उज्ज्वल इन्द्रपदकी भी अभिलाषा नहीं रखते तथा कर्मोंकी अर्गला (आगल) और कालचक्रको लाँघकर निर्भय होकर विचरते हैं, वे भगवान् शिव मेरी गति हैं। जिनकी स्मृति चाण्डालकी योनिमें जन्म पानेवाले मनुष्योंके भी समस्त पापरूपी रोगोंका नाश करती है तथा जिनका सम्पूर्ण रूप श्रुतियोंके लिये भी ढूँढ़ने योग्य है, उन्हीं भगवान् शिवके उद्देश्यसे मैं सदैव पूजा करता हूँ। देवनदी गंगा जिनके मस्तकपर स्थान पाकर सुशोभित होती हैं, भगवती जगदम्बिका जिनके अर्धांगमें निवास करती हैं, अहा हा! तक्षक और वासुकि दोनों नागराज जिनके कानोंके कुण्डल हैं, वे चन्द्रार्धशेखर भगवान् शिव मेरे परम आश्रय हैं। जिनके चरणकमल वेदोंके शीर्षस्थानीय उपनिषदोंमें गौरवान्वित होते हैं, वेदान्तकी श्रुति भी जिनके चरणारविन्दोंका गुणगान करती है, जिनका दिव्य स्वरूप सदा योगियोंके हृदयमें प्रकाशित होता है तथा जिनकी सगुण मूर्ति सम्पूर्ण तत्त्वोंका प्रकाश करनेवाली है, गुणमयी सृष्टिपर विजय पानेवाले वे भगवान् शंकर मेरे द्वारा पूजित होते हैं।

राजकुमारकी यह बात सुनकर तक्षकका चित्त प्रसन्न हो गया। उनके हृदयमें महादेवजीके प्रति नूतन भक्तिभावका उदय हो आया और वे उनसे इस प्रकार बोले—'राजेन्द्रनन्दन! तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ; क्योंकि तुम बालक होकर भी सर्वोत्कृष्ट परात्पर शिवतत्त्वको जानते हो। देखो, यह रत्नमय लोक है। ये मनोहर नेत्रोंवाली युवतियाँ हैं। ये मनोवांछित कामना पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष हैं तथा ये अमृतरूपी जलसे भरी हुई बावलियाँ हैं। यहाँ मृत्युका दारुण भय नहीं है। बुढ़ापा और रोगसे यहाँ किसीको पीड़ा नहीं होती। तुम इच्छानुसार यहीं विहरो और यथायोग्य सुखभोगोंका उपभोग करो।' नागराजके ऐसा कहनेपर राजकुमार हाथ जोड़कर बोले—'नागराज! मैंने समयपर विवाह किया है। मेरी पत्नी उत्तम व्रतका पालन करनेवाली और शिवपूजा-परायणा है और मैं अपने माता-पिताका इकलौता पुत्र हूँ। वे सब लोग इस समय मुझे मरा हुआ मानकर महान् शोकसे घिर गये होंगे। अतः मुझे किसी प्रकार भी यहाँ अधिक समयतक नहीं ठहरना चाहिये। आप कृपा करके मुझे उसी मनुष्यलोकमें पुनः पहुँचा दें।'

नागराज तक्षकने कहा—राजकुमार! तुम जब-जब मेरी याद करोगे, तब-तब तुम्हारे सामने प्रकट हो जाऊँगा। ऐसा कहकर उन्होंने राजकुमारको एक सुन्दर अश्व भेंट किया, जो इच्छाके अनुसार चलनेवाला था। अनेक प्रकारके द्वीपों, समुद्रों और लोकोंमें उसकी अप्रतिहत गति थी। इसके सिवा उन्हें रत्नमय आभूषण, दिव्य वस्त्र एवं दिव्य अलंकार भेंट किये। उनकी सहायताके लिये सारी व्यवस्था करनेके पश्चात् तक्षकने 'जाओ' कहकर प्रेमपूर्वक उन्हें विदा किया। चन्द्रांगद उस घोड़ेपर सवार हो निकले और थोड़ी ही देरमें यमुनाके जलसे बाहर आकर उस दिव्य अश्वपर चढ़े हुए ही नदीके रमणीय तटपर घूमने लगे। इसी समय पतिव्रता सीमन्तिनी अपनी सखियोंसे घिरी हुई वहाँ स्नान करनेके लिये आयी। उसने यमुनाके तटपर मनुष्यरूपधारी नागकुमारके साथ भ्रमण करते हुए राजकुमार चन्द्रांगदको देखा। दिव्य अश्वपर आरूढ़ हुए अपूर्व आकारवाले उन राजकुमारको देखकर वह उन्हींकी ओर दृष्टि लगाये खड़ी हो गयी। उसे देखकर चन्द्रांगदने भी मन-ही-मन विचार किया—जान पड़ता है इसे मैंने पहले कभी देखा है। तत्पश्चात् वे घोड़ेसे उतरकर नदीके किनारे आ बैठे और उस सुन्दरीको बुलाकर समीप बैठाकर पूछा—'तुम कौन हो, किसकी स्त्री और किसकी कन्या हो?' सीमन्तिनी लज्जावश स्वयं कुछ बोल न सकी। तब उसकी सखीने सब बातें बतायीं—'इसका नाम सीमन्तिनी है। यह निषधराज इन्द्रसेनकी पुत्रवधू, युवराज चन्द्रांगदकी रानी तथा महाराज चित्रवर्माकी पुत्री है। दुर्भाग्यवश इसके पति इस महाजलमें डूब गये। इससे वैधव्यका दुःख प्राप्त करके यह बाला शोकसे सूखती जा रही है। अत्यन्त प्रबल शोकमें ही इसने तीन वर्ष व्यतीत किये हैं। आज सोमवार है, इसलिये यहाँ यमुनाजीमें स्नान करनेके लिये आयी है। इसके श्वशुरका राज्य भी शत्रुओंने छीन लिया है। बलपूर्वक उसपर अधिकार जमा लिया है और वे महाराज अपनी पत्नीके साथ उनकी कैदमें पड़े हैं। यह सब होनेपर भी यह निर्मल अन्तःकरणवाली सदाचारपरायणा राजकुमारी प्रति सोमवारको अत्यन्त भक्तिभावके साथ पार्वतीसहित महादेवजीकी पूजा करती है।'

उत्तम व्रतका पालन करनेवाली सीमन्तिनीने अपनी सखीके मुखसे सब बातें कहलवाकर स्वयं भी राजकुमारसे पूछा—आप कौन हैं? आपके पार्श्ववर्ती ये दोनों पुरुष कौन हैं? आपने मेरे वृत्तान्तको एक स्नेहीकी भाँति क्यों पूछा है? महाबाहो! मुझे ऐसा जान पड़ता है कि पहले

कभी मैंने आपको देखा है। आप मुझे स्वजनकी भाँति प्रतीत होते हैं।

इतना कहकर राजकुमारी सीमन्तिनी नेत्रोंसे आँसूकी धारा बहाती हुई बहुत देरतक फूट-फूटकर रोती रही और मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। अपनी प्रियतमाके शोकका कारण सुनकर चन्द्रांगद भी शोकसे व्याकुल हो दो घड़ीतक चुपचाप बैठे रहे। तदनन्तर सीमन्तिनी उठकर राजकुमारकी ओर बारंबार निहारने लगी। उसने पहले देखे हुए अंगचिह्नों, स्वर आदि लक्षणों, अवस्थाके प्रमाण तथा रूप-रंग आदिकी परीक्षा करके यह निश्चय किया कि 'अवश्य यही मेरे पति हैं; क्योंकि मेरा हृदय प्रेमसे अधीर होकर इन्हींमें अनुरक्त हुआ है। परंतु क्या मुझ अभागिनीको अपने मरे हुए पतिका दर्शन हो सकता है? यह स्वप्न है या भ्रम अथवा मुनिपत्नी मैत्रेयीने जो मुझे यह कहा था कि तुम भारी-से-भारी विपत्तिमें पड़नेपर भी इस व्रतका पालन करती रहना, उसीका तो यह फल नहीं है। एक श्रेष्ठ ब्राह्मणने मेरा दस हजार वर्षोंका सौभाग्य बतलाया था। उन ब्राह्मण देवताका यह वचन अवश्य सत्य होगा। यह ईश्वरके बिना कौन जान सकता है? इधर प्रतिदिन मुझे मंगलसूचक शुभ शकुन दिखायी देते हैं। पार्वती देवीके प्राणनाथ भगवान् शिवके प्रसन्न होनेपर देहधारियोंके लिये कौन-सी वस्तु दुर्लभ हो सकती है।' इस प्रकार भाँति-भाँतिसे विचार करके उसका सन्देह दूर हो गया। तब लज्जासे उसने अपना मुख नीचेकी ओर कर लिया। उस समय राजकुमारने कहा—'भद्रे! मैं तुम्हारे पतिके शोकसन्तप्त माता-पितासे यह समाचार बतलानेके लिये जा रहा हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे पति तुमसे शीघ्र ही मिलेंगे।'

यों कहकर राजकुमार घोड़ेपर सवार हुए और अपने दोनों सहायकोंके साथ शीघ्र ही अपने राज्यमें जा पहुँचे। वहाँ नगरोद्यानके समीप स्थित होकर उन्होंने नागराजके पुत्रको राजसिंहासनपर अधिकार जमाये बैठे हुए बन्धुओंके समीप भेजा। नागकुमारने शीघ्र जाकर उन सबसे कहा—'तुम सब लोग महाराज इन्द्रसेनको अविलम्ब कारागृहसे मुक्त करो और सिंहासन छोड़कर हट जाओ। महाराजके पुत्र चन्द्रांगद पाताललोकसे लौटकर यहाँ आये हैं। तुम आनाकानी न करो, नहीं तो चन्द्रांगदके बाण तुम्हारे प्राण हर लेंगे। वे यमुनाजीके जलमें डूबकर नागराज तक्षकके घर जा पहुँचे थे। वहाँसे उनकी सहायता पाकर पुनः इस लोकमें लौटे हैं।'

नागकुमारकी कही हुई ये सारी बातें सुनकर शत्रुओंने भी 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और महाराज इन्द्रसेनको उनके खोये हुए पुत्रके पुनः लौट आनेका समाचार बताकर उनका सिंहासन उन्हें लौटा दिया। महाराजको प्रसन्न करके भी वे लोग भयभीत बने रहे।

मेरा पुत्र आ रहा है, यह बात सुनकर राजा प्रेमके आँसू बहाते हुए आनन्दमें डूब गये। यही दशा महारानीकी भी थी। तदनन्तर सब नागरिक, वृद्ध मन्त्री और पुरोहित आगे जाकर चन्द्रांगदसे मिले और उन्हें हृदयसे लगाकर महाराजके समीप ले आये। अपने भवनमें प्रवेश करके अश्रुवर्षा करते हुए राजकुमारने माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। चरणोंमें पड़े हुए पुत्रको उठाकर राजाने अश्रुसिक्त हृदयसे लगा लिया। फिर क्रमशः सब माताओंको प्रणाम करके उनका आशीर्वाद ले राजकुमार पुरवासियोंसे मिले और उन्होंने सबको यथायोग्य सम्मान दिया। पुनः सबके साथ राजसभामें बैठकर अपना सब वृत्तान्त पितासे निवेदन किया और नागराज तक्षकसे मित्रता होनेकी भी बात बतलायी। राजकुमारका चरित्र देख और सुनकर राजा इन्द्रसेन हर्षसे विह्वल हो गये। उन्होंने अपने मनमें यही माना कि मेरी पुत्रवधूने भगवान् महेश्वरकी आराधना करके इस अनुपम सौभाग्यका

अर्जन किया है। निषधराजने यह मंगलमयी वार्ता दूतोंके द्वारा महाराज चित्रवर्माको भी कहला दी। यह अमृतमयी वार्ता सुनकर महाराज चित्रवर्मा आनन्दसे विह्वल हो गये और बड़े वेगसे उठकर उन्होंने सन्देशवाहकोंको उपहारमें बहुत धन दिया। फिर अपनी पुत्रीको बुलाकर उन्होंने उससे वैधव्यके चिह्नोंका परित्याग करवाया और उसे नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित किया। तत्पश्चात् समूचे राष्ट्रके गाँव और नगर आदिमें बड़ा भारी उत्सव हुआ और सब लोगोंने राजकुमारी सीमन्तिनीके सदाचारकी बड़ी प्रशंसा की। चित्रवर्माने इन्द्रसेनके पुत्र चन्द्रांगदको बुलाकर सीमन्तिनीको उनके साथ विदा कर दिया। चन्द्रांगदने तक्षकके घरसे लाये हुए रत्न आदि आभूषणोंके द्वारा, जो मानवमात्रके लिये अत्यन्त दुर्लभ हैं, अपनी पत्नीको अलंकृत किया। तपे हुए सुवर्णके समान सुशोभित चालीस कोसतक जानेवाली सुगन्धसे युक्त दिव्य अंगरागसे सीमन्तिनीकी बड़ी शोभा हो रही थी। कमलके केसरके समान रंगवाले कल्पवृक्षके पुष्पोंसे बनी हुई और कभी न कुम्हलानेवाली माला भी सती सीमन्तिनीकी शोभा बढ़ा रही थी। इस प्रकार शुभ मुहूर्तमें अपनी पत्नीको साथ लेकर श्वशुरकी आज्ञासे चन्द्रांगद पुनः अपनी नगरीमें आये। महाराज इन्द्रसेनने अपने पुत्रको राजसिंहासनपर बिठाकर तपस्याद्वारा भगवान् शिवकी आराधना करके योगी पुरुषोंको उपलब्ध होनेवाली उत्तम गति प्राप्त की। राजा चन्द्रांगदने अपनी धर्मपत्नी सीमन्तिनीके साथ दस हजार वर्षोंतक नाना प्रकारके विषयोंका उपभोग किया। उन्होंने आठ पुत्रों और एक कन्याको जन्म दिया। सीमन्तिनी प्रतिदिन भगवान् महेश्वरकी पूजा करती हुई अपने स्वामीके साथ सुखपूर्वक रहने लगी। उसने सोमवारव्रतके प्रभावसे अपना खोया हुआ सौभाग्य प्राप्त कर लिया।

त्यागी हुई रानी और राजकुमारकी वैश्य एवं शिवयोगीद्वारा रक्षा तथा शिवयोगीका राजपुत्रको धर्मका उपदेश करना

सूतजी कहते हैं—एक समय दशार्णदेशके राजा वज्रबाहुकी पत्नी सुमति अपने नवजात शिशुके साथ असाध्य रोगकी शिकार हो गयी थी; इसलिये दुष्टबुद्धि राजाने उसे वनमें त्याग दिया। वहाँ अनेक प्रकारके कष्ट भोगती हुई वह यत्नपूर्वक आगे बढ़ने लगी। बहुत दूर जानेपर उसने वैश्योंका एक नगर देखा, जिसमें बहुत-से स्त्री-पुरुष निवास करते थे। उस नगरका रक्षक एक बहुत बड़ा महाजन वैश्य था, जो पद्माकरके नामसे प्रसिद्ध था। वह दूसरे कुबेरके समान धनवान् था। उस वैश्यराजके घरमें सेवा-टहलका कार्य करनेवाली कोई दासी उधर ही आ रही थी। वह दूरसे ही राजपत्नीको देखकर उनके समीप आयी। उसने रानीको देखते ही उसका सारा हाल जान लिया। वह पुत्रसहित अत्यन्त कष्ट भोग रही थी। दासीने अपने स्वामीको उस स्त्रीका दर्शन कराया। वैश्यराजने रोगी पुत्रके साथ स्वयं भी रोगसे पीड़ित हुई राजपत्नीको एकान्तमें बुलाकर उसका सब वृत्तान्त पूछा और सब बात जान लेनेपर अपने घरके पास ही एकान्त गृहमें उसे ठहराया। अन्न, वस्त्र, जल और शय्या आदिका प्रबन्ध करके वैश्यने माताके समान उसका आदर किया। उस घरमें सुरक्षित होकर निवास करती हुई राजपत्नीके व्रण और यक्ष्मा आदि रोगोंकी शान्ति नहीं हुई। कुछ ही दिनोंमें रानीका पुत्र घावसे पीड़ित होकर वैद्योंकी चिकित्साशक्तिसे परे जा पहुँचा और मृत्युको प्राप्त हो गया। पुत्रके मरनेपर रानी महान्

शोकसे ग्रस्त हो मूर्च्छित हो गयी और टूटी हुई लताके समान धरतीपर गिर पड़ी। फिर सचेत होनेपर वैश्योंकी स्त्रियोंने उसे बहुत समझाया तथापि वह अत्यन्त दुःखित हो विलाप करने लगी—'हा पुत्र! बन्धु-बान्धवोंसे त्यागी हुई अपनी इस दीन एवं अनाथ माताको छोड़कर तुम कहाँ चले गये।' जब वह इस प्रकार विलाप कर रही थी, उसी समय ऋषभ नामसे प्रसिद्ध शिवयोगी वहाँ आ पहुँचे। वैश्यराजने अर्घ्य देकर उनका सत्कार किया। तत्पश्चात् वे शोकग्रस्त राजपत्नीके समीप जाकर इस प्रकार बोले—'बेटी! तुम इतनी क्यों रो रही हो? संसारमें किसका जन्म हुआ और कौन मृत्युको प्राप्त हुआ। ये शरीर आदि जलके फेनके समान क्षणभंगुर हैं। कभी इनकी प्रतीतिका भ्रम होता है, कभी ये शान्त हो जाते हैं और कभी पुनः इनकी स्थिति होती है। अतः फेनके समान इस शरीरकी मृत्यु होनेपर विद्वान् पुरुष शोक नहीं करते। सत्त्व आदि तीनों गुण मायासे उत्पन्न होते हैं। उन्हीं तीनों गुणोंसे शरीरकी उत्पत्ति हुई है। अतः सबके शरीर त्रिगुणमय ही हैं। सत्त्वगुणकी अधिकता होनेसे जीव देवयोनिको प्राप्त होता है, रजोगुणसे मानवयोनिमें जन्म लेता है और तमोगुणकी अधिकतासे अपनी वासनाके अनुसार वह पशु-पक्षी आदि योनिमें उत्पन्न होता है। वर्तमान संसारमें जीव अपने कर्मोंके बन्धनसे बँधकर बार-बार ऐसी सुख-दुःखमयी अवस्थाको प्राप्त होता है, जिसका अनुमान करना अत्यन्त कठिन है। जिनकी आयु एक कल्पतककी मानी गयी है, ऐसे देवताओंकी स्थितिमें भी उलट-फेर होता रहता है। फिर जो अनेक प्रकारके रोगोंसे ग्रस्त हैं, ऐसे मानव-देहधारी प्राणियोंकी तो बात ही क्या है? कोई कालको ही इस शरीरकी उत्पत्तिमें कारण बताते हैं, कोई कर्मको और कोई गुणोंको हेतु मानते हैं। वस्तुतः काल, कर्म और गुण तीनोंसे ही शरीरका आधान हुआ है। यह पांचभौतिक शरीर उत्पन्न हो या मरे, इसे देखकर विद्वान् पुरुष हर्ष और शोक नहीं करते। जीव अव्यक्तसे उत्पन्न होता और अव्यक्तमें ही लीन होता है, केवल मध्यकालमें जलके बुलबुलेकी भाँति व्यक्त-सा प्रतीत होता है। जीव जब गर्भमें आता है, उसी समय उसकी मृत्यु निश्चित हो जाती है। वह दैववश जन्म लेकर जीवित रहता है अथवा जन्म लेते ही सहसा उसकी मृत्यु हो जाती है। कितने ही जीव गर्भमें ही नष्ट हो जाते हैं, कुछ जन्म लेनेपर तत्काल मर जाते हैं, कुछ जवान होनेपर मृत्युको प्राप्त होते हैं, और कुछ बुढ़ापेमें परलोकगामी होते हैं। पहलेका कर्म जैसा होता है, वैसा ही शरीर जीवको प्राप्त होता है तथा वह कर्मोंके अनुसार ही सुख-दुःख भोगता है। विधाताके द्वारा ललाटमें लिखी हुई आयु, सुख, दुःख, विद्या और धनको लिये हुए जीव जन्म लेता है। कर्मोंका उल्लंघन करना असम्भव है। कालका भी अतिक्रमण करना किसीके लिये सम्भव नहीं है। जगत्के समस्त पदार्थ अनित्य हैं। इसलिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। स्वप्नके पदार्थोंमें नियमपूर्वक स्थिरता कहाँ है? इन्द्रजालमें सच्चाई कहाँ है? शरद्-ऋतुके बादलोंमें चिरस्थायिता कहाँ है और प्राणियोंके शरीरमें नित्यता कहाँ है?* अबतक तुम्हारे सौ कोटि अयुत (दस हजार) जन्म व्यतीत हो चुके हैं। अब तुम्हीं बताओ, तुम किसकी-किसकी पुत्री हो, किसकी-किसकी माता हो और किसकी-किसकी पत्नी हो? यह शरीर पाँच भूतोंका बना हुआ है। यह त्वचा, रक्त और मांससे बँधा हुआ है। मेदा, मज्जा और हड्डियोंका समूह है तथा मल-मूत्र और

* क्व स्वप्ने नियतं स्थैर्यमिन्द्रजाले क्व सत्यता। क्व नित्यता शरन्मेघे क्व शाश्वत्वं कलेवरे॥ (स्क० पु०, ब्रा० ब्रह्मो० १०।६४)

कफका भाजन है। मोहमें पड़ी हुई नारी! यह जो तुम्हारे पास दूसरा शरीर (तुम्हारे पुत्रका शव) पड़ा हुआ है, इस अपने पुत्रको भी अपने शरीरसे निकला हुआ मल समझकर तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। कोई पण्डित भी अपनी तपस्या, विद्या, बुद्धि, मन्त्र, ओषधि तथा रसायनसे मृत्युका उल्लंघन नहीं कर सकता*। सुमुखि! आज एक जीवकी मृत्यु होती है तो कल दूसरेकी। अतः इस अनित्य शरीरके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। मृत्यु सदा समीप ही रहती है। फिर बताओ, देहधारियोंको क्या सुख है? अतः यदि तुम जन्म, बुढ़ापा और मृत्युको जीतना चाहती हो तो मृत्युको जीतनेवाले सबके ईश्वर भगवान् उमापतिकी शरणमें जाओ। तभीतक मृत्युका घोर भय है तथा जन्म और जरावस्थाका भय है, जबतक कि जीव भगवान् शिवके चरणारविन्दोंकी शरणमें नहीं जाता। अत्यन्त भयंकर संसारमें नाना प्रकारके दुःखोंका अनुभव करके मनुष्यका मन जब उसकी ओरसे विरक्त हो जाता है, उस समय उसे भगवान् महेश्वरका ध्यान करना चाहिये। जो मनसे भगवान् शिवके ध्यानरूपी रसामृतका पान करता है, उस पुरुषको फिर संसारकी विषयरूपी मदिराको पीनेकी तृष्णा नहीं होती। जब सब प्रकारकी आसक्तियोंसे छूटा हुआ मन वैराग्यके अधीन हो भगवान् शिवके चरणोंके चिन्तनमें मग्न हो जाता है, तब मनुष्यका इस संसारमें फिर जन्म नहीं होता है। भद्रे! यह मन भगवान् शिवके ध्यानका एकमात्र साधन है, उसे शोक और मोहमें न डुबाओ। शिवजीका भजन करो।'

इस प्रकार शिवयोगीने अनुनयपूर्वक जब रानीको समझाया तब उसने उन्हींको गुरु मानकर उनके चरणकमलोंमें प्रणाम करके कहा— भगवन्! जिसका एकमात्र पुत्र मर गया हो, जिसे प्रिय बन्धुओंने त्याग दिया हो तथा जो महान् रोगसे अत्यन्त पीड़ित रहती हो, ऐसी मुझ अभागिनीके लिये मृत्युके सिवा दूसरी कौन गति है? इसलिये मैं इस शिशुके साथ ही प्राण त्याग देना चाहती हूँ। मृत्युके समय जो आपका दर्शन हो गया, मैं इतनेसे ही कृतार्थ हूँ।

रानीकी यह बात सुनकर दयानिधान शिवयोगी मरे हुए बालकके पास आये और शिवमन्त्रसे अभिमन्त्रित भस्म लेकर उसके मुँहमें डाल दिया। विभूतिके पड़ते ही वह मरा हुआ बालक प्राणयुक्त हो गया। प्राण लौट आनेपर बालकने आँखें खोल दीं। उसकी इन्द्रियोंमें पूर्ववत् शक्ति आ गयी और वह दूध पीनेकी इच्छासे रोने लगा। तब नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाती हुई रानीने झपटकर बालकको गोदमें उठा लिया और उसे छातीसे चिपकाकर वह अपूर्व आनन्दमें डूब गयी। तत्पश्चात् शिवयोगीने माता और बालकके विषैले घावोंसे युक्त शरीरमें भस्मका स्पर्श कराया। इससे उन दोनोंके शरीर दिव्य हो गये। उन्होंने देवताओंके समान कान्तिमान् स्वरूप धारण कर लिया। तत्पश्चात् ऋषभने रानीसे कहा—'बेटी! तुम दीर्घकालतक जीवित रहो। जबतक इस संसारमें जीवित रहोगी, तबतक वृद्धावस्था तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकेगी। साध्वी! तुम्हारा यह पुत्र लोकमें भद्रायु नामसे विख्यात होगा और अपना राज्य प्राप्त कर लेगा। तबतक तुम इन्हीं वैश्यराजके घरमें निवास करो, जबतक कि तुम्हारा पुत्र पूर्ण विद्वान् न हो जाय।'

इस प्रकार ऋषभ योगीने भस्मकी शक्तिसे मरे हुए राजकुमारको जीवित करके अपने अभीष्ट स्थानको प्रस्थान किया। भद्रायु उन्हीं वैश्यराजके घरमें क्रमशः बढ़ने लगा। वैश्यके भी 'सुनय' नामक एक पुत्र था, जो राजकुमारका

* तपसा विद्यया बुद्ध्या मन्त्रौषधिरसायनैः। अतियाति परं मृत्युं न कश्चिदपि पण्डितः॥ (स्क० पु०, ब्रा० ब्रह्मो० १०। ७०)

सखा हुआ। राजकुमार और वैश्यकुमार दोनों परस्पर बड़ा स्नेह रखते थे। वैश्यराजने विद्वान् ब्राह्मणोंके द्वारा राजकुमार और अपने पुत्रका भी संस्कार विस्तारपूर्वक करवाया। समयपर उपनयन-संस्कार हो जानेके पश्चात् दोनों बालकोंने गुरुसेवामें तत्पर हो विनयपूर्वक सम्पूर्ण विद्याओंका संग्रह किया। तदनन्तर जब राजकुमारका सोलहवाँ वर्ष लगा, तब वे ही ऋषभ योगी पुनः वैश्यराजके घर आये। रानी और राजकुमारने बड़े हर्षके साथ उनको बार-बार प्रणाम करके उनकी

यथायोग्य पूजा की। उन दोनोंसे पूजित होनेपर योगीश्वर शिवयोगीने कहा—'बेटा! तुम कुशलसे तो हो न? तुम्हारी माताको भी कोई कष्ट तो नहीं है? क्या तुमने सब विद्याओंका अध्ययन कर लिया? गुरुजनोंकी सेवामें सदा संलग्न रहते हो न? वत्स! क्या मुझ प्राणदाता गुरुका कभी स्मरण करते हो?'

योगीश्वर ऋषभके ऐसा कहते समय विनयशीला रानीने अपने पुत्रको उनके चरणोंमें डाल दिया और कहा—गुरुदेव! यह आपका ही पुत्र है। आप ही इसके प्राणदाता पिता हैं। आप दया करके अपने इस शिष्यको अनुगृहीत करें और इसे सत्पुरुषोंके उत्तम मार्ग—शुभ कर्मका उपदेश दें। रानीके द्वारा इस प्रकार प्रसन्न कराये जानेपर परम बुद्धिमान् शिवयोगीने राजकुमारको सन्मार्गका उपदेश दिया।

ऋषभ बोले—वेद, स्मृति और पुराणोंमें जिसका उपदेश किया गया है, वही सनातन धर्म है। सब लोगोंको चाहिये कि अपने-अपने वर्ण और आश्रमके अनुसार सदा शास्त्रोक्त धर्मका सेवन करें। वत्स! तुम सदा सत्पुरुषोंके मार्गपर चलो। उत्तम आचारका ही पालन करो। देवताओंकी आज्ञाका कभी उल्लंघन न करो, देवताओंकी अवहेलना भी न करो। गौ, देवता, गुरु और ब्राह्मणके प्रति सदा भक्तिभाव रखो। अतिथिके रूपमें चाण्डाल भी अपने घर आ जाय, तो सदा उसका सत्कार करो। अपने प्राणोंपर संकट आ जाय तो भी सत्यका परित्याग न करो। महाबाहो! पराये धनकी, परायी स्त्रीकी, देवता तथा ब्राह्मणकी वस्तुओंकी और अत्यन्त दुर्लभ पदार्थोंकी भी तृष्णा त्याग दो। महामते! सदा उत्तम कथा, उत्तम आचार, उत्तम व्रत, सत्पुरुषोंके आगमन तथा धर्म आदिके संग्रहकी ही अभिलाषा करो। स्नान, जप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण, गोपूजा, देवपूजा और अतिथिपूजामें कभी आलस्यको समीप न आने दो। क्रोध, द्वेष, भय, शठता, चुगली, अनुचित आग्रह, कुटिलता, दम्भ और उद्वेगका यत्नपूर्वक त्याग करो। अकारण वैर, व्यर्थकी बकवाद और दूसरोंकी निन्दा छोड़ दो। मृगया, द्यूतक्रीडा, मद्यपान, स्त्री और स्त्रीलम्पट पुरुष—इन सबके संगका परित्याग करो। अधिक भोजन, अधिक परिश्रम, अधिक बातचीत और अधिक खेल-कूद तथा क्रीडा-विलासको सदाके लिये छोड़ दो। अधिक विद्या, अधिक श्रद्धा, अधिक पुण्य, अधिक स्मरण, अधिक उत्साह, अधिक प्रसिद्धि और अधिक धैर्य जैसे भी प्राप्त

हो, उसके लिये सदा चेष्टा करो। अपनी ही पत्नीके प्रति सकाम बनो। अपने शत्रुओंपर ही क्रोध करो। पुण्यराशिके संग्रहके लिये ही लोभ करो। पापाचारियोंके प्रति ही असूया (दोषदृष्टि) करो। पाखण्डियोंके प्रति द्वेष तथा साधुपुरुषोंके प्रति राग रखो। बुरी सलाहको समझानेमें और ग्रहण करनेमें मूर्ख बने रहो। चुगुलोंकी बातें अनसुनी करनेके लिये बहरे हो जाओ। धूर्त, अत्यन्त क्रोधी, शठ, क्रूर, छली, चंचल, दुष्ट, पतित, नास्तिक और कुटिल मनुष्यको दूरसे ही त्याग दो। अपनी प्रशंसा न करो। दूसरोंकी चेष्टाओं और इशारोंको समझो। धन और कुटुम्बमें अधिक आसक्ति न रखो। पतिव्रता पत्नी, माता, श्वशुर, साधु पुरुष और गुरुके वचनोंमें सदा विश्वास करो। अपनी रक्षामें तत्पर होकर सदा सावधान रहो। उत्तम व्रतका पालन करो। अपने सेवकोंपर भी कभी पूर्ण विश्वास न करो। महामते! जो तुम्हारा विश्वासपात्र रहा हो ऐसा कोई पुरुष यदि चोरीमें भी पकड़ा जाय, तो उसे प्राणदण्ड न दो। पापरहित मनुष्योंपर सन्देह न करो। सत्यसे विचलित न होओ। अनाथ, दीन, वृद्ध, स्त्री, बालक और निरपराध मनुष्यकी धनसे, बुद्धिसे, शक्तिसे, बलसे तथा अपने प्राणोंद्वारा भी रक्षा करो। वध करने योग्य शत्रु भी यदि शरणमें आ जाय तो उसे न मारो। माता-पिता और गुरुके कोपसे बचो। धनका व्यय, पुत्रों तथा ब्राह्मणोंका अपराध सहन करो। जिस प्रकार ब्राह्मण प्रसन्न हों, वैसा उनका हित करो। क्योंकि श्रेष्ठ द्विज संकटमें पड़े हुए राजाका उस संकटसे उद्धार करते हैं। आयु, यश, बल, सुख, धन, पुण्य और प्रजाजनोंकी उन्नति—यह सब जिस सत्कर्मसे सम्भव हो, उसका सदा सेवन करना चाहिये। देश, काल, शक्ति, कर्तव्य, अकर्तव्यका भलीभाँति विचार करके सदा यत्नपूर्वक कर्म करो। स्वयं किसीको बाधा न पहुँचाओ। दूसरोंकी बाधाका निवारण करो। उत्तम नीति और शक्तिसे चोरों तथा दुष्टोंका दमन करो। स्नान, जप, होम, देवपूजा तथा श्राद्धकर्ममें उतावली न करो। नींद लेने और भोजनमें शीघ्रता करो। उदारतायुक्त, शठतासे रहित, सत्य, मनुष्योंके मनको प्रिय लगनेवाली तथा थोड़ेसे अक्षर और अधिक अर्थवाली बात बोलो। कहीं भी भय न करो। शत्रुओं और विपत्तियोंमें पड़कर भी निडर बने रहो। ब्राह्मणकुल, गुरुकी आज्ञा तथा पापाचरणसे डरो। कुटुम्बीजनों, भाई-बन्धुओं, ब्राह्मणों, पत्नियों, पुत्रों तथा भोजनकी पंक्तियोंमें समतापूर्ण बर्ताव करो। सत्पुरुषोंके हितकारक उपदेशों, पुण्य कथाओं, विद्या-गोष्ठियों तथा धर्मचर्चाओंसे कभी मुँह न मोड़ो। जलके निकट, सर्वत्र विख्यात, ब्राह्मणोंके निवाससे युक्त, परम पवित्र तथा कल्याणमय प्रशस्त स्थानमें सदा निवास करो। जहाँ कुलटाएँ और वेश्याएँ रहती हों, जहाँ कामलम्पट पुरुषोंका निवास हो, ऐसे नीच जनसेवित दूषित स्थानमें तुम कभी निवास न करो। त्रिभुवनके स्वामी एकमात्र भगवान् शिवकी शरण लेकर भी तुम सभी देवताओंकी यथासमय उपासना करते रहो और उनके दिनों (तत्सम्बन्धी तिथियों)-का भी समादर करो। वत्स! तुम सदा पवित्र, सदा दक्ष, सदा शान्त, सदा स्थिर, सदा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य—इन छहों शत्रुओंको जीतनेवाले तथा सदा एकान्तवासी बनो। वेदवेत्ता ब्राह्मण, नियमोंसे प्रकाशित होनेवाले शान्त संन्यासी, पुण्य वृक्ष, पुण्य नदी, पुण्य तीर्थ, महासरोवर, धेनु, वृषभ, पतिव्रता स्त्री तथा अपने घरके देवताओंको उनके पास जाते ही सहसा नमस्कार करो।

ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर भलीभाँति आचमन करके तुम पहले अपने गुरुजीको प्रणाम करो। तत्पश्चात् उमापति भगवान् शिवका ध्यान करके लक्ष्मीपति नारायण, ब्रह्मा, गणेश, स्कन्द, कात्यायनी देवी, महालक्ष्मी, सरस्वती, इन्द्र आदि लोकपाल तथा पुण्यश्लोक (पवित्र यशवाले) महर्षियोंका चिन्तन

करो। उसके बाद उदयकालमें सदा भगवान् सूर्यको प्रणाम करो। गन्ध, पुष्प, ताम्बूल, शाक और पके फल आदि भक्ष्य-भोज्य प्रिय एवं नूतन पदार्थ पहले भगवान् शिवको अर्पण करके फिर प्रसादरूपसे उसका उपभोग करो। जो कुछ दान, सत्कर्म, जप, स्नान, होम, चिन्तन तथा तप तुम्हारे द्वारा किया जाय, वह सब भगवान् शिवको समर्पित कर दो। खाते, पाठ करते, सोते, घूमते, देखते, सुनते, बोलते और ग्रहण करते समय सदा भगवान् शिवका ही चिन्तन करो। प्रतिदिन मन्त्रराज पंचाक्षरका जप और ध्यान करते हुए सदा भगवान् सदाशिवके चरणोंमें अपने मनको रमाते रहो। वत्स! यह संक्षेपसे तुम्हारे लिये धर्मका उपदेश किया गया है।

शिवयोगीसे शिव-कवचका उपदेश और दिव्य खड्ग एवं शंख पाकर भद्रायुका शत्रुओंको जीतना तथा निषधराजकी पुत्रीसे उसका विवाह

ऋषभ शिवयोगी कहते हैं—हे भद्रायु! पवित्र स्थानमें यथायोग्य आसन बिछाकर बैठे। इन्द्रियोंको अपने वशमें करके प्राणायामपूर्वक अविनाशी भगवान् शिवका चिन्तन करे। परमानन्दमय भगवान् महेश्वर हृदय-कमलके भीतरकी कर्णिकामें विराजमान हैं। उन्होंने अपने तेजसे आकाशमण्डलको व्याप्त कर रखा है। वे इन्द्रियातीत, सूक्ष्म, अनन्त एवं सबके आदि कारण हैं। इस प्रकार ध्यानके द्वारा समस्त कर्मबन्धनका नाश करके चिरकालतक चिदानन्दमय भगवान् सदाशिवमें अपने चित्तको लगाये रहे। फिर षडक्षरन्यासके द्वारा अपने मनको एकाग्र करके मनुष्य (निम्नलिखित) शिवकवचके द्वारा अपनी रक्षा करे।

'सर्वदेवमय महादेवजी गहरे संसार-कूपमें गिरे हुए मुझ असहायकी रक्षा करें। उनका दिव्य नाम मेरे समस्त हृदयस्थित पापोंका नाश करे। सम्पूर्ण विश्व जिनकी मूर्ति है, जो ज्योतिर्मय आनन्दघनस्वरूप चिदात्मा हैं, वे भगवान् शिव मेरी सर्वत्र रक्षा करें। जो सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म हैं, महान् शक्तिसे सम्पन्न हैं, वे 'ईश्वर' महादेवजी सम्पूर्ण भयोंसे मेरी रक्षा करें। जिन्होंने पृथ्वीके रूपमें इस विश्वको धारण कर रखा है, वे अष्टमूर्ति 'गिरीश' पृथ्वीसे मेरी रक्षा करें। जो जलके रूपमें जीवोंको जीवन-दान दे रहे हैं, वे जलसे मेरी रक्षा करें। जो विशद लीलाविहारी 'शिव' कल्पके अन्तमें समस्त भुवनोंको विदग्ध करके आनन्दसे नृत्य करते हैं, वे कालरुद्र भगवान् दावानलसे, आँधी-तूफानोंसे और समस्त तापोंसे मेरी रक्षा करें। प्रदीप्त विद्युत् एवं स्वर्णके सदृश जिनकी कान्ति है, विद्या, वर, अभय (मुद्रा) और कुठार जिनके करकमलोंमें सुशोभित हैं, जो चतुर्मुख और त्रिलोचन हैं, वे 'सत्पुरुष' भगवान् पूर्व दिशामें निरन्तर मेरी रक्षा करें। जो कुठार, वेद, अंकुश, पाश, शूल, कपाल, नगाड़ा और रुद्राक्षकी मालाको धारण किये हुए हैं, जो चतुर्मुख हैं, वे नीलरुचि, त्रिनेत्र 'अघोर' भगवान् दक्षिण दिशामें मेरी रक्षा करें। कुन्द, चन्द्रमा, शंख और स्फटिकके समान जिनकी उज्ज्वल कान्ति है, वेद, रुद्राक्षमाला, वर और अभय (मुद्रा)-से जो सुशोभित हैं, वे महाप्रभावशाली चतुरानन, त्रिलोचन 'सद्योधिजात' भगवान् पश्चिम दिशामें मेरी रक्षा करें। जिनके हाथोंमें वर, अभय (मुद्रा), रुद्राक्षमाला और टाँकी विराजमान हैं, कमल-किंजल्कके सदृश जिनका वर्ण है, वे चतुर्मुख त्रिनेत्र 'वामदेव'

भगवान् उत्तर दिशामें मेरी रक्षा करें। जिनके करकमलोंमें वेद, अभय, वर, अंकुश, टाँकी, पाश, कपाल, नगाड़ा, रुद्राक्षमाला और शूल सुशोभित हैं, जो सितद्युति हैं, वे परम प्रकाशरूप पंचमुख 'ईशान' भगवान् मेरी ऊपरसे रक्षा करें। भगवान् 'चन्द्रमौलि' मेरे सिरकी, 'भालनेत्र' मेरे भालकी, 'भगनेत्रहारी' मेरे नेत्रोंकी, 'विश्वनाथ' मेरी नासिकाकी, 'श्रुतिगीतकीर्ति' कानोंकी, 'पंचमुख' मुखकी, 'वेदजिह्व' जीभकी, 'गिरीश' गलेकी, 'नीलकण्ठ' दोनों हाथोंकी, 'धर्मबाहु' कन्धोंकी, 'दक्षयज्ञ-विध्वंसी' वक्ष:स्थलकी, 'गिरीन्द्रधन्वा' पेटकी, 'कामदेवके नाशक' मध्यदेशकी, 'गणेशजीके पिता' नाभिकी, 'धूर्जटि' कटिकी, 'कुबेरमित्र' दोनों पिण्डलियोंकी, 'जगदीश्वर' दोनों घुटनोंकी, 'पुंगवकेतु' दोनों जाँघोंकी और 'सुरवन्द्यचरण' मेरे पैरोंकी सदैव रक्षा करें। 'महेश्वर' दिनके पहले प्रहरमें मेरी रक्षा करें। 'वामदेव' मध्यके प्रहरमें, 'त्र्यम्बक' तीसरे प्रहरमें और 'वृषभध्वज' दिनके अन्तवाले प्रहरमें मेरी रक्षा करें। 'शशिशेखर' रात्रिके आरम्भमें, 'गंगाधर' अर्धरात्रिमें, 'गौरीपति' रात्रिके अन्तमें और 'मृत्युंजय' सर्वकालमें मेरी रक्षा करें। 'शंकर' अन्त:स्थित अवस्थामें मेरी रक्षा करें। 'स्थाणु' बहि:स्थित रक्षा करें। 'पशुपति' बीचमें रक्षा करें और 'सदाशिव' सब ओर मेरी रक्षा करें। 'भुवनैकनाथ' खड़े होनेके समय, 'प्रमथनाथ' चलते समय, 'वेदान्तवेद्य' बैठे रहते समय और 'अविनाशी शिव' सोते समय मेरी रक्षा करें। 'नीलकण्ठ' रास्तेमें मेरी रक्षा करें। 'त्रिपुरारी' शैलादि दुर्गोंमें और उदारशक्ति 'मृगव्याध' वनवासादि महान् प्रवासोंमें मेरी रक्षा करें। जिनका प्रबल क्रोध कल्पोंका अन्त करनेमें अत्यन्त पटु है, जिनके प्रचण्ड अट्टहास्यसे ब्रह्माण्ड काँप उठता है, वे 'वीरभद्रजी' समुद्रके सदृश भयानक शत्रुसेनाके दुर्निवार महान् भयसे मेरी रक्षा करें। भगवान् 'मृड' मुझपर आततायीरूपसे आक्रमण करनेवालोंकी हजारों, दस हजारों, लाखों और करोड़ों पैदलों, घोड़ों, हाथियों और रथोंसे युक्त अति भीषण सैकड़ों अक्षौहिणी सेनाओंका अपनी घोर कुठार-धारसे छेदन करें। भगवान् 'त्रिपुरान्तक'का प्रलयाग्निके समान ज्वालाओंसे युक्त जलता हुआ त्रिशूल मेरे दस्युदलका विनाश कर दे और उनका पिनाक धनुष शार्दूल, सिंह, रीछ और भेड़िया आदि हिंस्र जन्तुओंको सन्त्रस्त करे। वे जगदीश्वर मेरे बुरे स्वप्न, बुरे शकुन, बुरी गति, मनकी दुष्ट भावना, दुर्भिक्ष, दुर्व्यसन, दु:सह अपयश, उत्पात, सन्ताप, विषभय, दुष्ट ग्रहोंके दु:ख तथा समस्त रोगोंका नाश करें।'

''सम्पूर्ण तत्त्व जिनके स्वरूप हैं, जो सम्पूर्ण तत्त्वोंमें विचरण करनेवाले, समस्त लोकोंके एकमात्र कर्ता और सम्पूर्ण विश्वके एकमात्र भरण-पोषण करनेवाले हैं, जो अखिल विश्वके एक ही संहारकारी, सब लोकोंके एकमात्र गुरु, समस्त संसारके एक ही साक्षी, सम्पूर्ण वेदोंके गूढ़ तत्त्व, सबको वर देनेवाले, समस्त पापों और पीड़ाओंका नाश करनेवाले, सारे संसारको अभय देनेवाले, सब लोगोंके एकमात्र कल्याणकारी, चन्द्रमाका मुकुट धारण करनेवाले, अपने सनातन प्रकाशसे प्रकाशित होनेवाले, निर्गुण, उपमारहित, निराकार, निराभास, निरामय, निष्प्रपंच, निष्कलंक, निर्द्वन्द्व, नि:संग, निर्मल, गतिशून्य, नित्यरूप, नित्यवैभवसे सम्पन्न, अनुपम ऐश्वर्यसे सुशोभित, आधारशून्य, नित्य, शुद्ध-बुद्ध, परिपूर्ण, सच्चिदानन्दघन, अद्वितीय तथा परम शान्त, प्रकाशमय, तेजस्वरूप हैं, उन भगवान् सदाशिवको नमस्कार है। हे महारुद्र! महारौद्र, भद्रावतार, दु:खदावाग्नि-विदारण, महाभैरव, कालभैरव कल्पान्तभैरव, कपालमालाधारी! हे खट्वांग, खड्ग, ढाल, पाश, अंकुश, डमरू, शूल, धनुष, बाण, गदा, शक्ति, भिन्दिपाल, तोमर, मुशल, मुद्गर, पट्टिश, परशु, परिघ, भुशुण्डि, शतघ्नी और चक्र आदि आयुधोंके द्वारा भयंकर हजार हाथोंवाली!

हे मुखदंष्ट्राकराल, विकटअट्टहास्य-विस्फारित-ब्रह्माण्डमण्डल, नागेन्द्रकुण्डल, नागेन्द्रवलय, नागेन्द्रचर्मधर, मृत्युंजय, त्र्यम्बक, त्रिपुरान्तक, विरूपाक्ष विश्वेश्वर, विश्वरूप, वृषवाहन, विधुभूषण और विश्वतोमुख! आपकी जय हो, जय हो। आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। मेरे महामृत्यु-भयको जला दीजिये, जला दीजिये। अपमृत्युका नाश कीजिये, नाश कीजिये। (बाहरी और भीतरी) रोग-भयको जड़से मिटा दीजिये, जड़से मिटा दीजिये। सर्पविष-भयको शान्त कीजिये, शान्त कीजिये। चोर-भयको मार डालिये, मार डालिये। मेरे (काम-क्रोध-लोभादि भीतरी तथा इन्द्रियोंके और शरीरके द्वारा होनेवाले पाप-कर्मरूपी बाहरी) शत्रुओंको उच्चाटन कीजिये, उच्चाटन कीजिये। शूलके द्वारा विदारण कीजिये, विदारण कीजिये। कुठारके द्वारा काट डालिये, काट डालिये। खड्गके द्वारा छेद डालिये, छेद डालिये। खट्वांगके द्वारा नाश कीजिये, नाश कीजिये। मुशलके द्वारा पीस डालिये, पीस डालिये और बाणोंके द्वारा बींध डालिये, बींध डालिये। आप मेरी हिंसा करनेवाले राक्षसोंको भय दिखाइये, भय दिखाइये। भूतोंका विदारण कीजिये, विदारण कीजिये। कूष्माण्ड, बेताल, मारियों और ब्रह्मराक्षसोंको सन्त्रस्त कीजिये, सन्त्रस्त कीजिये। मुझको अभय कीजिये, अभय कीजिये। मुझ डरे हुएको आश्वासन दीजिये, आश्वासन दीजिये। नरक-भयसे मेरा उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये। मुझे जीवन-दान दीजिये, जीवन-दान दीजिये। क्षुधा-तृष्णासे मुझको आप्यायित कीजिये, आप्यायित कीजिये। आपकी जय हो, जय हो। मुझ दुःखातुरको आनन्दित कीजिये, आनन्दित कीजिये। शिवकवचसे मुझे आच्छादित कीजिये, आच्छादित कीजिये। त्र्यम्बक! सदाशिव! आपको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है।''

इस प्रकार मैंने तुम्हें वरदायक शिव-कवचका उपदेश किया है। यह सब बाधाओंको शान्त करनेवाला तथा समस्त प्राणियोंके लिये गोपनीय वस्तु है। जो मनुष्य इस उत्तम शिव-कवचको सदा धारण करता है, उसे भगवान् शंकरकी कृपासे कहीं भी भय नहीं प्राप्त होता। जिसकी आयु क्षीण हो गयी है, जो मरणासन्न है अथवा महान् रोगसे मृतप्राय हो रहा है, वह भी इस कवचको धारण करनेसे तत्काल सुखी होता है और दीर्घ आयु पाता है। वत्स! मेरे दिये हुए इस उत्तम शिव-कवचको तुम श्रद्धापूर्वक धारण करो, इससे तुम शीघ्र ही कल्याणके भागी होओगे।

ऐसा कहकर ऋषभ योगीने उस राजकुमारको बड़ी भारी आवाज करनेवाला एक शंख तथा शत्रुओंका नाश करनेवाला एक खड्ग दिया। फिर भस्मको अभिमन्त्रित करके राजकुमारके सब अंगोंमें लगाया और उसे बारह हजार हाथियोंका बल प्रदान किया। तदनन्तर योगीने कहा—'इस तलवारकी धार बड़ी पैनी है। तुम जिसको एक बार इसे दिखा दोगे, उस शत्रुकी तत्काल मृत्यु हो जायगी; तथा तुम्हारे जो शत्रु इस शंखकी ध्वनि सुनेंगे, वे मूर्च्छित होकर गिर जायँगे, अचेत होकर हथियार डाल देंगे। ये खड्ग और शंख दोनों ही दिव्य हैं। इनके प्रभावसे और भगवान् शिवके कवचकी महिमासे बारह हजार हाथियोंके समान महान् बलसे तथा भस्मधारणजनित शक्तिसे तुम शत्रु-सेनापर अवश्य विजय प्राप्त करोगे। पिताके सिंहासनको पाकर इस पृथ्वीकी रक्षा करोगे।' इस प्रकार मातासहित भद्रायुको भलीभाँति उपदेश करके उन दोनोंसे पूजित हो योगीबाबा इच्छानुसार चले गये।

इधर मगध देशके राजाने राजा वज्रबाहुको युद्धमें हराकर उनकी राजधानीको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, उनकी स्त्रियों और गोधन आदिको हर लिया और वज्रबाहुको भी बलपूर्वक बाँधकर रथपर बैठाकर वे शत्रुलोग अपने नगरको ले गये। इस प्रकार राष्ट्रके विनाशका भयंकर कोलाहल

होनेपर बलवान् राजकुमार भद्रायुने भी यह समाचार सुना कि शत्रुओंने मेरे पिताको बाँध लिया, मेरी माताओंको भी हर लिया और दशार्णदेशका राज्य नष्ट कर दिया है। यह सुनकर राजकुमार भद्रायु सिंहकी भाँति गर्जना करने लगा। उसने शंख और खड्ग ले लिये, कवच पहना और घोड़ेपर सवार हो वह शत्रुओंको जीतनेकी इच्छासे बड़े वेगसे उस स्थानपर आया, जहाँ मागधसेना भरी हुई थी। राजकुमार शीघ्र ही शत्रुओंकी सेनामें घुस गया और धनुषको कानतक खींचकर बाणोंकी वर्षा करने लगा। राजपुत्रके बाणोंकी मार खाकर शत्रु भी उसपर टूट पड़े और बड़े वेगसे भयंकर बाणोंद्वारा उसे घायल करने लगे। युद्धोन्मत्त शत्रुओंके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षासे आहत होकर भी धीर-वीर राजकुमार रणभूमिमें विचलित नहीं हुआ। वह शिवकवचसे पूर्णत: सुरक्षित था। मागध-सैनिकोंकी अस्त्र-वर्षाका सामना करते हुए ही वीरवर भद्रायुने शत्रुसेनामें प्रवेश करके बहुत-से रथों, हाथियों और पैदल सैनिकोंको शीघ्रतापूर्वक मार गिराया। रणभूमिमें ही एक रथीको सारथिसहित मारकर राजकुमारने उस रथपर अधिकार कर लिया और अपने मित्र वैश्यकुमारको सारथि बनाकर युद्धमें विचरण प्रारम्भ किया। ऐसा जान पड़ता था, मानो मृगोंके झुंडमें कोई सिंह भ्रमण कर रहा है। तब शत्रुसेनाके सभी बलवान् सेनापति अपना धनुष उठाये क्रोधमें भरकर केवल उसीकी ओर दौड़ पड़े। यह देख राजकुमार भद्रायु उन आक्रमणकारियोंके सामने अपना भयंकर खड्ग उठाये उन्हें अपना पराक्रम दिखलानेके लिये आगे बढ़ा। चमकती हुई विकराल तलवारको देखते ही सब सेनापति सहसा उसके प्रभावसे प्रतिहत हो प्राणोंसे हाथ धो बैठे। उस रणभूमिमें जो-जो सैनिक उस चमचमाती हुई तलवारको देख लेते थे, उन सबकी तत्काल मृत्यु हो जाती थी। तदनन्तर भद्रायुने शत्रुओंकी सम्पूर्ण सेनाका नाश करनेके लिये अतिशय गर्जना करनेवाले उस महाशंखको बजाया। उस शंख-ध्वनिके सुनते ही सब शत्रु मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। अचेत होकर पृथ्वीपर पड़े हुए शस्त्रहीन सैनिकोंको मृततुल्य मानकर धर्मशास्त्रके ज्ञाता राजकुमारने उनका वध नहीं किया। अपने बँधे हुए पिताको बन्धनमुक्त करके शत्रुओंके वशमें पड़ी हुई अपनी माताओंको भी राजकुमारने छुड़ाया। इसी प्रकार मुख्य-मुख्य मन्त्रियों तथा अन्य पुरवासियोंकी स्त्रियों, बालकों और कन्याओंको गोधन आदिसहित शत्रुओंके भयसे मुक्त करके उन सबको धैर्य बँधाया। तत्पश्चात् राजकुमारने नगरके राजा, मन्त्री तथा मुख्य-मुख्य अधिकारियों और सेनापतियोंको कैद करके बलपूर्वक अपनी पुरीमें प्रवेश कराया। पहले युद्धमें जो लोग चारों दिशाओंमें भाग गये थे, वे सब विश्वस्त होकर लौट आये और राजकुमारका पराक्रम देखकर सबके मनमें बड़ा विस्मय हुआ। सब लोग सोचने लगे—'अहो! यह कोई योगसिद्ध अथव तप:सिद्ध पुरुष है, या कोई देवता है। क्योंकि इसने जो महान् कर्म किया है, वह मनुष्यकी शक्तिसे परे है। इस अनन्त शक्तिधारी वीरने नौ अक्षौहिणी सेनाको परास्त किया है।'

इसी समय भद्रायुके पिता राजा वज्रबाहु विस्मय और आह्लादमें डूबे हुए तथा नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाते हुए उसके सामने आये। राजकुमारने प्रेमसे विह्वल होकर पिताको प्रणाम किया। तब राजाने पूछा—'महामते! तुम कौन हो, देवता हो या मनुष्य? अथवा कोई गन्धर्व तो नहीं हो? तुम्हारे माता-पिता कौन हैं, तुम्हारा देश कौन-सा है और तुम्हारा नाम क्या है? तुमने हमें और हमारी स्त्रियोंको किस कारणसे शत्रुओंके बन्धनसे छुड़ाया है? तुम्हारे इस ऋणसे बन्धु-बान्धवोंसमेत मैं हजार जन्मोंमें भी मुक्त नहीं हो सकता। इन पुत्रों, इन पत्नियों तथा इस राज्य और नगरको छोड़कर मेरा चित्त तुम्हींमें प्रेमपूर्वक बँधा हुआ है।'

भद्रायु बोला—राजन्! यह मेरा सखा वैश्यपुत्र है। इसका नाम सुनय है। मैं इसीके सुन्दर गृहमें अपनी माताके साथ निवास करता हूँ। मेरा नाम भद्रायु है। मैं अपना वृत्तान्त पीछे आपको बताऊँगा। इस समय आप स्त्रियों और मित्रजनोंके साथ नगरमें प्रवेश कीजिये और शत्रुओंका भय छोड़कर सुखसे रहिये। जबतक मैं पुन: लौटकर न आऊँ, तबतक इन शत्रुओंको न छोड़ियेगा।

ऐसा कहकर राजकुमार भद्रायु राजाकी आज्ञा ले अपने घरको आया और वहाँ उसने अपनी मातासे सब समाचार कह सुनाया। रानीने प्रसन्न होकर अपने पुत्रको हृदयसे लगा लिया और वैश्यराजने भी प्रेमसे राजकुमारका आलिंगन करके उसका विशेष सत्कार किया। इधर महाराज वज्रबाहु स्त्री, पुत्र और मन्त्रियोंके साथ अपने राजमहलमें प्रवेश करके बहुत प्रसन्न हुए। वह रात्रि व्यतीत होनेपर योगियोंमें श्रेष्ठ ऋषभ महारानी सीमन्तिनीके पति राजा चन्द्रांगदके समीप गये और भद्रायुकी उत्पत्ति तथा उसके अलौकिक पराक्रमका वर्णन करके एकान्तमें प्रेमपूर्वक बोले—'राजन्! तुम अपनी पुत्री कीर्तिमालिनीका विवाह राजकुमार भद्रायुके साथ करो। इस प्रकार निषधराजको समझाकर योगी ऋषभ चले गये।'

तदनन्तर राजा चन्द्रांगदने वैवाहिक मंगलके लिये उपयुक्त शुभ मुहूर्तमें भद्रायुको बुलाया और अपनी कीर्तिमालिनी नामक पुत्री उसे ब्याह दी। भद्रायुके पिता राजा वज्रबाहुको भी बुलाकर निषधराजने मन्त्रियोंसहित उनकी अगवानी की और नगरमें आनेपर उनका यथावत् सत्कार किया। वज्रबाहुने देखा शत्रुओंका नाश करनेवाला भद्रायु विवाह करके मेरे चरणोंमें प्रणाम कर रहा है। तब उन्होंने बड़े प्रेम और हर्षसे उठाकर उसे हृदयसे लगा लिया तथा निषधराजसे कहा—'चन्द्रांगदजी! आपका यह दामाद बड़ा बलवान् है। मैं इसके वंश और जन्मका यथार्थ परिचय सुनना चाहता हूँ।' उनके इस प्रकार पूछनेपर निषधराजने उनसे एकान्तमें मिलकर हँसते हुए कहा—'महाराज! यह आपका ही पुत्र है। शैशवकालमें यह रोगसे पीड़ित था और इसकी माता भी रोगसे व्याकुल रहती थी। अत: आपने मातासहित इस बालकको वनमें त्याग दिया था। बालकके साथ वनमें घूमती हुई वह असहाय नारी दैवयोगसे एक वैश्यके घरमें जा पहुँची। वैश्यने उसकी रक्षा की। फिर आपका यह बालक रोगसे अत्यन्त पीड़ित होकर मर गया। किंतु किसी योगिराजने आकर इसे पुन: जीवित कर दिया। योगिराजका नाम ऋषभ है। शिवयोगी ऋषभके ही प्रभावसे ये माँ, बेटे देवताओंके समान दिव्य रूपको प्राप्त हुए हैं। उन्हींके दिये हुए शत्रुनाशक खड्ग और शंखके द्वारा शिव-कवचसे सुरक्षित हो भद्रायुने युद्धमें शत्रुओंपर विजय पायी है। ये अकेले ही बारह हजार हाथियोंका बल धारण करते हैं। ये सब विद्याओंमें पारंगत हैं और अब मेरे जामाता भी हो गये हैं। अत: आप इन्हें और इनकी पतिव्रता माताको साथ लेकर अपने नगरको जाइये। इससे आप उत्तम कल्याणके भागी होंगे।'

ये सब बातें बताकर राजा चन्द्रांगद अपने रनिवासमें ठहरी हुई राजाकी ज्येष्ठ पत्नीको वहाँ ले आये। वे वस्त्र-आभूषणोंसे विभूषित थीं। उन्होंने वज्रबाहुको रानीसे मिलाया। यह सब वृत्तान्त सुनकर और देखकर राजा वज्रबाहु बहुत लज्जित हुए और मूर्खतावश उनके द्वारा जो अनुचित कर्म हो गया था, उसकी वे स्वयं ही निन्दा करने लगे। पत्नी और पुत्रके दर्शनसे उन्हें बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई। उनके सब अंगोंमें रोमांच हो आया और उन्होंने दोनोंको हृदयसे लगा लिया। इस प्रकार निषधराजसे पूजित और प्रशंसित होकर राजा वज्रबाहुने अपनी बड़ी रानीको, राजकुमार भद्रायुको और पुत्रवधू कीर्तिमालिनीको भी साथ ले परिवारसहित अपनी राजधानीको प्रस्थान किया।

वहाँ जाकर भद्रायुने समस्त पुरवासियोंको आनन्दित किया। समय आनेपर उसके पिता जब स्वर्गवासी हो गये, तब युवावस्थामें अद्‌भुत पराक्रमी भद्रायुने ही सम्पूर्ण पृथ्वीका शासन किया और ब्रह्मर्षियोंके समीप मगधराज हेमरथसे मित्रता जोड़कर उन्हें अपने बन्धनसे मुक्त किया।

भद्रायु तथा कीर्तिमालिनीके भक्तिभावकी परीक्षा लेकर भगवान् शिवका उन्हें वरदान देना

सूतजी कहते हैं—राजसिंहासन प्राप्त कर लेनेपर वीर राजा भद्रायुने किसी समय अपनी धर्मपत्नीके साथ रमणीय वनमें प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने देखा, कुछ ही दूरपर एक ब्राह्मण पति-पत्नी चिल्लाते हुए भागे जाते हैं और कोई बाघ उनका पीछा कर रहा है। वे दोनों पति-पत्नी कह रहे थे—'महाराज! हा राजन्! हे करुणानिधे! हमारी रक्षा कीजिये,रक्षा कीजिये।' यह पुकार सुनकर राजाने अपना धनुष उठाया। इतनेमें ही वह व्याघ्र आ पहुँचा। उसने ब्राह्मणीको पकड़ लिया। वह 'हा नाथ! हा नाथ! हा प्राणवल्लभ! हा शम्भो! हा जगदीश्वर!' आदि कहकर विलाप करने लगी। व्याघ्र बड़ा भयानक था। उसने ज्यों ही ब्राह्मणीको पकड़ा, त्यों ही राजा भद्रायुने अपने तीखे बाणोंसे

उसके मर्ममें आघात किया। किंतु वह महाबली व्याघ्र उन बाणोंसे तनिक भी व्यथित न हो, ब्राह्मणीको बलपूर्वक खींचकर दूर निकल गया। अपनी पत्नीको व्याघ्रके पंजेमें पड़ी हुई देख ब्राह्मणको बड़ा दुःख हुआ। वह विलाप करने लगा—'हा प्रिये! हा कान्ते! हा पतिव्रते! मुझे यहाँ अकेला छोड़कर तुम परलोकमें कैसे चली गयी? तुमको छोड़कर मैं कैसे जीवित रह सकता हूँ। राजन्! तुम्हारे वे बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र कहाँ हैं, जिनकी बड़ी प्रशंसा सुनी जाती थी? वह महान् धनुष अब क्या हो गया? तुम्हारा बारह हजार हाथियोंसे भी अधिक बल कहाँ है? तुम्हारे शंख, खड्ग तथा मन्त्रास्त्रविद्यासे क्या लाभ हुआ? दूसरोंको क्षीण होनेसे बचाना क्षत्रियका परम धर्म है। धर्मज्ञ राजा अपना धन और प्राण देकर भी शरणमें आये हुए दीन-दुःखियोंकी रक्षा करते हैं। जो पीड़ितोंकी प्राणरक्षा नहीं कर सकते, ऐसे लोगोंके जीवनकी अपेक्षा तो उनकी मृत्यु ही श्रेष्ठ है।'

इस प्रकार ब्राह्मणका विलाप और उसके मुखसे अपने पराक्रमकी निन्दा सुनकर राजाने शोकसे मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया—'अहो! आज भाग्यके उलट-फेरसे मेरा पराक्रम नष्ट हो गया। मेरे धर्मका भी नाश हो गया। अतः अब मेरी सम्पदा, राज्य और आयुका भी निश्चय ही नाश हो जायगा।' यों विचारकर राजा भद्रायु ब्राह्मणके चरणोंमें गिर पड़े और

उसे धीरज बँधाते हुए बोले—'ब्रह्मन्! मेरा पराक्रम नष्ट हो गया है। मुझ क्षत्रियाधमपर आप कृपा कीजिये। महामते! शोक छोड़ दीजिये। मैं आपको मनोवांछित पदार्थ दूँगा। यह राज्य, यह रानी और मेरा यह शरीर सब कुछ आपके अधीन है। बोलिये आप क्या चाहते हैं?'

ब्राह्मण बोले—राजन्! अन्धेको दर्पणसे क्या काम? जो भिक्षा माँगकर जीवन-निर्वाह करता हो, वह बहुत-से घर लेकर क्या करेगा। जो मूर्ख है, उसे पुस्तकसे क्या काम तथा जिसके पास स्त्री नहीं है, वह धन लेकर क्या करेगा? मेरी पत्नी चली गयी, मैंने कभी काम-सुखका उपभोग नहीं किया। अत: कामभोगके लिये आप अपनी इस बड़ी रानीको मुझे दे दीजिये।

राजाने कहा—ब्रह्मन्! क्या यही तुम्हारा धर्म है? क्या तुम्हें गुरुने यही उपदेश किया है? क्या तुम नहीं जानते कि परायी स्त्रीका स्पर्श स्वर्ग एवं सुयशकी हानि करनेवाला है? परस्त्रीके उपभोगसे जो पाप कमाया जाता है, उसे सैकड़ों प्रायश्चित्तोंद्वारा भी धोया नहीं जा सकता।

ब्राह्मण बोले—राजन्! मैं अपनी तपस्यासे भयंकर ब्रह्महत्या और मदिरापान-जैसे पापका भी नाश कर डालूँगा। फिर परस्त्रीसंगम किस गिनतीमें है। अत: आप अपनी इस भार्याको मुझे अवश्य दे दीजिये। अन्यथा आप निश्चय ही नरकमें पड़ेंगे।

ब्राह्मणकी इस बातपर राजाने मन-ही-मन विचार किया कि ब्राह्मणके प्राणोंकी रक्षा न करनेसे महापाप होगा। अत: इससे बचनेके लिये पत्नीको दे डालना ही श्रेष्ठ है। इस श्रेष्ठ ब्राह्मणको अपनी पत्नी देकर मैं पापसे मुक्त हो शीघ्र ही अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा। मन-ही-मन ऐसा निश्चय करके राजाने आग जलायी और ब्राह्मणको बुलाकर उसके प्रति अपनी पत्नीको दे दिया। तत्पश्चात् स्नान करके पवित्र हो देवताओंको प्रणाम करके उन्होंने अग्निकी दो बार परिक्रमा की और एकाग्रचित्त होकर भगवान् शिवका ध्यान किया। इस प्रकार राजाको अग्निमें गिरनेके लिये उद्यत देख जगत्पति भगवान् विश्वनाथ सहसा वहाँ प्रकट हो गये। उनके पाँच मुँह थे। मस्तकपर चन्द्रकला आभूषणका काम दे रही थी। कुछ-कुछ पीले रंगकी जटा लटकी हुई थी। वे कोटि-कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी थे। हाथोंमें त्रिशूल, खट्वांग, कुठार, ढाल, मृग, अभय, वरद और पिनाक धारण किये, बैलकी पीठपर बैठे हुए भगवान् नीलकण्ठको राजाने अपने आगे प्रत्यक्ष देखा। उनके दर्शनजनित आनन्दसे युक्त हो राजा भद्रायुने हाथ जोड़कर स्तवन किया।

राजा बोले—जिनका दूसरा कोई स्वामी नहीं है, जो अविकारी, प्रधान गुणोंसे युक्त और महान् हैं तथा स्वयं कारणरहित होकर कारणोंके भी कारण हैं, उन सच्चिदानन्दमय प्रशान्तस्वरूप देव परमशिवको मैं नमस्कार करता हूँ। आप सम्पूर्ण विश्वके साक्षी, इस जगत्के कर्ता, महान् तेजोमय तथा सबके हृदयमें अन्तर्यामी रूपसे स्थित हैं। इसीलिये विद्वान् पुरुष सदा आपकी खोज करते हैं और योगीजन अपनी चित्तवृत्तियोंको रोककर अनेक प्रकारके योग-साधनोंद्वारा आपकी आराधना करते हैं। जो लोग एकात्मताकी भावना करते हैं, उनके लिये आप एक हैं और जिनकी बुद्धिमें नानात्वकी प्रतीति होती है, उनके लिये आप ही अनेक रूपोंमें व्यक्त हुए हैं। आपका पद (स्वरूप) इन्द्रियोंसे परे, सबका साक्षी, आविर्भाव और तिरोभावकी लीलासे युक्त तथा मनकी पहुँचसे दूर है। आप मन और वाणीके लिये दुर्लभ हैं। आपमें मोहका सर्वथा अभाव है। आप परमात्मरूप हैं। मेरी वाणी केवल सत्त्वादि गुणोंमें स्थित और प्रकृतिमें विलीन होनेवाली है। अत: वह आपके दिव्य विग्रहकी स्तुति करनेमें कैसे

समर्थ हो सकती है? तथापि शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले आपके चरण-कमलोंका जो लोग भक्तिपूर्वक आश्रय लेते हैं, वे आपको प्राप्त होते हैं। अतः भयंकर भवरूपी दावानलसे पीड़ित हो मैं संसारभयकी शान्तिके लिये नित्य आपका भजन करता हूँ। देवताओंके भी देवता, कल्याणनिकेतन, भगवान् महादेवको नमस्कार है। सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले त्रिमूर्तिरूप आपको नमस्कार है। विश्वके आदिरूप और संसारके प्रथम साक्षी आपको नमस्कार है। सत्तामात्र तत्त्व आपका स्वरूप है, आपको नमस्कार है। आप ज्ञानानन्दघन हैं, आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें निवास करनेवाले हैं। आपकी आत्मशक्ति सब क्षेत्रोंसे भिन्न है। आप ही अशक्त हैं और आप ही अतिशय शक्तिमान्‌के रूपमें आभासित होते हैं। आप भूमा परमेश्वरको नमस्कार है। आप नित्य, निराभास, सत्यज्ञानमय विशुद्ध अन्तरात्मा हैं, सबसे दूर और समस्त कर्मोंसे मुक्त हैं। आपको प्रणाम है। आप वेदान्तद्वारा जाननेयोग्य तथा वेदके मूलभागमें निवास करनेवाले हैं, आपको प्रणाम है। आपकी चेष्टाएँ (लीलाएँ) विवेकयुक्त एवं पवित्र होती हैं। आप त्रिगुणमयी वृत्तियोंसे सर्वथा दूर हैं, आपको नमस्कार है। आपका पराक्रम कल्याणमय है, आप कल्याणमय फल देनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप अनन्त, महान्, शान्त एवं शिवरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप अघोर (सौम्य), अत्यन्त घोर और घोर पापराशिका विदारण करनेवाले हैं। संसारबन्धनके बीजोंको भून डालनेवाले सर्वश्रेष्ठ गुरु भगवान् भर्गको नमस्कार है। मोहरहित एवं निर्मल आत्मगुणोंवाले आपको नमस्कार है। जगदीश्वर! सनातन देव शंकर! विरूपाक्ष रुद्र! अविनाशी मृत्युंजय! मेरी रक्षा कीजिये। हे कल्याणमय चन्द्रशेखर! शान्तमूर्ति गौरीपते! सूर्य, चन्द्र एवं अग्निमय नेत्रोंवाले गंगाधर! अन्धकासुरका नाश करनेवाले पुण्यकीर्ति भूतनाथ! और कैलाश पर्वतपर निवास करनेवाले महादेव! आपको बारंबार नमस्कार है।

राजाके इस प्रकार स्तुति करनेपर माता पार्वतीके साथ प्रसन्न हुए करुणानिधान महेश्वरने कहा—राजन्! तुमने किसी अन्यका चिन्तन न करके जो सदा-सर्वदा मेरा पूजन किया है, तुम्हारी इस भक्तिके कारण और तुम्हारे द्वारा की हुई इस पवित्र स्तुतिको सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। तुम्हारे भक्तिभावकी परीक्षाके लिये मैं स्वयं ब्राह्मण बनकर आया था। जिसे व्याघ्रने ग्रस लिया था, वह ब्राह्मणी और कोई नहीं, ये गिरिराजनन्दिनी उमादेवी ही थीं। तुम्हारे बाण मारनेसे भी जिसके शरीरको चोट नहीं पहुँची, वह व्याघ्र मायानिर्मित था। तुम्हारे धैर्यको देखनेके लिये ही मैंने तुम्हारी पत्नीको माँगा था। इस कीर्तिमालिनीकी और तुम्हारी भक्तिसे मैं सन्तुष्ट हूँ। तुम कोई दुर्लभ वर माँगो, मैं उसे दूँगा।

राजा बोले—देव! आप साक्षात् परमेश्वर हैं। आपने सांसारिक तापसे घिरे हुए मुझ अधमको जो प्रत्यक्ष दर्शन दिया है, यही मेरे लिये महान् वर है। देव! आप वरदाताओंमें श्रेष्ठ हैं। आपसे मैं दूसरा कोई वर नहीं माँगता। मेरी यही इच्छा है कि मैं, मेरी रानी, मेरे माता-पिता, पद्माकर वैश्य और उसके पुत्र सुनय—इन सबको आप अपना पार्श्ववर्ती सेवक बना लीजिये।

तत्पश्चात् रानी कीर्तिमालिनीने प्रणाम करके अपनी भक्तिसे भगवान् शंकरको प्रसन्न किया और यह उत्तम वर माँगा—'महादेव! मेरे पिता चन्द्रांगद और माता सीमन्तिनी—इन दोनोंको भी आपके समीप निवास प्राप्त हो।' भक्तवत्सल भगवान् गौरीपतिने प्रसन्न होकर 'एवमस्तु' कहा और उन दोनों पति-पत्नीको इच्छानुसार वर देकर वे क्षणभरमें अन्तर्धान हो गये। इधर राजाने

भगवान् शंकरका प्रसाद प्राप्त करके रानी कीर्तिमालिनीके साथ प्रिय विषयोंका उपभोग किया और दस हजार वर्षोंतक राज्य करनेके पश्चात् अपने पुत्रोंको राज्य देकर उन्होंने शिवजीके परम पदको प्राप्त किया। राजा और रानी दोनों ही भक्तिपूर्वक महादेवजीकी पूजा करके भगवान् शिवके धामको प्राप्त हुए। यह परम पवित्र, पापनाशक एवं अत्यन्त गोपनीय भगवान् शिवका विचित्र गुणानुवाद जो विद्वानोंको सुनाता है अथवा स्वयं भी शुद्धचित्त होकर पढ़ता है, वह इस लोकमें भोग-ऐश्वर्यको प्राप्तकर अन्तमें भगवान् शिवको प्राप्त होता है।

भस्मकी महिमासे ब्रह्मराक्षसका उद्धार

सूतजी कहते हैं—वामदेव नामसे प्रसिद्ध एक महातपस्वी शिवयोगी हुए हैं, जो सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे रहित, निर्गुण, शान्त, असंग, समदर्शी, आत्माराम, क्रोधको जीतनेवाले तथा गृह और गृहिणीसे हीन थे। सबके ऊपर दया करनेमें संलग्न रहनेवाले वे महात्मा एक दिन स्वेच्छानुसार घूमते-फिरते बड़े भयंकर क्रौंचारण्यमें जा पहुँचे। उस निर्जन वनमें कोई भूख-प्याससे व्याकुल अत्यन्त भयानक ब्रह्मराक्षस रहता था। वामदेवजीको देखकर उन्हें खा जानेके लिये वह राक्षस बड़े वेगसे उनकी ओर दौड़ा। उसे आते देख योगीश्वर वामदेव तनिक भी विचलित नहीं हुए। उस घोर ब्रह्मराक्षसने वेगसे दौड़कर उन्हें पकड़ लिया। पर वामदेवके अंगोंका स्पर्श होते ही उसकी सारी पापराशि तत्काल नष्ट हो गयी और उसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया। जैसे चिन्तामणि (स्पर्शमणि)-का स्पर्श करके लोहा भी सुवर्ण हो जाता है, जैसे जम्बू नदीमें पड़ी हुई मिट्टी भी सोना हो जाती है, जैसे मानस-सरोवरमें आकर कौए भी हंस हो जाते हैं और जिस प्रकार एक बार भी अमृत पी लेनेपर मनुष्य अजर-अमर देवता हो जाता है, उसी प्रकार महात्मा पुरुष अपने दर्शन तथा स्पर्श आदिसे पापियोंको भी तत्काल पवित्र कर देते हैं। अतः सत्संग दुर्लभ है*। जो राक्षस पहले भूख-प्याससे विकल हो घोररूप धारण करके वनमें भटकता फिरता था, वही साधुके सम्पर्कसे पूर्णानन्दमय हो गया। उसने योगीके युगल-चरणारविन्दोंमें प्रणाम करके कहा—'महायोगिन्! मुझपर प्रसन्न होइये। करुणानिधे! प्रसन्न होइये। कहाँ सब प्राणियोंको भय देनेवाला मुझ-जैसा पापात्मा और कहाँ आप-जैसे दयालु महात्माका दर्शन!'

वामदेवजी बोले—भयानक राक्षसका रूप धारण करके इस वनमें विचरनेवाले तुम कौन हो और यहाँ किस लिये रहते हो?

राक्षसने कहा—इससे पचीसवें जन्म पूर्व मैं पवनराष्ट्रका रक्षक था। उस समय मेरा नाम दुर्जय था। मैं बड़ा पापी और स्वेच्छाचारी था। प्रतिदिन नयी-नयी स्त्रीका उपभोग करनेकी इच्छा रखता था। नित्य एक-एक स्त्रीको भोगकर छोड़ देता और उसे घरके भीतर रखकर अन्य स्त्रियोंका अपहरण करवाता था। मेरे द्वारा भोगी हुई वे स्त्रियाँ घरके भीतर बंद रहकर दिन-रात शोकमें डूबी रहती थीं। मेरे राज्यमें जितने ब्राह्मण थे, वे सब स्त्रियोंसहित भाग गये। मैं

* यथा चिन्तामणिं स्पृष्ट्वा लोहं काञ्चनतां व्रजेत्। यथा जम्बूनदीं प्राप्य मृत्तिका स्वर्णतां व्रजेत्॥
यथा मानसमभ्येत्य वायसा यान्ति हंसताम्। यथामृतं सकृत्पीत्वा नरो देवत्वमाप्नुयात्॥
तथैव हि महात्मानो दर्शनस्पर्शनादिभिः। सद्यः पुनन्त्यघोपेतान्सत्सङ्गो दुर्लभः कृतः॥
(स्क० पु०, ब्रा० ब्रह्मो० १५। १२—१४)

सधवा, विधवा, कुमारी तथा रजस्वला सभी तरहकी स्त्रियोंका हरण करके उनके साथ कुकर्म करता था। इस प्रकार दूषित विषयभोगोंमें आसक्त, मत्त एवं मदिरापानमें रत रहनेके कारण मुझे जवानीमें ही यक्ष्मा आदि बड़े-बड़े रोगोंने घेर लिया। मन्त्रियों और सेवकोंने भी मुझे त्याग दिया। अन्तमें अपने ही कुकर्मके कारण मैं मर गया। जो मनुष्य धर्मसे भ्रष्ट हो जाता है, उसकी आयु नष्ट होती है, अयश बढ़ता है, भाग्य क्षीण होता है। वह अत्यन्त दुर्गतिमें पड़ता है तथा उसके पूर्वज पितर स्वर्गसे निश्चय ही गिर जाते हैं*। मृत्युके पश्चात् यमराजके दूत मुझे यमलोक ले गये। वहाँ मैं भयंकर नरककुण्डमें डाल दिया गया। उस कुण्डके भीतर यमदूतोंसे पीड़ित होकर मुझे तीस हजार वर्षोंतक रहना पड़ा। तदनन्तर बचे हुए पापके फलसे मैं निर्जन वनमें भूख-प्याससे विकल पिशाच हुआ। पिशाचयोनिमें मैंने एक सौ दिव्य वर्ष व्यतीत किये। फिर दूसरे जन्ममें व्याघ्र, तीसरेमें अजगर, चौथेमें भेड़िया, पाँचवेंमें सूअर, छठेमें गिरगिट, सातवेंमें कुत्ता, आठवेंमें सियार, नवेंमें गवय (नीलगाय), दसवेंमें मृग, ग्यारहवें जन्ममें वानर, बारहवेंमें गीध, तेरहवेंमें नेवला, चौदहवेंमें कौआ, पंद्रहवेंमें रीछ, सोलहवेंमें वनमुर्गा, सत्रहवेंमें गदहा, अठारहवेंमें बिलाव, उन्नीसवेंमें मेढक, बीसवेंमें कछुआ, इक्कीसवेंमें मछली, बाईसवेंमें चूहा, तेईसवेंमें उल्लू, चौबीसवेंमें जंगली हाथी और पचीसवें जन्ममें मैं ब्रह्मराक्षस हुआ। इस समय आपके शरीरके स्पर्शमात्रसे मेरी पूर्वजन्मोंकी स्मृति जाग उठी है। आपके संगसे मेरे मनमें वैराग्य एवं प्रसन्नता हुई है। महामते! ऐसा प्रभाव आपको कैसे प्राप्त हुआ?

वामदेवजी बोले—यह मेरे शरीरमें लगे हुए भस्मका महान् प्रभाव है। भगवान् शंकरके सिवा दूसरा कौन है, जो भस्मकी शक्तिको जानता हो। महादेवजीका जैसा माहात्म्य है, वैसा ही भस्मका भी है। भस्मके संसर्गसे तुम्हारी बुद्धि भी निर्मल हो गयी। अतः तुम भी श्रद्धासे पवित्र त्रिपुण्ड्र धारण करो।

महातपस्वी शिवयोगी वामदेवने इस प्रकार भस्मका माहात्म्य बतलाकर भस्मको अभिमन्त्रित करके उसे घोर ब्रह्मराक्षसको दिया। उससे ब्रह्मराक्षसने अपने ललाटमें त्रिपुण्ड्र धारण किया और उसके प्रभावसे वह तत्काल ब्रह्मराक्षस-शरीरका त्याग करके दिव्य स्वरूपसे सुशोभित होने लगा। उसने भक्तिपूर्वक गुरु वामदेवकी परिक्रमा की और दिव्य विमानपर बैठकर पुण्यलोकको प्रस्थान किया। महायोगी वामदेव साक्षात् शिवकी ही भाँति पुनः संसारमें भ्रमण करने लगे।

भस्मकी महिमा, शबरकी चिताभस्मद्वारा की हुई पूजासे शिवजीकी प्रसन्नता और उसकी जली हुई पत्नीका पुनः जीवित होना

सूतजी कहते हैं—श्रद्धा ही सम्पूर्ण धर्मोंके लिये अत्यन्त हितकर है। श्रद्धासे ही मनुष्योंको दोनों लोकोंमें सिद्धि प्राप्त होती है। श्रद्धासे भजन करनेवाले पुरुषको पत्थरकी मूर्ति भी फल देनेवाली होती है। श्रद्धा-भक्तिसे पूजा करनेपर अज्ञानी गुरु भी सिद्धिदायक हो जाता है। श्रद्धासे

* आयुर्विनश्यत्ययशो विवर्धते भाग्यं क्षयं यात्यतिदुर्गतिं व्रजेत्। स्वर्गाच्च्यवन्ते पितरः पुरातना धर्मव्यपेतस्य नरस्य निश्चितम्॥ (स्क० पु०, ब्रा० ब्रह्मो० १५। ३५)

जप किया हुआ मन्त्र अव्यवस्थित होनेपर भी फलदाता होता है। श्रद्धासे पूजा करनेपर देवता नीच पुरुषको भी फल देनेवाले होते हैं। अश्रद्धासे की हुई पूजा, दान, यज्ञ, तप और व्रत सभी निष्फल होते हैं, जैसे बाँझ वृक्षका फूल व्यर्थ होता है। जो सर्वत्र संशययुक्त, श्रद्धाहीन और अत्यन्त चपल होता है, वह परमार्थसे भ्रष्ट होकर संसार-बन्धनसे मुक्त नहीं हो पाता। मन्त्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, ओषधि तथा गुरुमें जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसी सिद्धि प्राप्त होती है*।

इस विषयमें एक अत्यन्त अद्‌भुत उपाख्यान बतलाया जाता है, जिसके श्रवणसे सब मनुष्योंकी अश्रद्धा तत्काल दूर हो जाती है। पूर्वकालमें पांचाल देशके राजाके सिंहकेतु नामसे विख्यात एक पुत्र था, जो समस्त उत्तम गुणोंसे युक्त और सदा क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहनेवाला था। एक दिन महाबली सिंहकेतु कुछ सेवकोंको साथ लेकर शिकार खेलनेके लिये वनमें गया। राजकुमारका कोई सेवक, जो शबर (भील) कुलमें उत्पन्न हुआ था, शिकारकी खोजमें इधर-उधर घूम रहा था। उसने एक टूटा-फूटा, गिरा-पड़ा पुराना देवालय देखा। उसमें चबूतरेपर एक शिवलिंग पड़ा था, जो पीठ (जलेरी)-से टूटकर अलग हो गया था। वह शिवलिंग सीधा और सूक्ष्म था। शबरने उसे मूर्तिमान् सौभाग्यकी भाँति देखा। पूर्वकर्मसे प्रेरित होकर उसने उस शिवलिंगको शीघ्रतापूर्वक उठा लिया और बुद्धिमान् राजपुत्रको दिखाया—'प्रभो! देखिये, यह कैसा सुन्दर शिवलिंग है। मैंने इसे यहीं देखा है। मैं आदरपूर्वक इसकी पूजा करूँगा। आप मुझे पूजाकी विधि बता दें, जिससे मन्त्र न जाननेवाले मुझ-जैसे पुरुषोंके द्वारा भी की हुई पूजासे भगवान् शिव प्रसन्न हों।'

निषादके इस प्रकार पूछनेपर परिहासकुशल राजकुमारने हँसकर कहा—शिवलिंगको शुद्ध आसनपर स्थापित करके सदा संकल्पपूर्वक नूतन जलसे अभिषेक करे। शुभ गन्ध, अक्षत, वनके नये-नये पत्र, पुष्प तथा धूप-दीप आदिके द्वारा पूजन करे। चिताका भस्म चढ़ावे और अपने भोजन करनेयोग्य अन्नके द्वारा भगवान्‌को नैवेद्य लगावे। पुनः धूप-दीप आदि उपचारोंको अर्पित करे। यथायोग्य नृत्य, वाद्य और गीत आदिकी भी व्यवस्था करे। फिर नमस्कार करके विधि-पूर्वक भगवान्‌का प्रसाद ग्रहण करना चाहिये। यह मैंने तुम्हें शिवपूजनकी साधारण विधि बतलायी है।

अपने स्वामीके इस प्रकार उपदेश देनेपर चण्डक नामवाले शबरने उसे सादर शिरोधार्य किया और अपने घर आकर लिंगमूर्ति महेश्वरका प्रतिदिन पूजन प्रारम्भ किया। वह प्रतिदिन चिता-भस्मका उपहार भेंट करता था। अपने लिये जो-जो वस्तु प्रिय थी, वह सब गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि पहले भगवान् शिवको निवेदन करता। उसके बाद वह भगवत्प्रसादको स्वयं ग्रहण करता था। इस प्रकार वह पत्नीके साथ भक्तिपूर्वक महेश्वरकी पूजामें संलग्न रहा। इस

* श्रद्धैव सर्वधर्मस्य चातीव हितकारिणी। श्रद्धयैव नृणां सिद्धिर्जायते लोकयोर्द्वयोः॥
श्रद्धया भजतः पुंसः शिलापि फलदायिनी। मूर्खोऽपि पूजितो भक्त्या गुरुर्भवति सिद्धिदः॥
श्रद्धया पठितो मन्त्रस्त्वबद्धोऽपि फलप्रदः। श्रद्धया पूजितो देवो नीचस्यापि फलप्रदः॥
अश्रद्धया कृता पूजा दानं यज्ञस्तपो व्रतम्। सर्वं निष्फलतां याति पुष्पं वन्ध्यतरोरिव॥
सर्वत्र संशयाविष्टः श्रद्धाहीनोऽतिचञ्चलः। परमार्थात्परिभ्रष्टः संसृतेर्न हि मुच्यते॥
मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ। यादृशी भावना यत्र सिद्धिर्भवति तादृशी॥
(स्क० पु०, ब्रा० ब्रह्मो० १७। ३—८)

आराधनामें उसके कई वर्ष बीत गये। एक दिन वह शबर जब शिवपूजाके लिये बैठा, तब देखता है कि पात्रमें चिताका भस्म तनिक भी शेष नहीं है। तब वह तुरंत उठकर दूर-दूरतक चिताभस्म ढूँढ़ता हुआ घूम आया, किंतु कहीं भी उसे चिताभस्म नहीं मिला। अन्तमें वह थककर घर लौट आया और अपनी पत्नीको बुलाकर उसने कहा—'प्रिये! चिताभस्म तो मुझे नहीं मिला। बताओ, अब क्या करूँ? आज मुझ पापीके शिव-पूजनमें विघ्न पड़ गया। पूजाके बिना मैं क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता।'

पतिको इस प्रकार व्याकुल देख शबरकी स्त्रीने कहा—नाथ! डरिये मत, मैं एक उपाय बताती हूँ। यह अपना घर बहुत दिनोंका पुराना हो गया है। मैं इसमें आग लगाकर उस अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगी। इससे आपके लिये बहुत-सा चिताभस्म तैयार हो जायगा।

शबर बोला—प्रिये! यह मानव-शरीर ही धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षका सबसे श्रेष्ठ साधन है। इस नवयौवन-सम्पन्न सुखोचित शरीरको क्यों त्याग रही हो?

शबरकी स्त्रीने कहा—जीवनकी सफलता इसीमें है कि दूसरोंके हितके लिये अपने प्राणोंका त्याग किया जाय। फिर साक्षात् शिवके लिये जो स्वयं प्राणत्याग करे, उसके लिये तो कहना ही क्या है? मैंने कौन-सी घोर तपस्या की है, जिससे भगवान् शिवकी प्रीतिके लिये प्रज्वलित अग्निमें अपने शरीरका त्याग करती हूँ।

अपनी पत्नीकी इस प्रकार स्थिरबुद्धि और शिवभक्ति देखकर दृढ़ संकल्पवाले शबरने 'तथास्तु' कहकर उसकी सराहना की। शबरीने स्वामीकी आज्ञा पाकर स्नानसे पवित्र हो अलंकार धारण किया और अपने घरमें आग लगाकर अग्निदेवकी भक्तिपूर्वक परिक्रमा करके अपने पतिदेव गुरुको नमस्कार और हृदयमें भगवान् सदाशिवका ध्यान करके अग्निमें प्रवेश करनेके लिये उद्यत हो हाथ जोड़कर इस प्रकार स्तवन किया—'हे देव! मेरी इन्द्रियाँ आपकी पूजाके लिये पुष्प हों, यह शरीर धूप एवं अगुरु हों, हृदय दीपक हो, प्राण हविष्यका काम दें और कर्मेन्द्रियाँ आपके लिये अक्षत होवें। इस समय यह जीव आपकी पूजाके फलको प्राप्त हो। मैं धनाधिपति कुबेरका पद नहीं चाहती, अविचल स्वर्गभूमिकी भी इच्छा नहीं रखती तथा ब्रह्माजीके पदकी भी अभिलाषा नहीं करती। बस, यही चाहती हूँ कि यदि फिर इस संसारमें मेरा जन्म हो, तो मैं प्रत्येक जन्ममें आपके चरणारविन्दोंके सुन्दर मकरन्दका पान करनेवाली भ्रमरी होऊँ। मेरे देवता! भले ही मेरे सैकड़ों जन्म हों, परंतु अज्ञानकी हेतुभूत माया मेरे चित्तमें प्रवेश न करे। किंचित् आधे क्षणके लिये भी मेरा हृदय आपके चरणकमलोंसे अलग न हो। महेश्वर! आपको नमस्कार है, नमस्कार है*।'

इस प्रकार देवेश्वर भगवान् शिवको प्रसन्न करके दृढ़ निश्चयवाली शबरी प्रज्वलित अग्निमें

* पुष्पाणि सन्तु तव देव ममेन्द्रियाणि धूपोऽगुरुर्वपुरिदं हृदयं प्रदीपः।
प्राणा हवींषि करणानि तवाक्षताश्च पूजाफलं व्रजतु साम्प्रतमेष जीवः॥
वाञ्छामि नाहमपि सर्वधनाधिपत्यं न स्वर्गभूमिमचलां न पदं विधातुः।
भूयो भवामि यदि जन्मनि जन्मनि स्यां त्वत्पादपङ्कजलसन्मकरन्दभृङ्गी॥
जन्मानि सन्तु मम देव शताधिकानि माया न मे विशतु चित्तममोघहेतुः।
किञ्चित्क्षणार्धमपि ते चरणारविन्दान्नापैतु मे हृदयमीश नमो नमस्ते॥
(स्क० पु०, ब्रा० ब्रह्मो० १७। ४३—४५)

प्रवेश कर गयी और क्षणभरमें जलकर भस्म हो गयी। फिर शबरने उस भस्मको लेकर जले हुए घरके समीप ही भगवान् शिवका पूजन किया। पूजनके अन्तमें उसने प्रसाद लेनेको नित्य आनेवाली अपनी प्रियतमाका स्मरण किया। स्मरण करते ही वह पहलेकी भाँति हाथ जोड़कर सामने खड़ी दिखायी दी। पत्नीको देखकर तथा जलकर भस्म हुए घरको भी पूर्ववत् स्थित पाकर शबर आश्चर्यचकित हो सोचने लगा—'अहो! अग्नि तो अपने तेजसे वस्तुको जलाती है, सूर्य केवल किरणोंसे तपाते हैं, राजा अपने दण्डके द्वारा अपराधीको दग्ध करता है और ब्राह्मण मनसे जला डालता है। मेरी पत्नी तो प्रत्यक्ष अग्निमें जल गयी थी। यह जीवित कैसे हो गयी? पता नहीं यह स्वप्न है अथवा भ्रममें डालनेवाली माया।' इस प्रकार विचार करते हुए शबरने अपनी स्त्रीसे पूछा—'प्रिये! तुम तो अग्निमें भस्म हो गयी थी, यहाँ कैसे आ गयी और यह जला हुआ घर फिर पहलेके ही समान खड़ा कैसे हो गया?'

शबरीने कहा—जब मैं घरमें आग लगाकर उसके भीतर प्रविष्ट हुई, तबसे अपने-आपकी मुझे कोई सुध न रही। न तो मैंने आग देखी है और न लेशमात्र भी तापका अनुभव किया है। जान पड़ता था, मानो मैं जलमें घुसी हूँ। मैं आधे क्षणतक गाढ़ निद्रामें सोयी-सी रही और अब क्षणभरमें जाग उठी हूँ। उठते ही मैंने देखा अपना घर जला हुआ नहीं है, पूर्ववत् सुस्थिर है। इस समय भगवान्‌की पूजाके अन्तमें प्रसाद लेनेके लिये आपके पास आयी हूँ।

इस प्रकार वे दोनों दम्पति प्रेमपूर्वक आपसमें वार्तालाप कर रहे थे, इतनेमें ही उनके आगे परम अद्भुत दिव्य विमान प्रकट हुआ। उसपर भगवान् शंकरके चार सेवक आगेकी ओर बैठे थे। उन्होंने दोनों निषाद-दम्पतिका हाथ पकड़कर उन्हें विमानपर बिठा लिया। शबर और शबरीको अपने शरीरका त्याग भी नहीं करना पड़ा। शिवदूतोंके हाथोंका स्पर्श प्राप्त होते ही निषाद-दम्पतिके वे ही शरीर तत्काल उन्हींके समान दिव्य हो गये। इसलिये समस्त पुण्यकर्मोंमें श्रद्धा ही करनी चाहिये, क्योंकि शबरने नीच होकर भी श्रद्धाके बलसे योगियोंकी गति प्राप्त की। सब वर्णके लोगोंसे उत्तम जन्म पानेसे क्या लाभ? सम्पूर्ण शास्त्रोंका विचार करनेवाली विद्यासे भी यदि श्रद्धा न हो, तो क्या लाभ है? जिसके चित्तमें सदा भगवान् शिवकी भक्ति बनी रहती है, उससे बढ़कर तीनों लोकोंमें कौन पुरुष धन्य है।

उमामहेश्वरव्रतकी महिमा, इसके पालनसे शारदाको शिवलोककी प्राप्ति तथा सत्कथा-श्रवणका माहात्म्य और ब्राह्मखण्डकी समाप्ति

सूतजी कहते हैं—आनर्तदेशमें वेदरथ नामक एक ब्राह्मण थे। उनका जन्म उत्तम कुलमें हुआ था। वे स्त्री-पुत्रसे सम्पन्न और विद्वान् थे। ब्राह्मणके एक कन्या हुई, जिसका नाम शारदा रखा गया। वह रूप और शुभ लक्षणोंसे सुशोभित कन्या जब बारह वर्षकी हुई, तब उसे पद्मनाभ नामक एक प्रौढ़ ब्राह्मणने माँगा। पद्मनाभजीकी पत्नी मर गयी थी। वे बड़े धनी, शान्त और राजाके मित्र थे। पिताने उनकी याचना भंग होनेके भयसे अपनी कन्या उन्हें दे दी। दोपहरमें विवाह करके पद्मनाभजी ससुरालमें सायंकाल होनेपर सन्ध्योपासना करनेके लिये एक सरोवरके

तटपर गये। वहाँ विधिपूर्वक सन्ध्योपासन करके जब लौटने लगे, तब अन्धकारपूर्ण मार्गमें एक साँपने उन्हें काट लिया। इससे उनकी मृत्यु हो गयी। विवाह करनेके पश्चात् सहसा उनकी मृत्यु होनेपर भाई-बन्धु रोने और विलाप करने लगे। सास-श्वशुर और वह कन्या सभी शोकमें डूब गये। भाई-बन्धु मृतकका दाह-संस्कार करके अपने-अपने घर लौट गये। विधवा शारदा पिताके ही घरमें रह गयी।

एक दिन 'नैध्रुव नामवाले कोई अन्धे मुनि अपने शिष्यका हाथ पकड़े हुए शारदाके घरपर आये। मुनि बहुत वृद्ध हो गये थे। जिस समय वे घरपर पधारे, शारदाके भाई कहीं बाहर चले गये थे। अतः शारदा ही उनके समीप आयी और इस प्रकार बोली—'महाभाग! आपका स्वागत है, इस पीढ़ेपर बैठिये। आप मुनिनाथको मेरा नमस्कार है। आज्ञा दीजिये मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ?' यों कहकर शारदाने बड़े भक्ति-भावसे मुनिके पैर धुलवाये और पंखेसे हवा करके उन्हें सन्तुष्ट किया। थके-माँदे मुनिको पीढ़ेपर बिठाकर उन्हें विधिपूर्वक स्नान कराया और जब वे देवपूजा करके सुखपूर्वक आसनपर बैठे, तब उन्हें आदरपूर्वक उत्तम अन्न भोजन कराया। भोजन करके तृप्त हो जब वे मुनि आनन्दसे परिपूर्ण हुए, तब अन्धमुनिने उस कन्याके लिये उत्तम आशीर्वाद दिया—'भद्रे! तुम पतिके साथ विहार करके सर्वगुणसम्पन्न श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करो और संसारमें बड़ी भारी कीर्ति पाकर देवताओंके प्रसादकी अधिकारिणी बनो।'

अन्धमुनिके द्वारा कहे हुए इस वचनको सुनकर शारदा बहुत विस्मित हुई और हाथ जोड़कर बोली—ब्रह्मन्! आपका वचन सदा सत्य होता है, कभी झूठ नहीं होता। परंतु यह मुझ अभागिनीके लिये कैसे सफल होगा? मैं विधवा हूँ, आपके इन आशीर्वादोंकी पात्र कैसे हो सकूँगी।

मुनि बोले—शुभे! मुझ अन्धेने तुझे न देख सकनेके कारण तुम्हारे लिये जो कुछ कहा है, उसे मैं अवश्य सिद्ध करूँगा। तुम मेरी आज्ञाका पालन करो। यदि तुम उमा-महेश्वर नामक व्रत करोगी, तो उसके प्रभावसे शीघ्र ही कल्याण-भागिनी होओगी।

शारदाने कहा—ब्रह्मन्! आपके बताये हुए दुष्कर व्रतका भी मैं यत्नपूर्वक पालन करूँगी। मुझे वह व्रत और उसका विधान विस्तार-पूर्वक बताइये।

मुनि बोले—चैत्र अथवा मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षमें शुभ दिनको इस व्रतका प्रारम्भ करना चाहिये। अष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या अथवा पूर्णिमाको विधिपूर्वक संकल्प करके प्रातःकाल स्नान करे, देवताओं और पितरोंका तर्पण करके अपने घर आकर एक सुन्दर मण्डप बनावे, जो चँदोवे आदिसे अलंकृत हो। उसे फल, फूल, पल्लव और बन्दनवारोंसे सजावे। बीचमें पाँच प्रकारके रंगोंसे कमलका चिह्न अंकित करे। उसके मध्यभागमें धान्य अथवा चावलोंकी राशि करके उसके ऊपर कुशा रखे और उस कुशाके ऊपर जलपूर्ण कलश स्थापित करके उसके ऊपर रँगा हुआ वस्त्र रखे। वस्त्रके ऊपर सोनेकी दो प्रतिमाएँ (जो शिव-पार्वतीकी प्रतीक हैं) स्थापित करे। तत्पश्चात् भक्तिभावसे अपनी शक्तिके अनुसार विस्तारपूर्वक उनकी पूजा करे। पंचामृतसे स्नान कराकर फिर शुद्ध जलसे नहलावे। एकादश रुद्रमन्त्रका जप करके एक सौ आठ बार '**नमः शिवाय**' इस पंचाक्षरमन्त्रसे अभिमन्त्रित करे। फिर सिंहासनपर उन प्रतिमाओंको पधराकर पूजा करे। बुद्धिमान् पुरुष स्वयं धुले हुए श्वेत वस्त्र धारण करके शुद्ध आसनपर बैठे। पीठको अभिमन्त्रित करके प्राणायाम करे। भगवान् शिवके आगे हाथ जोड़कर यों संकल्प पढ़े—

'मेरे सैकड़ों जन्मोंमें जो भयंकर पाप संचित हुए हैं, उन सबका विनाश करनेके लिये मैं शिवकी पूजा प्रारम्भ करता हूँ। सौभाग्य, विजय, आरोग्य, धर्म और ऐश्वर्यकी वृद्धि तथा स्वर्ग एवं मोक्षकी सिद्धिके लिये मैं शिवजीकी पूजा करूँगा'—इस प्रकार संकल्प बोलकर मनुष्य एकाग्रतापूर्वक यथायोग्य अंगन्यास करके शिव और पार्वतीका ध्यान करे। अपने हृदय-कमलकी कर्णिकामें जगत्के माता-पिता शिव-पार्वतीका ध्यान करके तत्सम्बन्धी मन्त्रोंका जप करे। जपके पश्चात् बाह्य-पूजन प्रारम्भ करे। दोनों सुवर्ण-प्रतिमाओंमें शिव-पार्वतीका आवाहन करके उनके लिये आसन आदि दे। फिर निम्नांकित मन्त्रसे मन्त्रज्ञ पुरुष उन्हें अर्घ्य दे—

नमस्ते पार्वतीनाथ त्रैलोक्यवरदर्षभ।
त्र्यम्बकेश महादेव गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते देवदेवेशि प्रपन्नभयहारिणि।
अम्बिके वरदे देवि गृहाणार्घ्यं शिवप्रिये॥

'तीनों लोकोंको वर देनेवाले देवताओंमें सबसे श्रेष्ठ पार्वतीनाथ! आपको नमस्कार है। त्र्यम्बकेश्वर महादेव! आपको नमस्कार है, यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये। शरणागतोंका भय दूर करनेवाली देवदेवेश्वरी जगदम्बिके! वरदायिनी देवि! शिवप्रिये! आप यह अर्घ्य स्वीकार कीजिये।'

इस प्रकार तीन बार कहकर मनुष्य एकाग्रचित्त हो उन्हें अर्घ्य दे। फिर विधिपूर्वक गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप और दीप आदि उपचारोंको चढ़ावे। खीरके साथ घीमें तैयार किया हुआ नैवेद्य अर्पण करे। तत्पश्चात् मूलमन्त्रद्वारा एक सौ आठ बार हविष्यकी आहुति दे। फिर नैवेद्य हटाकर धूप, आरती करके ताम्बूल अर्पण करे और मनको एकाग्र करके नमस्कार करे। इस प्रकार उपचारसे पूजा करके ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन करावे। इसी प्रकार सायंकालकी पूजा करके ब्राह्मणकी अनुमति ले रातमें मौनभावसे दूधमें तैयार किया हुआ हविष्य भोजन करे। इस प्रकार विद्वान् पुरुष एक वर्षतक दोनों पक्षोंमें इस व्रतका पालन करता रहे। वर्ष पूरा होनेपर व्रतका उद्यापन करे। शतरुद्रियका पाठ करते हुए दोनों प्रतिमाओंको जलसे स्नान करावे। आगमोक्त मन्त्रोंसे शिव-पार्वतीकी भलीभाँति पूजा करे। अन्तमें वस्त्र, सुवर्ण और प्रतिमासहित कलश सदाचारी आचार्यको देकर ब्राह्मणोंको भोजन करावे। उनका भी यथाशक्ति स्वागत-सत्कार करके उन्हें गौ, सुवर्ण और वस्त्र आदिकी दक्षिणा दे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर अपने इष्टमित्रों और बन्धु-बान्धवोंके साथ स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकार जो भक्तिपूर्वक इस त्रिभुवनप्रसिद्ध व्रतका पालन करता है, वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करके मनोवांछित भोगोंका उपभोग करता है। इन्द्र आदि लोकपालोंके दिव्य लोकोंमें रमण करता है और अन्तमें भगवान् शिवको ही प्राप्त होता है। शुभे! मेरे बताये हुए इस महाव्रतका तुम भी श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करो। इससे अत्यन्त दुर्लभ मनोरथको भी प्राप्त कर लोगी।

मुनीश्वर नैध्रुवके इस प्रकार आदेश देनेपर शारदाने विश्वासपूर्वक उनके वचनोंको ग्रहण किया। तत्पश्चात् उसके पिता, माता और भाई बाहरसे घरमें आये। उन्होंने देखा मुनि भोजन करके सुखपूर्वक बैठे हुए हैं। सबने सहसा आकर उन महात्माके चरणोंमें प्रणाम किया और स्वयं भी उनका पूजन किया। 'साध्वी शारदाने उस श्रेष्ठ मुनिका पूजन किया है और मुनिने उसे अनुग्रहपूर्वक व्रतका उपदेश दिया है'— यह सब सुनकर उसके भाई-बन्धुओंको बड़ा हर्ष हुआ। वे सब हाथ जोड़कर बोले—'मुने! आज आपके आगमनमात्रसे हम सब लोग धन्य हो गये। हमारा समस्त कुल पवित्र हो गया और यह घर भी सार्थक हो गया। आप हमारे घरके पास ही निवास करें और जो यह घरका मठ है, यह स्नान, पूजाके लिये बहुत उपयोगी है अतः इसीमें रहिये।' इस प्रकार प्रार्थना करनेपर उन मुनिश्रेष्ठने 'बहुत अच्छा' कहकर ब्राह्मणके उत्तम मठमें निवास किया।

इस प्रकार मुनिके समीप नियममें मन लगाकर उस महाव्रतका पालन करती हुई शारदाका एक वर्ष पूरा हो गया। वर्ष व्यतीत होनेपर उसने पिताके घरमें ही ब्राह्मण-भोजनपूर्वक भलीभाँति व्रतका उद्यापन किया। उन ब्राह्मणोंको यथायोग्य दक्षिणा देकर प्रणामपूर्वक विदा किया। माता-पिताने उसके इस कार्यकी बड़ी प्रशंसा की। शारदा उस दिन भी उपवास करके नियम-पालनपूर्वक महात्मा नैध्रुवके बताये हुए उत्तम मन्त्रका जप करती रही। तदनन्तर प्रदोषकाल आनेपर उसने भगवान् शंकरका पूजन किया और घरके पासवाले मठमें भगवान् शिवका ध्यान करती हुई साध्वी शारदा रातभर भगवान् शिवके समीप जागती रही। शारदाकी भक्ति और मुनिकी तपस्या एवं समाधिसे सन्तुष्ट होकर जगन्माता पार्वती उनके सामने प्रकट हुईं। उनके प्रकट होते ही अन्धे मुनिको दो नेत्र प्राप्त हो गये। अपने सम्मुख प्रकट हुई जगन्माता पार्वतीका दर्शन करके वे मुनि और वह ब्राह्मण-कन्या दोनों उनके चरणोंमें गिर पड़े। तब उन दोनोंको उठाकर पार्वतीदेवीने बड़े प्रेमसे कहा—'मुनिश्रेष्ठ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। पापरहित पुत्री शारदा! तुम्हारे ऊपर भी मैं प्रसन्न हूँ। बोलो, तुम्हारी रुचिके अनुसार कौन-सा देवदुर्लभ वर प्रदान करूँ?'

मुनि बोले—देवि! यह 'शारदा' नामकी कन्या विधवा हो गयी है। मैंने अन्ध होनेके कारण इस बातको न जानकर इसकी सेवासे सन्तुष्ट हो यह आशीर्वाद दिया है कि 'तुम अपने पतिके साथ चिरकालतक विहार करके उत्तम पुत्र प्राप्त करो।' जगदम्बा! आप मेरे इस वचनको सत्य करें, आपको नमस्कार है।

श्रीपार्वतीदेवीने कहा—ब्रह्मन्! यह शारदा पूर्वजन्ममें एक द्राविड़ ब्राह्मणकी द्वितीय पत्नी थी। उस समय इसका नाम भामिनी था। भामिनी अपने पतिकी बड़ी प्यारी थी। अपनी रूपमाधुरीसे परम मनोहर दिखायी देनेवाली भामिनीने रूपवशीकरण आदि छलपूर्ण उपायोंसे पतिको अपने वशमें कर लिया। वह मोहग्रस्त ब्राह्मण अपनी छोटी पत्नीमें ही आसक्त होनेके कारण अपनी ज्येष्ठ एवं पतिव्रता पत्नीके पास कभी नहीं गया। पति-समागमसे वंचित होनेसे वह स्त्री पुत्रहीन रह गयी। इससे वह मन-ही-मन सदा सन्तप्त रहती थी और उसी दशामें समयानुसार उसकी मृत्यु हो गयी। भामिनीके घरके पास एक तरुण ब्राह्मण रहता था। वह इस सुन्दरीको देखकर मोहित हो गया था। एक दिन उसने कामसे आतुर होकर इसका हाथ पकड़ लिया। उस समय इसने क्रोधसे लाल आँखें करके उसे दूर

भगा दिया। वह दिन-रात इसीका चिन्तन करते-करते मृत्युको प्राप्त हुआ।

इसने स्वामीको मोहित करके जो उन्हें ज्येष्ठ पत्नीसे विमुख किया था, उसी पापसे यह इस जन्ममें विधवा हुई। जो स्त्रियाँ संसारमें पति-पत्नीमें वियोग कराती हैं, उन्हें इक्कीस जन्मोंतक बाल्यावस्थामें विधवा होना पड़ता है। और वह काममोहित ब्राह्मण जो परायी स्त्रीके विरहसे पीड़ित होकर मृत्युको प्राप्त हुआ था, उसने भी पाप ही किया था। अतः इस जन्ममें वह इसका पाणिग्रहणमात्र करके मृत्युको प्राप्त हुआ है। पूर्वजन्ममें जो इसका पति था, वह इस समय पाण्ड्यदेशमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मणके रूपमें उत्पन्न हुआ है। उसके पास धन, सम्पत्ति, स्त्री तथा सुखभोगकी सामग्री सब कुछ है। यह शारदा अपने उसी पतिके साथ प्रत्येक रात्रिमें स्वप्नावस्थामें समागम करके जागरण कालकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ रतिसुखका अनुभव करे। स्वप्नावस्थामें पति-समागमसे यह कुछ ही समयमें वेद-वेदांगोंके पारंगत विद्वान् पुत्र प्राप्त कर लेगी। वे ब्राह्मणदेवता भी स्वप्नमें अपने साथ चिरसमागमसे इसके गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्रको सदैव देखा करेंगे। महामुने! पूर्वजन्ममें इसने मेरी आराधना की है और इसीको वर देनेके लिये मैं प्रकट हुई हूँ।

तदनन्तर महादेवी पार्वतीने शारदासे आदरपूर्वक कहा—बेटी! तुम मेरी उत्तम बात सुनो। जब कभी भी किसी देशमें अपने स्वप्नमें देखे हुए पूर्वपतिको देखना, तब समझ लेना कि यही मेरे पुरातन पति हैं। वे ब्राह्मण भी तुम्हें देखकर पहचान लेंगे। उस समय तुम दोनोंमें वार्तालाप होगा। ऐसा अवसर आनेपर तुम अपने विद्वान् पुत्रको उन्हीं ब्राह्मणकी सेवामें समर्पित कर देना। उमा-महेश्वर-व्रतका जो श्रेष्ठ फल है, उसके अर्धभागको इस प्रकार उन्हींके हाथोंमें सौंप देना और तबसे उन्हींके अधीन होकर रहना। तुम दोनोंको स्वप्न-मिलनके सिवा कभी शारीरिक संग नहीं करना चाहिये। समय आनेपर वे श्रेष्ठ ब्राह्मण जब मृत्युको प्राप्त होंगे, तब उन्हींके साथ चिताकी अग्निमें प्रवेश करके तुम मेरे धामको प्राप्त होओगी।

ऐसा कहकर जगन्माता पार्वती अन्तर्धान हो गयीं। वह कन्या करुणामयी पार्वतीका वरदान पाकर बहुत प्रसन्न हुई। रात्रि व्यतीत होनेपर नूतन नेत्र पाये हुए धर्मज्ञ मुनिने उसके माता-पितासे एकान्तमें सब बात बतायी। तत्पश्चात् वे चले गये। इस प्रकार कुछ दिन बीतनेपर शारदाने स्वप्नमें पतिका समागम प्राप्त किया। पार्वतीदेवीके वरदानसे उसके गर्भ रह गया। उस विधवाको गर्भवती हुई सुनकर सब लोग व्यभिचारिणी कहकर उसे धिक्कार देने लगे। उसके मरे हुए पतिके जातिभाइयोंने जब यह असह्य बात सुनी, तब वे सब लोग शारदाके पिताके घर आये। गाँवके बड़े-बूढ़े पण्डित भी आये। सबने कुलके वृद्ध पुरुषोंके साथ बैठकर गोष्ठी की। लज्जासे नतमुख हुई गर्भवती शारदाको बुलाकर कुछ लोग बड़े क्रोधमें भरकर उसे डाँटने लगे। कुछ लोगोंने उसकी ओरसे मुँह फेर लिया। कुछ निर्दयी वृद्धोंने अपना निर्णय इस प्रकार व्यक्त किया—'यह पापबुद्धिवाली कन्या दोनों कुलोंका नाश करनेवाली है, इसके केश मुँड़वाकर नाक और कान काट दिये जायँ और इसे कुल और जातिसे बहिष्कृत करके गाँवसे बाहर निकाल दिया जाय।' यह सुनकर सब लोग ऐसा ही करनेको तैयार हो गये। इसी समय सबको आकाशवाणी सुनायी पड़ी—'इस कन्याने न तो कोई पाप किया है, न कुलमें कलंक लगाया है और न इसके पातिव्रत्यका भंग ही हुआ है। यह सदाचारपरायणा स्त्री है। इसके बाद जो लोग

भी इसे कुलटा या व्यभिचारिणी कहेंगे, उन पापमोहित मनुष्योंकी जिह्वा तत्काल विदीर्ण हो जायगी।'

इस प्रकार आकाशवाणी सुनकर उसके माता-पिता आदि सब लोगोंको बड़ा हर्ष हुआ। कुछ अविश्वासी मनुष्य बोल उठे—'यह आकाशवाणी झूठी है।' इतना कहते ही उनकी जिह्वा दो टूक हो गयी। फिर तो सब जाति-भाई, बन्धु-बान्धव, स्त्रियाँ और बड़े-बूढ़े 'साधु! साधु' कहकर शारदाकी प्रशंसा करने लगे। कुलकी स्त्रियाँ प्रसन्न हो गयीं। दूसरे लोग कहने लगे—'देवता झूठ नहीं बोलते। परंतु यह समझमें नहीं आता कि इसने कैसे गर्भ धारण किया?' इस प्रकार संशयमें पड़े हुए लोगोंको देखकर लोक-तत्त्वको जाननेवाले एक वृद्ध पुरुषने कहा—'यह जो कुछ देखने और सुननेमें आता है, वह सम्पूर्ण विश्व मायामय है। इस क्षणभंगुर संसारमें अकथनीय और असम्भव बातें भी मायासे होती रहती हैं। माया ईश्वरके अधीन है। अत: उस ईश्वरकी लीलाका रहस्य कौन जानता है? सत्यवती मछलीके पेटसे पैदा हुई और महिषासुर भैंसके गर्भसे उत्पन्न हुआ है। वसुदेवजीसे रोहिणीके गर्भसे पुत्रका जन्म हुआ। मुनिके शापसे साम्बके पेटसे मूसल पैदा हुआ और मुनियोंके मन्त्रबलसे राजा युवनाश्वके भी गर्भ रह गया था। इसी प्रकार यह कल्याणमयी सती शारदा भी अपने महान् व्रतके प्रभावसे गर्भवती हुई है, यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है। इस विषयमें स्त्रियाँ ही इसे एकान्तमें ले जाकर सच्ची बात पूछें?'

इस निश्चयके अनुसार स्त्रियोंने उसे एकान्तमें ले जाकर इस विषयमें पूछा। शारदाने उन स्त्रियोंसे अपना अत्यन्त अद्भुत वृत्तान्त पूर्णरूपसे कह सुनाया। यथार्थ बातका पता लगनेपर सब लोग उस सतीका आदर करके प्रसन्नचित्त हो अपने-अपने घरको गये। तदनन्तर शुभ समय आनेपर शुद्ध अन्त:करणवाली शारदाने बालसूर्यके समान तेजस्वी बालकको जन्म दिया। वह कुमार बाल्यावस्थामें ही बहुत अधिक विद्या प्राप्त करके परम बुद्धिमान् हो गया। तत्पश्चात् गुरुने समयपर उसका उपनयन-संस्कार किया। वह लोकमनोहर बालक लोकमें शारदेय नामसे विख्यात हुआ। उसने आठवें वर्षकी आयुमें ऋग्वेद, नवें वर्षमें यजुर्वेद और दसवें वर्षमें सामवेदको लीलापूर्वक पढ़ डाला। तदनन्तर त्रिलोकपूजित शिवपर्व प्राप्त होनेपर सब देशके निवासी मनुष्य गोकर्णतीर्थमें जाने लगे। सती शारदा भी अपने पुत्रके साथ गोकर्णतीर्थमें गयी। वहाँ उसने अपने पूर्वजन्मके पतिको, जिनका स्वप्नमें सदा ही दर्शन किया था, आया हुआ देखा। वे ब्राह्मण बन्धुओंसे घिरे हुए थे। उन्हें देखकर शारदा प्रेममग्न हो गयी और उन्हींकी ओर दृष्टि लगाये खड़ी रही। ब्राह्मण भी रूप और लक्षणोंसे पहचानी हुई तथा स्वप्नमें सदा भोगी जानेवाली उस स्त्रीको और स्वप्नमें ही अपनेसे उत्पन्न हुए उस कुमारको भी देखकर आश्चर्यचकित हो उसके समीप आये और इस प्रकार बोले—'कल्याणी! तुम कौन हो, किसकी स्त्री हो, कौन तुम्हारा देश है और किसकी पुत्री हो?'

उनके द्वारा इस प्रकार पूछी जानेपर उस स्त्रीने बाल्यावस्थामें अपने विधवा होनेका सब वृत्तान्त कहा। तब ब्राह्मणने पुन: प्रश्न किया—'देवि! यह किसका पुत्र है? चन्द्रमाके समान सुन्दर इस बालकको तुमने कैसे गर्भमें धारण किया है?'

शारदा बोली—स्वामी! यह सब विद्याओंमें विशारद मेरा ही पुत्र है। मेरे ही नामपर इसको लोग 'शारदेय' कहते हैं।

उसकी यह बात सुनकर श्रेष्ठ ब्राह्मण हँसकर बोले—देवि! तुम्हारा पति तो पाणिग्रहणमात्र करके मर गया। फिर इस पुत्रका जन्म कैसे हुआ, इसका कारण बताओ।

शारदा बोली—महामते! परिहाससे कोई लाभ नहीं! आप मुझे जानते हैं और मैं आपको जानती हूँ। इस विषयमें हम दोनोंके मन ही प्रमाण है।

ऐसा कहकर उसने देवीके दिये हुए वरदान आदिकी बातें बतायीं और अपने व्रतके आधे भाग व्रतधारी कुमार शारदेयको उन्हें सौंप दिया। वे ब्राह्मण देवता बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कुमारको हृदयसे लगा लिया और शारदाके माता-पिताकी आज्ञा लेकर शारदा तथा उस बालकको अपने घर बुला ले गये। ब्राह्मणके घरमें शारदाने कई मास व्यतीत किये। जब उनकी मृत्यु हो गयी, तब उन्हींके साथ चिताकी अग्निमें प्रवेश करके उसने उनका अनुसरण किया। फिर भी दोनों दिव्य दम्पति होकर दिव्य विमानपर बैठे और भगवान् शिवके लोकमें चले गये। इस प्रकार मैंने यह पवित्र उपाख्यान सुनाया, जो पढ़ने और सुननेवालोंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है।

प्रतिदिन भगवत्सम्बन्धी उत्तम कथाके श्रवणसे मनुष्य परम गतिको प्राप्त होता है। पुण्यक्षेत्रमें निवास करनेसे चित्त शुद्ध होता है। उत्तम कथाके सुननेसे मनुष्य जिस प्रकार उत्तम गतिको पाता है, उस प्रकार अन्य उत्तम व्रतोंसे नहीं। अन्य व्रतोंसे उसकी बुद्धि वैसी उत्तम नहीं होती। जैसे बार-बार शोधन करनेपर दर्पण निर्मल होता है, वैसे ही सत्कथाश्रवणसे चित्त अधिकाधिक शुद्ध होता है। चित्त शुद्ध होनेपर मनुष्योंके द्वारा शिवजीका ध्यान सिद्ध होता है। ध्यानसे पुण्यात्मा पुरुष मन, वाणी और शरीरद्वारा संचित समस्त पापराशिको धोकर भगवान् शिवके परम पदको प्राप्त होते हैं। अतः जिन्होंने अपना पुण्य भगवान् शिवके चरणोंमें समर्पित कर दिया है, उन लोगोंके लिये भगवान् शिवकी उत्तम कथाका श्रवण-कीर्तन ही सर्वोत्तम साधन है; क्योंकि कथासे ध्यान सिद्ध होता है और ध्यानसे कैवल्यकी प्राप्ति होती है।

मुनिवरो! आप सब लोग बड़े सौभाग्यशाली हैं। आपका ही जीवन सफल है; क्योंकि आपलोग सदा भगवान् शिवके उत्तम कथामृत-रसका सेवन करते हैं। इस जीव-जगत्‌में वस्तुतः उन्हींका जन्म सफल है, जिनका मन सदा भगवान् विश्वनाथका ध्यान करता है, वाणी उनके गुण गाती है और दोनों कान उन्हींकी कथा सुनते हैं। ऐसे ही लोग इस संसार-सागरको पार करते हैं। नाना प्रकारके गुणविभेद जिनके स्वरूपका कभी स्पर्श नहीं करते, जो अपनी महिमासे जगत्‌के बाहर और भीतर समान रूपसे व्याप्त हैं, जो अपने ही प्रकाशमें विहार करते हैं और जो मन-वाणीकी वृत्तियोंसे बहुत दूर हैं, मैं उन अनन्तानन्दघनस्वरूप परम शिवकी शरण लेता हूँ।

ब्रह्मोत्तर-खण्ड सम्पूर्ण।

ब्राह्म-खण्ड समाप्त

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीउमामहेश्वराभ्यां नमः

संक्षिप्त श्रीस्कन्दमहापुराण

काशीखण्ड पूर्वार्ध

मेरुगिरिसे स्पर्धा करके विन्ध्याचलका सूर्यके मार्गको रोकना और ब्रह्माजीके आदेशसे देवताओंका काशीमें अगस्त्य मुनिके समीप जाना

तं मन्महे महेशानं महेशानप्रियार्भकम्।
गणेशानं करिगणेशाननमनामयम्॥

'जिनका मुख गजराजके मुखके समान है, जो महादेवजीकी प्रिया पार्वतीजीके लाड़ले पुत्र हैं, सबके महान् शासक हैं तथा रोग-शोकसे सर्वथा रहित हैं, उन श्रीगणेशजीका हम चिन्तन करते हैं।'

भूमिष्ठापि न यात्र भूस्त्रिदिवतोऽप्युच्चैरधःस्थापि या
या बद्धा भुवि मुक्तिदा स्युरमृतं यस्यां मृता जन्तवः।
या नित्यं त्रिजगत्पवित्रतटिनी तीरे सुरैः सेव्यते
सा काशी त्रिपुरारिराजनगरी पायादपायाज्जगत्॥

'जो पृथ्वीपर स्थित होकर भी यहाँ पृथ्वीसे सम्बन्ध नहीं रखती, जो पदमें स्वर्गसे ऊँची होनेपर भी नीचेके लोकमें स्थापित की गयी है, जो इस पांचभौतिक जगत्में आबद्ध (प्रविष्ट) होनेपर भी सबको मोक्ष देनेवाली है, जिसमें मरे हुए सभी जीव अमृतमय ब्रह्म हो जाते हैं, जो सदा तीनों लोकोंमें पवित्र नदी श्रीगंगाजीके तटपर सुशोभित है और देवता भी जिसका सेवन करते हैं, वह त्रिपुरारि महादेवजीकी राजधानी काशीपुरी सम्पूर्ण जगत्को विनाशसे बचावे।'

श्रीव्यासदेवजी कहते हैं—एक समय देवर्षि नारद नर्मदाके जलमें स्नान और श्रीॐकारनाथजीका भलीभाँति पूजन करके जब आगे गये, तब उन्हें वह विन्ध्यपर्वत दिखायी दिया, जो संसार-तापका संहार करनेवाली नर्मदा नदीके जलसे सुशोभित होता है। आकाशको अपने तेजसे प्रकाशित करनेवाले नारदजीको दूरसे आते देख गिरिराज विन्ध्यने उनकी अगवानी की। ब्रह्मकुमारके तेजसे उसका आन्तरिक अन्धकार दूर हो गया था। वह ब्रह्मतेजसे प्रभावित हो नारदजीके प्रति आदरका भाव रखकर उनका उत्तम सत्कार करनेको उद्यत हुआ। ऊपरसे कठोर होनेपर भी विन्ध्यगिरिने कोमलता धारण की। स्थावर-जंगम दोनों रूपोंमें उसकी कोमलता देखकर नारदजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। अपने घरपर आते हुए बड़े या छोटेको देखकर जो छोटा बनकर नम्रता धारण करता है, वही बड़ा है। आयुमें बड़ा होनेसे कोई बड़ा नहीं होता। विन्ध्यगिरिने पृथ्वीपर मस्तक रखकर महामुनि नारदजीको प्रणाम किया और नारदजी दोनों हाथोंसे उसे उठाकर आशीर्वादसे प्रसन्न करके उसके दिये हुए आसनपर बैठे। विन्ध्यने दही, शहद, घी, जलसे भीगे अक्षत, दूर्वा, तिल, कुश और पुष्प—इन आठ अंगोंसे युक्त अर्घ्य देकर मुनिका पूजन किया। फिर पैर दबाने आदि सेवाके द्वारा उसने थके हुए मुनिकी थकावट दूर की। जब मुनि विश्राम कर चुके, तब विन्ध्यगिरिने विनीतभावसे कहा—'मुने! आज आपके चरणोंकी धूलि पड़नेसे मेरे भीतरका रजोगुण तत्काल दूर हो गया और आपके अंगोंके तेजसे मेरे भीतरका तमोगुण भी सहसा नष्ट हो गया। देवर्षे! आज ही मेरे लिये

सुदिन है; पूर्वजन्मोंके किये हुए मेरे चिरसंचित पुण्य आज ही फलीभूत हुए हैं।'

विन्ध्यगिरिकी यह बात सुनकर नारदजी कुछ लंबी साँस खींचकर रह गये। तब सब पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्यने कहा—'सब अर्थोंके ज्ञाता विप्रवर! मुझे अपने उच्छ्वासका कारण बताइये।' नारदजीने मन-ही-मन सोचा—बढ़ते हुए अभिमानका संसर्ग किसीके लिये बड़प्पनका कारण नहीं है। अतः आज विन्ध्यगिरिका बल देखना चाहिये। यों सोचकर मुनि बोले—'पर्वतोंमें श्रेष्ठ मेरुगिरि तुम्हारा अपमान करता है, इसीलिये मैंने लंबी साँस खींची है और यह बात तुमसे बता दी है। तुम्हारा कल्याण हो।' ऐसा कहकर नारद मुनि आकाशमार्गसे चले गये। मुनिके जाते ही विन्ध्याचल अत्यन्त उद्विग्नचित्त हो बड़ी चिन्तामें पड़ गया और मन-ही-मन कहने लगा—'जिसने शास्त्रका एक अंश भी नहीं पढ़ा है, उसके जीवनको धिक्कार है। जो उद्योगहीन है, उसके जीनेको भी धिक्कार है और जिसका मनोरथ पूर्ण नहीं होता, उसके जीनेको भी धिक्कार है। पुरानी बातोंको जाननेवाले विद्वान् पुरुषोंने यह ठीक ही कहा है कि चिन्ताका स्वरूप बड़ा भयंकर है। चिन्ता न तो औषधोंसे शान्त होती है और न दूसरे किसी उपायसे। चिन्तारूपी ज्वर मनुष्योंकी भूख, नींद और बल हर लेता है। रूप, उत्साह, बुद्धि, सम्पत्ति और जीवनको भी नष्ट कर देता है। ज्वर छः दिन व्यतीत होनेपर जीर्णज्वर कहलाता है, किंतु तीव्र चिन्ताज्वर प्रतिदिन नूतनताको प्राप्त होता है*। इसे दूर करनेमें धन्वन्तरि भी धन्यवादके पात्र नहीं हो पाते। इसमें चरक भी विचरण नहीं कर सकते। इतना ही नहीं, नासत्य (दोनों अश्विनीकुमार) भी इसमें सत्य नहीं हो पाते। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कैसे मेरुपर्वतको परास्त करूँ। यहाँ उचित और अनुचितके विचारका कोई उपयोग नहीं है, अथवा इन व्यर्थकी चिन्ताओंसे क्या लाभ? मैं विश्वकी उत्पत्ति करनेवाले भगवान् विश्वनाथकी ही शरणमें चलूँ। वे ही मुझे बुद्धि प्रदान करेंगे। ग्रह, नक्षत्र और तारागणोंके साथ भगवान् सूर्य मेरुको अधिक बलवान् मानकर प्रतिदिन उसकी प्रदक्षिणा करते हैं।'

ये ही सब बातें सोचकर विन्ध्यगिरि ऊँचाईकी ओर बढ़ने लगा, मानो वह अपने शिखरोंसे अनन्त आकाशका अन्त कर देना चाहता हो। गिरिराज विन्ध्य सूर्यका मार्ग रोककर ही कुछ स्वस्थ-सा हुआ।

तदनन्तर अन्धकारका नाश करनेवाले भगवान् सूर्य उदयाचल पर्वतपर उदित हुए और क्रमशः दक्षिण दिशाकी ओर चले। किंतु जब उनके घोड़े आगे न बढ़ सके, तब अनूरु (अरुण) नामक सारथिने सूचित किया—'भानुदेव! अभिमानसे ऊँचे उठा हुआ यह विन्ध्यपर्वत आकाशका मार्ग रोककर खड़ा है। आप जो मेरुगिरिकी प्रदक्षिणा किया करते हैं, उसके कारण यह गिरिराज मेरुसे लाग-डाँट रखता है।' अनूरुकी बात सुनकर भगवान् सूर्यने मन-ही-मन सोचा—'अहो! आकाशका मार्ग भी रोका जाता है। यह बड़े विस्मयकी बात है।' जो आधे पलमें दो हजार दो सौ दो योजन चलते हैं, वे सूर्य भी दैववश एक ही जगह अधिक समयतक रुके रह गये। इस प्रकार दीर्घकालतक प्रचण्डरश्मि सूर्यके ठहर जानेसे पूर्व और उत्तर दिशामें रहनेवाले जीव उनकी किरणोंके तापसे सन्तप्त हो बहुत व्याकुल हो गये। दक्षिण और पश्चिमके लोग लेटे हुए ही ग्रह तथा नक्षत्रोंसहित आकाशको देखने लगे। वे सोचते थे 'सूर्यका दर्शन नहीं हुआ, इसलिये यह दिन नहीं है और रात भी नहीं है; क्योंकि चन्द्रमा अस्त हो गये। आकाशके तारे भी लुप्त होते जाते हैं। अतः यह कौन-सा समय है, इसका पता नहीं चलता।' पृथ्वीपर स्वाहा (देवयज्ञ), स्वधा (पितृयज्ञ) और

* चिन्ताज्वरो मनुष्याणां क्षुधां निद्रां बलं हरेत्। रूपमुत्साहबुद्धिं श्रीं जीवितं च न संशयः॥
ज्वरो व्यतीते षडहे जीर्णज्वर इहोच्यते। असौ चिन्ताज्वरस्तीव्रः प्रत्यहं नवतां व्रजेत्॥
(स्क० पु०, का० पु० १। ६९-७०)

वषट्कार (ब्रह्मयज्ञ आदि) का सर्वथा अभाव हो गया। पंचयज्ञ कर्मका लोप हो जानेसे तीनों लोक काँप उठे। चित्रगुप्त आदि सब लोग सूर्यसे ही कालका ज्ञान रखते हैं। एकमात्र भगवान् सूर्य ही जगत्के सृष्टि, पालन और संहारके हेतु हैं। सूर्यदेवकी गति रुक जानेसे तीनों लोक स्तब्ध हो उठे। जो जहाँ था, वहीं चित्रलिखित-सा रह गया। एक ओर तो रातके अन्धेरेसे और दूसरी ओर सूर्यकी गरमीसे बहुत-से जीवोंकी मृत्यु हो गयी। समस्त चेतन जगत् भयसे इधर-उधर भागने लगा। यह अवस्था देख सब देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये और नाना प्रकारकी स्तुतियोंद्वारा उनके गुणगान करने लगे।

देवता बोले—परब्रह्मस्वरूप हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीको नमस्कार है। जिनका स्वरूप किसीको ज्ञात नहीं है, जो कैवल्य एवं अमृतरूप हैं, जिन्हें इन्द्रियाँ और उनके अधिष्ठाता देवता भी नहीं जानते, जहाँ मनकी भी पहुँच नहीं है और जहाँ वाणीका भी प्रस्तार नहीं हो पाता, उन सच्चिदानन्दमय परमात्माको नमस्कार है। योगीजन अविचलभावसे समाधिमें स्थित हो ध्यानके द्वारा अपने हृदयाकाशमें जिनके ज्योतिर्मय स्वरूपका साक्षात्कार करते हैं, उन श्रीब्रह्माजीको नमस्कार है। जो कालसे परे होकर भी कालस्वरूप हैं, स्वेच्छा (अथवा अपने भक्तोंकी इच्छा)से पुरुषरूप धारण करते हैं, सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण जिनके स्वरूप हैं तथा गुणोंकी साम्यावस्थारूप प्रकृति भी जिनका ही रूप है, उन ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप परमेश्वरको नमस्कार है। प्रभो! वेद आपके निःश्वास हैं, सम्पूर्ण विश्व आपके एक अंशमें स्थित है, द्युलोक आपके मस्तकसे प्रकट हुआ है, आपकी नाभिसे अन्तरिक्ष लोकका आविर्भाव हुआ है और वनस्पति आपके लोम हैं। भगवन्! चन्द्रमा आपके मनसे और सूर्य आपके नेत्रसे उत्पन्न हुए हैं। देव! आप ही सब कुछ हैं, आपमें ही सबकी स्थिति है, आप परमेश्वरसे यह सम्पूर्ण जगत् भलीभाँति व्याप्त है, आपको बारंबार नमस्कार है।

इस प्रकार ब्रह्माजीकी स्तुति करके सब देवता दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़ गये। तब ब्रह्माजीने उनसे इस प्रकार कहा—'देवताओ! मैं तुम्हारी स्तुतिसे सन्तुष्ट हूँ, उठो और इच्छानुसार वर माँगो।' देवतालोग जब प्रणाम करके खड़े हुए, तब ब्रह्माजीने उनसे पुनः इस प्रकार कहा—'विन्ध्याचल मेरु पर्वतसे डाह करता है, इसीलिये उसने सूर्यका मार्ग रोक रखा है। इसी संकटको टालनेके लिये तुमलोग मेरे पास आये हो। अतः इसके लिये मैं तुम्हें एक उत्तम उपाय बतलाता हूँ। मित्रावरुणके पुत्र महर्षि अगस्त्य बड़े भारी तपस्वी हैं। सबको मुक्ति देनेवाले अविमुक्त नामक महाक्षेत्र (काशी) में, जहाँ तारकमन्त्रका उपदेश देनेके लिये साक्षात् विश्वनाथजी सदा विद्यमान रहते हैं, वे अगस्त्य मुनि भगवान् विश्वनाथमें मन लगाकर बड़ी भारी तपस्या कर रहे हैं। वहाँ जाकर उन्हींसे इस कार्यके लिये याचना करो। वे तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध करेंगे।'

ऐसा कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर सब देवता आपसमें कहने लगे—'अहो! हम परम धन्य हैं, क्योंकि इसी कार्यके प्रसंगसे हमें मंगलमयी काशी और कल्याणमय काशीपतिका भी दर्शन प्राप्त होगा। हमने ब्रह्माजीके मुखसे जो काशीकी चर्चा सुनी है, उसके श्रवणजनित पुण्यसे आज काशीमें पहुँचेंगे।' ऐसा कहते हुए सब देवता प्रसन्नमुख हो काशीपुरीमें आये।

महर्षियोंसहित देवताओंने काशीपुरीमें पहुँचकर पहले मणिकर्णिका तीर्थमें विधिपूर्वक वस्त्रसहित स्नान और सन्ध्योपासन आदि पुण्यकर्म किया। तत्पश्चात् विश्वनाथजीका दर्शन, नमस्कार और स्तवन करके वे परोपकारके लिये उस स्थानपर गये, जहाँ अगस्त्य मुनि रहते थे। वे मुनि अपने नामसे शिवलिंगकी स्थापना करके उसके सामने कुण्ड निर्माण कराकर वहाँ शतरुद्रिय सूक्तका स्थिरचित्तसे जप करते थे। उनको दूरसे ही देखकर देवता परस्पर इस प्रकार कहने लगे—'अहो! इस आश्रमके चारों ओर हिंसक जीव भी सात्त्विक

दिखायी देते हैं। अपने स्वाभाविक वैरको भी त्यागकर प्रेमपूर्वक रहते हैं।' किंतु जो मनुष्य पापसे मोहित होकर मांस पकाता है, वह उस पशुके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक नरकमें निवास करता है। जो दूषित बुद्धिवाले मनुष्य पराये प्राणोंसे अपने प्राणोंका पोषण करते हैं, वे एक कल्पतक नरक भोगकर इस संसारमें जन्म लेते और उन्हीं प्राणियोंके खाद्य बनते हैं। भूखसे प्राण निकलकर कण्ठतक आ गये हों तो भी मांस नहीं खाना चाहिये *। ये हिंसक जीव भी मनुष्योंकी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं, जो अगस्त्यजीकी सेवासे ऐसी स्थितिको प्राप्त हो गये हैं कि हिंसाकी ओर इनका मन जाता ही नहीं। कहाँ मांस-भक्षण और कहाँ भगवान् शिवकी भक्ति। जो मद्य और मांसमें आसक्त हैं, उनसे भगवान् शंकर बहुत दूर रहते हैं। भगवान् शिवके प्रसादके बिना भ्रमका कहीं नाश नहीं होता। इस प्रकार आश्रमके पास विचरनेवाले पशु-पक्षियोंको भी मुनियोंके समान बर्ताव करते देख देवताओंने यह समझा कि यह इस पुण्यक्षेत्रका प्रभाव है; क्योंकि भगवान् विश्वनाथ इस क्षेत्रमें रहनेवाले पशु-पक्षियोंको भी मृत्युकालमें तारक मन्त्रका उपदेश देकर मुक्त करेंगे। इस तरह आश्चर्यमें पड़े हुए देवता ज्यों-ही मुनिके आश्रमपर पहुँचे त्यों-ही वहाँके पक्षिसमूहको देखकर अपने मनमें बहुत प्रसन्न हुए। पढ़ती हुई मैना तोतेको सार तत्त्वका उपदेश देती हुई कह रही थी—'हे शुक! इस अपार संसार-सागरसे पार उतारनेवाले केवल भगवान् शिव हैं।' कोयल कोमल वाणीमें अपनी कूक सुनाती हुई कहती थी—'काशी-निवासी प्राणियोंको कलियुग और यमराज अपना ग्रास नहीं बनाता।' वहाँके पशुओं और पक्षियोंकी ऐसी चेष्टा देखकर देवता आपसमें कहने लगे—ये काशी-निवासी पशु-पक्षी और मृग धन्य हैं, जिनकी इस संसारमें पुनरावृत्ति नहीं होगी। देवता ऐसे भाग्यशाली नहीं हैं; क्योंकि उनका पुनर्जन्मसे पिण्ड नहीं छूटता।

ऐसा कहते हुए देवताओंने मुनिकी पर्णकुटी देखी, जो होम एवं धूपकी सुगन्धसे सुवासित तथा बहुत-से ब्रह्मचारी विद्यार्थियोंसे सुशोभित थी। पतिव्रताशिरोमणि लोपामुद्राके चरण-चिह्नोंसे
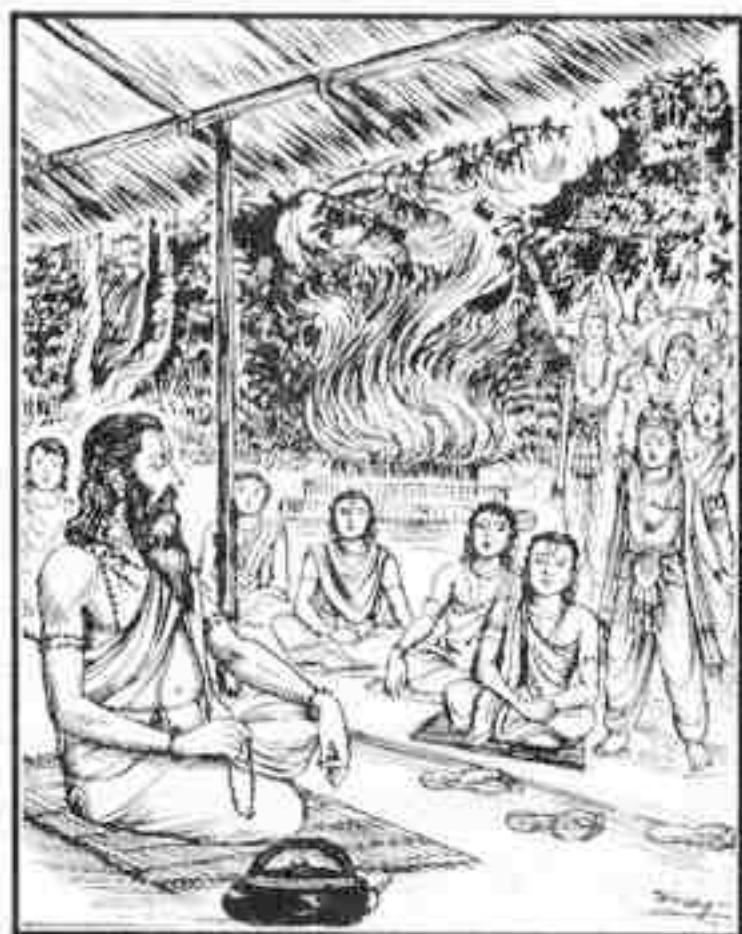
चिह्नित पर्णकुटीके आँगनको देखकर सब देवताओंने नमस्कार किया। महर्षि अगस्त्य समाधिसे उठकर कुशासनपर बैठे थे। उनका दर्शन करके इन्द्रादि देवता प्रसन्नमुख हो उच्चस्वरसे बोले—'जय हो, जय हो।' मुनि उठकर खड़े हो गये और उन सबको यथायोग्य आसनपर बैठाया। आशीर्वादसे उनका अभिनन्दन किया और वहाँ आनेका कारण पूछा।

* यः स्वार्थं मांसपचनं कुरुते पापमोहितः। यावन्त्यस्य तु रोमाणि तावत्स नरके वसेत्॥
परप्राणैस्तु ये प्राणान् स्वान् पुष्णन्ति हि दुर्धियः। आकल्पं नरकान् भुक्त्वा ते भुज्यन्तेऽत्र तैः पुनः॥
जातु मांसं न भोक्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि॥

(स्क० पु०, का० पू० ३। ५१—५३)

बृहस्पतिजीके मुखसे लोपामुद्राके पातिव्रतधर्मका वर्णन

अगस्त्यजीका वचन सुनकर सब देवता बृहस्पतिजीके मुखकी ओर देखने लगे। तब बृहस्पतिजीने कहा—'महाभाग अगस्त्यजी! आप धन्य हैं, कृतकृत्य हैं और महात्मा पुरुषोंके लिये भी माननीय हैं। आपमें तपस्याकी सम्पत्ति है, आपमें स्थिर ब्रह्मतेज है, आपमें पुण्यकी उत्कृष्ट शोभा है, आपमें उदारता है और आपमें विवेकशील मन है। आपकी सहधर्मिणी ये कल्याणमयी लोपामुद्रा बड़ी पतिव्रता हैं, आपके शरीरकी छायाके तुल्य हैं। इनकी चर्चा भी पुण्य देनेवाली है। मुने! ये आपके भोजन कर लेनेपर ही भोजन करतीं, आपके खड़े होनेपर स्वयं भी खड़ी रहतीं, आपके सो जानेपर सोतीं और आपसे पहले जाग उठती हैं। ये कभी अपने-आपको आपके सामने अलंकारहीन अवस्थामें नहीं उपस्थित करतीं। जब आप किसी कार्यसे कहीं परदेशमें जाते हैं, तब ये एक भी अलंकार नहीं धारण करतीं। आपकी आयु बढ़े—इस उद्देश्यसे ये कभी आपका नाम नहीं उच्चारण करती हैं। दूसरे पुरुषका नाम भी ये कभी अपनी जीभपर नहीं लातीं। ये कड़वी बात सह लेती हैं, किंतु स्वयं बदलेमें कोई कटु वचन मुँहसे नहीं निकालतीं। आपके द्वारा ताड़ना पाकर भी प्रसन्न ही होती हैं। जब आप इनसे कहते हैं—'प्रिये! अमुक कार्य करो' तब ये उत्तर देती हैं—'स्वामिन्! अभी किया। आप समझ लें वह काम पूरा हो गया।' आपके बुलानेपर ये घरके आवश्यक काम छोड़कर भी तुरंत चली आती हैं और कहती हैं—'प्राणनाथ! दासीको किसलिये बुलाया है। आज्ञा देकर मुझे अपने प्रसादकी भागिनी बनाइये।' ये दरवाजेपर देरतक नहीं खड़ी होतीं, द्वारपर बैठती और सोती भी नहीं हैं। आपकी आज्ञाके बिना कोई वस्तु किसीको नहीं देतीं, आप न कहें तब भी ये स्वयं ही आपके लिये पूजाका सब सामान जुटा देती हैं। नियमके लिये जल, कुशा, पत्र-पुष्प और अक्षत आदि प्रस्तुत करती हैं। सेवाके लिये अवसर देखती रहती हैं और जिस समय जो वस्तु आवश्यक अथवा उचित है, वह सब बिना किसी उद्वेगके अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उपस्थित करती हैं। पतिके भोजन करनेके बाद बचा हुआ अन्न और फल आदि खाती और पतिकी दी हुई प्रत्येक वस्तुको महाप्रसाद कहकर शिरोधार्य करती हैं। देवता, पितर और अतिथियोंको तथा सेवकों, गौओं और याचकोंको भी उनका भाग अर्पण किये बिना ये कभी भोजन नहीं करतीं। वस्त्र, आभूषण आदि सामग्रियोंको स्वच्छ एवं सुरक्षित रखती हैं। ये गृहकार्यमें कुशल हैं, सदा प्रसन्न रहती हैं, फजूल खर्च नहीं करतीं, एवं आपकी आज्ञा लिये बिना ये कोई उपवास और व्रत आदि नहीं करती हैं। जनसमूहके द्वारा मनाये जानेवाले उत्सवोंका दर्शन दूरसे ही त्याग देती हैं। तीर्थयात्रा आदि तथा विवाहोत्सव-दर्शन आदि कार्योंके लिये भी ये कभी नहीं जातीं। पति सुखसे सोये हों, आरामसे बैठे हों अथवा अपनी मौजसे कहीं रम रहे हों, तो उस समय कोई अन्तरंग कार्य आ जानेपर भी उन्हें कभी नहीं उठातीं। रजस्वला होनेपर ये तीन राततक अपना मुँह पतिको नहीं दिखातीं। जबतक स्नान करके शुद्ध न हो जायँ, तबतक अपनी बात भी पतिके कानोंमें नहीं पड़ने देतीं। भलीभाँति स्नान कर लेनेपर पहले पतिका ही मुँह देखती हैं और किसीका नहीं। अथवा यदि पतिदेव उपस्थित न हों तो मन-ही-मन उनका ध्यान करके सूर्यदेवका दर्शन करती हैं। पतिकी आयुवृद्धि चाहती हुई पतिव्रता स्त्री अपने शरीरसे हल्दी, रोली, सिन्दूर, काजल, चोली, पान, शुभ मांगलिक आभूषण कभी दूर न करे। केशोंका सँवारना, वेणी गूँथना तथा हाथ और कान आदिके आभूषणोंको धारण करना कभी बंद न करे। अपने स्वामीसे द्वेष

रखनेवाली स्त्रीसे ये कभी बाततक नहीं करती हैं। ये कहीं भी अकेली नहीं रहतीं और न कभी नंगी होकर स्नान करती हैं। सती स्त्रीको ओखली, मूसल, झाड़ू, सिलौट, चक्की और चौकठपर कभी नहीं बैठना चाहिये। पतिव्रता स्त्री कभी धृष्टताका परिचय न दे। जहाँ-जहाँ पतिकी रुचि हो, वहीं सती स्त्री सदा प्रेम रखे। यही स्त्रियोंका उत्तम व्रत, यही उनका परम धर्म और यही एकमात्र देवपूजा है कि वे पतिकी आज्ञाका उल्लंघन न करें। पति नपुंसक, दुर्दशाग्रस्त, रोगी, बूढ़ा, अच्छी स्थितिवाला अथवा बुरी परिस्थितिमें पड़ा हुआ हो, तो भी पतिका कभी त्याग न करे। पतिके हर्षमें हर्ष माने और पतिके मुखपर विषादकी छाया देखकर स्वयं भी विषादग्रस्त हो। पुण्यात्मा सती सम्पत्ति और विपत्तिमें भी पतिके साथ एकरूप होकर रहे। पतिको चिन्ता और परिश्रममें न डाले। तीर्थस्नानकी इच्छा रखनेवाली स्त्री अपने पतिका चरणोदक पीये; क्योंकि उसके लिये केवल पति ही भगवान् शिव और विष्णुसे बढ़कर है। जो पतिकी आज्ञाका उल्लंघन करके व्रत और उपवास आदिके नियम पालती है, वह अपने पतिकी आयु हर लेती है और मरनेपर नरकमें गिरती है। जो स्वयं प्रसन्न रहकर पतिको प्रसन्न रखती है, उसने तीनों लोकोंको प्रसन्न कर लिया है। पिता थोड़ा सुख देता है, भाई थोड़ा सुख देता है और पुत्र भी थोड़ा ही सुख देता है, अपरिमित सुख देनेवाला तो पति ही है। अतः उसकी सदा पूजा करनी चाहिये। पति ही देवता है, पति ही गुरु है और पति ही धर्म, तीर्थ एवं व्रत है। इसलिये स्त्री सबको छोड़कर केवल पतिकी पूजा करे।

इतना कहकर बृहस्पतिजी लोपामुद्रासे बोले— पतिके चरणारविन्दोंपर दृष्टि रखनेवाली महामाता लोपामुद्रे! हमने काशीमें आकर जो गंगा-स्नान किया है, उसीका यह फल है कि हमें आपका दर्शन प्राप्त हुआ है। लोपामुद्राकी इस प्रकार स्तुति करके देवगुरुने अगस्त्य मुनिसे कहा— 'महर्षे! आप प्रणव हैं और ये लोपामुद्रा श्रुति हैं। आप मूर्तिमान् तप हैं और ये क्षमा हैं। आप फल हैं और ये सत्क्रिया हैं। महामुने! इन्हें पाकर आप धन्य हैं। ये देवी पातिव्रतका मूर्तिमान् तेज हैं और आप साक्षात् सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मतेज हैं। इसपर भी आपमें यह तपस्याका तेज और बढ़ा हुआ है। भला आपके लिये कौन-सा कार्य असाध्य है। यद्यपि कुछ भी आपसे अविदित नहीं है तथापि देवतालोग जिस उद्देश्यसे यहाँ आये हैं, वह मैं बतलाता हूँ। मुने! ध्यान देकर सुनें। विन्ध्य नामसे प्रसिद्ध पर्वत मेरु गिरिसे डाह रखनेके कारण बढ़कर इतना ऊँचा हो गया है कि उसने सूर्यदेवका मार्ग रोक लिया है, उसकी इस वृद्धिको आप रोकिये।'

देवगुरुका यह वचन सुनकर महामुनि अगस्त्यने क्षणभरके लिये चित्तको एकाग्र किया और 'बहुत अच्छा, आपलोगोंका कार्य सिद्ध करूँगा।' ऐसा कहकर देवताओंको विदा किया। तत्पश्चात् वे पुनः कुछ चिन्तन करते हुए ध्यानमग्न हो गये।

अगस्त्यजीका काशीपुरीसे प्रस्थान, विन्ध्यपर्वतको लघुरूपमें रहनेका आदेश और महालक्ष्मीकी स्तुति

वेदव्यासजी कहते हैं—सूत! तदनन्तर ध्यानद्वारा भगवान् विश्वनाथजीका दर्शन करके मुनीश्वर अगस्त्य पुण्यमयी लोपामुद्रासे इस प्रकार बोले— 'प्रिये! काशीको लक्ष्य करके तत्त्वदर्शी मुनियोंने यह कहा है कि मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको कभी अविमुक्त क्षेत्र (काशीतीर्थ) का त्याग नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह सदा सुलभ नहीं है। कहाँ विश्वाधार परमात्माको प्रकाशित करनेवाली काशीपुरी और कहाँ सब ओरसे अत्यन्त दुःख देनेवाला दूसरा कार्य। ऐसी

काशीको शीघ्र कालके गालमें जानेवाला मनुष्य क्यों छोड़े। जो पाप एवं अविद्याका नाश करती है, देवताओंके लिये भी जो दुर्लभ है, गंगाजीके स्वच्छ जलसे जिसकी शोभा हो रही है, जो भव-बन्धनका नाश करनेवाली है, भगवान् शिव और अन्नपूर्णा जिसे कभी नहीं छोड़ते तथा जो मोक्षरूप मोतीको प्रकट करनेके लिये एकमात्र सीपी है, ऐसी मुक्तिमयी काशीपुरीको जीवन्मुक्त पुरुष कदापि नहीं छोड़ते। जो लहरें लेती हुई गंगाजीके जलसे अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होती है, जो प्रलयकालमें भी महादेवजीके त्रिशूलके अग्रभागपर स्थापित रहती है, ऐसी काशीको छोड़कर लोग अपने मनको जो अन्यत्र ले जाते हैं, यह उनकी कैसी जड़ता है! ब्राह्मणोंके आशीर्वाद और भगवान् विश्वनाथकी कृपासे ही काशी सुलभ होती है। काशी अपनी शरणमें आये हुए जीवोंकी रक्षा करनेवाली है। यहाँ मृत्युकालमें भगवान् शंकर सब जीवोंके कानमें तारक मन्त्रका उपदेश देते हैं, जिससे वे सब ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं। वेदवादी विद्वान् कहते हैं कि काशीपुरीमें भगवान् शिव तारक मन्त्रके उपदेशसे वहाँ रहनेवाले सब जीवोंको निश्चय ही मुक्त कर देते हैं।'

तदनन्तर अगस्त्य मुनि कालभैरवजीके पास गये और प्रणाम करके बोले—भगवन्! आप काशीपुरीके स्वामी हैं, अतः मैं आपसे आज्ञा लेने आया हूँ। कालराज! मुझ निरपराधपर किस कारण आपकी यह अपराधदृष्टि हो गयी? क्यों आप मुझे काशीसे अन्यत्र जानेका अवसर देते हैं? यक्षराज! आप क्यों मुझे काशीसे बाहर भेजते हैं?—इस प्रकार विरहीकी भाँति विलाप करके 'हा काशी! हा काशी' की रट लगाते हुए अगस्त्यमुनि अपनी धर्मपत्नी लोपामुद्राके साथ चले और आधे पलमें उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ विन्ध्यपर्वत ऊँचे आकाशको रोककर खड़ा था। मुनिने अपने सामने ही खड़े हुए विन्ध्याचलपर दृष्टिपात किया। पर्वत भी पत्नीसहित अगस्त्य मुनिको अपने आगे खड़े देखकर काँप गया। वे तपस्या और क्रोधसे तथा काशीके विरहसे प्रकट हुई त्रिविध अग्नियोंसे प्रलयंकर अनलकी भाँति अत्यन्त प्रज्वलित-से जान पड़ते थे। उनपर दृष्टि पड़ते ही विन्ध्यपर्वत इतना छोटा हो गया मानो धरतीमें समा जाना चाहता हो। छोटा रूप धारण करके वह बोला—'भगवन्! मैं आपका सेवक हूँ, मेरे योग्य सेवाके लिये आज्ञा देकर मुझपर कृपा करें।'

अगस्त्यजी बोले—विन्ध्य! तुम साधुपुरुष हो, बुद्धिमान् हो और मुझे अच्छी तरह जानते हो। देखो, जबतक यहाँ पुनः लौटकर मेरा आना न हो, तबतक तुम अत्यन्त लघु रूपमें ही रहो। यों कहकर मुनिने अपने पदार्पणसे दक्षिण दिशाको सनाथ किया। मुनिवर अगस्त्यके चले जानेपर विन्ध्यपर्वतने मन-ही-मन विचार किया—आज अगस्त्य मुनिने जो मुझे शाप नहीं दिया है, इससे मैं समझता हूँ कि मेरा पुनः नया जन्म हुआ है। उस समय कालका ज्ञान रखनेवाले अरुण सारथिने अपने घोड़ोंको आगे बढ़ाया। पहलेकी भाँति सूर्यदेवके संचारणसे सम्पूर्ण जगत् पूर्णतः स्वस्थ हुआ। आज, कल अथवा परसोंतक मुनि अवश्य आवेंगे मानो इसी चिन्ताके महाभारसे दबा हुआ विन्ध्यगिरि ज्यों-का-त्यों स्थित है, परंतु आजतक न तो अगस्त्य मुनि आये और न पर्वत बढ़ा।

मुनिवर अगस्त्यजी गोदावरीके रमणीय तटपर विचरते हुए भी काशी-विरहजनित महान् सन्तापको नहीं छोड़ सके। वे पत्नीसहित विचरते हुए कोलापुरनिवासिनी महालक्ष्मीजीके समीप गये और उन्हें प्रणाम करके इस प्रकार स्तुति करने लगे—'कमलके समान विशाल नेत्रोंवाली मातः कमले! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप भगवान् विष्णुके हृदयकमलमें निवास करनेवाली तथा सम्पूर्ण विश्वकी जननी हैं। कमलके कोमल गर्भके सदृश गौर वर्णवाली क्षीरसागरकी पुत्री

महालक्ष्मी! आप अपनी शरणमें आये हुए प्रणतजनोंका पालन करनेवाली हैं। आप सदा मुझपर प्रसन्न हों। मदनकी एकमात्र जननी रुक्मिणीरूपधारिणी लक्ष्मी! आप भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें 'श्री' नामसे प्रसिद्ध हैं। चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली देवि! आप ही चन्द्रमामें चाँदनी हैं, सूर्यमें प्रभा हैं और तीनों लोकोंमें आप ही प्रभासित होती हैं। प्रणतजनोंको आश्रय देनेवाली माता लक्ष्मी! आप सदा मुझपर प्रसन्न हों। आप ही अग्निमें दाहिका शक्ति हैं। ब्रह्माजी आपकी ही सहायतासे विविध प्रकारके जगत्‌की रचना करते हैं। सम्पूर्ण विश्वका भरण-पोषण करनेवाले भगवान् विष्णु भी आपके ही भरोसे सबका पालन करते हैं। शरणमें आकर चरणमें मस्तक झुकानेवाले पुरुषोंकी निरन्तर रक्षा करनेवाली माता महालक्ष्मी! आप मुझपर प्रसन्न हों। निर्मल स्वरूपवाली देवि! जिनको आपने त्याग दिया है, उन्हींका भगवान् रुद्र संहार करते हैं। वास्तवमें आप ही जगत्‌का पालन, संहार और सृष्टि करनेवाली हैं। आप ही कार्य-कारणरूप जगत् हैं। निर्मलस्वरूपा लक्ष्मी! आपको प्राप्त करके ही भगवान् श्रीहरि सबके पूज्य बन गये। माँ! आप प्रणतजनोंका सदैव पालन करनेवाली हैं, मुझपर प्रसन्न हों। शुभे! जिस पुरुषपर आपका करुणापूर्ण कटाक्षपात होता है, संसारमें एकमात्र वही शूरवीर, गुणवान्, विद्वान्, धन्य, मान्य, कुलीन, शीलवान्, अनेक कलाओंका ज्ञाता और परम पवित्र माना जाता है। देवि! आप जिस किसी पुरुष, हाथी, घोड़ा, नपुंसक, तिनका, सरोवर, देवमन्दिर, गृह, अन्न, रत्न, पशु-पक्षी, शय्या और भूमिमें क्षणभर भी निवास करती हैं, समस्त संसारमें केवल वही शोभासम्पन्न होता है, दूसरा नहीं। हे श्रीविष्णुपत्नि! हे कमले! हे कमलालये! हे माता लक्ष्मी! आपने जिसका स्पर्श किया है, वह पवित्र हो जाता है और आपने जिसे त्याग दिया है, वही सब इस जगत्‌में अपवित्र है। जहाँ आपका नाम है, वहीं उत्तम मंगल है। जो लक्ष्मी, श्री, कमला, कमलालया, पद्मा, रमा, नलिनयुग्मकरा (दोनों हाथोंमें कमल धारण करनेवाली), माँ, क्षीरोदजा, अमृतकुम्भकरा (हाथोंमें अमृतका कलश धारण करनेवाली), इरा और विष्णुप्रिया—इन नामोंका सदा जप करते हैं, उनके लिये कहाँ दुःख है।'*

इस प्रकार हरिप्रिया भगवती महालक्ष्मीकी

---

* अगस्तिरुवाच—

मातर्नमामि कमले कमलायताक्षि श्रीविष्णुहृत्कमलवासिनि विश्वमातः।
क्षीरोदजे कमलकोमलगर्भगौरि लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये॥
त्वं श्रीरुपेन्द्रसदने मदनैकमातर्ज्योत्स्नासि चन्द्रमसि चन्द्रमनोहरास्ये।
सूर्ये प्रभासि च जगत्त्रितये प्रभासि लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये॥
त्वं जातवेदसि सदा दहनात्मशक्तिर्वेधास्त्वया जगदिदं विविधं विदध्यात्।
विश्वम्भरोऽपि बिभृयादखिलं भवत्या लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये॥
त्वत्त्यक्तमेतदमले हरते हरोऽपि त्वं पासि हंसि विदधासि परावरासि।
ईड्यो बभूव हरिरप्यमले त्वदाप्त्या लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये॥
शूरः स एव स गुणी स बुधः स धन्यो मान्यः स एव कुलशीलकलाकलापैः।
एकः शुचिः स हि पुमान् सकलेऽपि लोके यत्रापतेत्तव शुभे करुणाकटाक्षः॥
यस्मिन्वसेः क्षणमहो पुरुषे गजेऽश्वे स्त्रैणे तृणे सरसि देवकुले गृहेऽन्ने।
रत्ने पतत्रिणि पशौ शयने धरायां सश्रीकमेव सकले तदिहास्ति नान्यत्॥
त्वत्स्पृष्टमेव सकलं शुचितां लभेत त्वत्त्यक्तमेव सकलं त्वशुचीह लक्ष्मि।
त्वन्नाम यत्र च सुमङ्गलमेव तत्र श्रीविष्णुपत्नि कमले कमलालयेऽपि॥
लक्ष्मीं श्रियं च कमलां कमलालयां च पद्मां रमां नलिनयुग्मकरां च मां च।
क्षीरोदजाममृतकुम्भकरामिरां च विष्णुप्रियामिति सदा जपतां क्व दुःखम्॥

(स्क० पु०, का० पू० ५।८०—८७)

स्तुति करके पत्नीसहित अगस्त्य मुनिने दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिरकर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया।

लक्ष्मीजीने कहा—मित्रावरुणनन्दन अगस्त्य! उठो, उठो, तुम्हारा कल्याण हो। उत्तम व्रतका आचरण करनेवाली पतिव्रते लोपामुद्रे! तुम भी उठो। मैं इस स्तुतिसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम मनोवांछित वर माँगो।

यों कहकर विष्णुप्रिया श्रीलक्ष्मीजीने मुनिपत्नी लोपामुद्राको हृदयसे लगा लिया और प्रेमपूर्वक अनेक प्रकारके सौभाग्यसूचक आभूषणोंसे उन्हें विभूषित किया। तत्पश्चात् वे पुनः बोलीं—'मुने! मैं तुम्हारे आन्तरिक तापका कारण जानती हूँ।' यह सुनकर महाभाग मुनिवर अगस्त्यजीने लक्ष्मीदेवीको प्रणाम करके भक्तिसे भरा हुआ वचन कहा—'देवि! यदि मैं वर देनेयोग्य होऊँ तो आप मेरे लिये यही वर प्रदान करें कि मुझे पुनः काशीकी प्राप्ति हो। मेरे द्वारा की हुई आपकी इस स्तुतिका जो सदा भक्तिपूर्वक पाठ करें, उन्हें कभी सन्ताप और दरिद्रता न हो।'

लक्ष्मीजीने कहा—मुने! 'एवमस्तु'। तुमने जो कुछ कहा है, वह सब पूरा होगा। इस स्तोत्रका पाठ मेरे सामीप्यकी प्राप्ति करानेवाला होगा। मुनीश्वर! आनेवाले उनतीसवें द्वापरमें तुम व्यास होओगे। उस समय काशीमें आकर वेदों-पुराणोंका विस्तार करके सम्पूर्ण धर्मोंका उपदेश देकर तुम मनोवांछित सिद्धि प्राप्त करोगे। इस समय मैं तुम्हारे हितकी एक बात बतलाती हूँ, उसका पालन करो। यहाँसे कुछ ही दूरीपर जाकर अपने सामने खड़े हुए स्वामिकार्तिकेयका दर्शन करो। ब्रह्मन्! वे तुम्हें काशीका यथार्थ रहस्य बतलायेंगे।

इस प्रकार वरदान पाकर महालक्ष्मीको प्रणाम करके मुनिवर अगस्त्य उस स्थानपर गये, जहाँ श्रीकार्तिकेयजी विराजमान हैं।

मुक्तिदायक तीर्थोंका वर्णन तथा मानसतीर्थ एवं काशीकी श्रेष्ठता

श्रीव्यासजी कहते हैं—सूत! जिन सत्पुरुषोंके हृदयमें परोपकारकी भावना जाग्रत् रहती है, उनकी विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और उन्हें पग-पगपर सम्पत्ति प्राप्त होती है। उपकारके द्वारा जैसे पुण्य-फलकी प्राप्ति होती है, तीर्थोंमें स्नान करनेसे भी वैसी शुद्धि नहीं होती, बहुतेरे दान देनेसे भी वह फल नहीं मिलता और कठोर तपस्याओंसे भी उस पुण्यकी प्राप्ति नहीं होती। परोपकारसे जो धर्म होता है तथा दान आदि सत्कर्मोंसे जिस धर्मकी प्राप्ति होती है, उन दोनोंको ब्रह्माजीने तौला था। उस समय परोपकारजनित धर्मका ही पलड़ा भारी रहा। सम्पूर्ण वाङ्मय (शास्त्र)-का मन्थन करके यही निर्णय किया गया है कि उपकारसे बढ़कर कोई धर्म नहीं और अपकारसे बढ़कर कोई पाप नहीं है। परोपकारजनित पुण्यके प्रभावसे ही साक्षात् महालक्ष्मीका दर्शन करके मुनिवर अगस्त्य कृतार्थ हो गये। वहाँसे आगे बढ़नेपर मुनिने श्रीपर्वतको

देखा, जहाँ साक्षात् त्रिपुरारि महादेवजी निवास करते हैं। उसे देखकर मुनिके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने अपनी पत्नीसे कहा—'प्रिये! देखो। यह जो परम शोभायमान श्रीशैलका शिखर दिखायी देता है, इसके दर्शनसे मनुष्योंका इस संसारमें पुनर्जन्म कभी नहीं होता। इसका विस्तार चौरासी योजनका है। यह सम्पूर्ण पर्वत शिवमय है, अत: इसकी परिक्रमा करनी चाहिये।'

लोपामुद्रा बोली—यदि प्राणनाथकी आज्ञा हो तो मैं कुछ निवेदन करना चाहती हूँ; क्योंकि पतिकी आज्ञाके बिना जो स्त्री बोलती है, वह अपने धर्मसे गिर जाती है।

अगस्त्यजीने कहा—देवि! तुम क्या कहना चाहती हो, कहो। तुम्हारे-जैसी साध्वी स्त्रियोंका वचन पतिके लिये खेदजनक नहीं होता।

तदनन्तर मुनिको प्रणाम करके देवी लोपामुद्राने विनयपूर्वक पूछा—महर्षे! श्रीशैलका दर्शन करके मनुष्यका पुनर्जन्म नहीं होता है, यदि यह बात सत्य है, तो आप काशीकी अभिलाषा क्यों करते हैं।

अगस्त्यजी बोले—वरारोहे! सुनो। तत्त्वका विचार करनेवाले ज्ञानी मुनियोंने बार-बार यह निर्णय किया है कि मुक्तिके अनेक स्थान हैं। पहला तीर्थराज प्रयाग है, जो सर्वत्र विख्यात है। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। इसके सिवा नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, गंगाद्वार (हरिद्वार), अवन्ती, अयोध्या, मथुरा, द्वारका, अमरावती, सरस्वती और समुद्रका संगम, गंगासागर-संगम, कांचीपुरी, त्र्यम्बक तीर्थ, सप्त गोदावरीतट, कालंजरतीर्थ, प्रभास क्षेत्र, बदरिकाश्रम, महालय, ॐकारक्षेत्र (अमरकण्टक), पुरुषोत्तमक्षेत्र (जगन्नाथपुरी), गोकर्णतीर्थ, भृगुकच्छ, भृगुतुंग, पुष्कर, श्रीपर्वत और धारातीर्थ आदि बहुत-से तीर्थ मुक्तिदायक हैं। सत्य, दया आदि जो मानसिक-तीर्थ हैं, वे भी मोक्ष देनेवाले हैं। गया क्षेत्र भी पितरोंके लिये मोक्षदायक बताया गया है। वहाँ श्राद्ध करनेसे मनुष्य अपने पितरों, पितामहोंके ऋणसे मुक्त होते हैं।

लोपामुद्राने पूछा—महामते! आपने जिन्हें मानसतीर्थ कहा है, वे कौन-कौनसे हैं? बतानेकी कृपा करें।

अगस्त्यजीने कहा—शुभे! सत्य तीर्थ है, क्षमा तीर्थ है, इन्द्रियोंको वशमें रखना भी तीर्थ है, सब प्राणियोंपर दया करना तीर्थ है और सरलता भी तीर्थ है। दान, दम (मनका संयम) तथा सन्तोष—ये भी तीर्थ कहे गये हैं। ब्रह्मचर्यका पालन उत्तम तीर्थ है। प्रिय वचन बोलना भी तीर्थ ही है। ज्ञान तीर्थ है, धैर्य तीर्थ है और तपस्याको भी तीर्थ कहा गया है। तीर्थोंमें भी सबसे बड़ा तीर्थ है अन्त:करणकी आत्यन्तिक शुद्धि। पानीमें शरीरको डुबो लेना ही स्नान नहीं कहलाता। जिसने दम तीर्थमें स्नान किया है, मन और इन्द्रियोंको संयममें रखा है, उसीने वास्तविक स्नान किया है। जिसने मनकी मैल धो डाली है, वही शुद्ध है। जो लोभी, चुगलखोर, क्रूर, पाखण्डी और विषयासक्त है, वह सब तीर्थोंमें स्नान करके भी पापी और मलिन ही रह जाता है। केवल शरीरके मलका त्याग करनेसे ही मनुष्य निर्मल नहीं होता। मानसिक मलका परित्याग करनेपर ही वह भीतरसे अत्यन्त निर्मल होता है। जलमें निवास करनेवाले जीव जलमें ही जन्म लेते और मरते हैं। किंतु उनका मानसिक मल नहीं धुलता। इसलिये वे स्वर्गको नहीं जाते। विषयोंके प्रति अत्यन्त राग होना मानसिक मल कहलाता है और उन्हीं विषयोंमें विराग होना निर्मलता कही गयी है। यदि अपने भीतरका मन दूषित है तो मनुष्य तीर्थस्नानसे शुद्ध नहीं होता। जैसे मदिरासे भरे हुए घड़ेको ऊपरसे जलद्वारा सैकड़ों बार धोया जाय, तो भी वह पवित्र नहीं होता, उसी प्रकार दूषित अन्त:करणवाला मनुष्य भी तीर्थस्नानसे शुद्ध नहीं होता। भीतरका

भाव शुद्ध न हो तो दान, यज्ञ, तप, शौच, तीर्थसेवन, शास्त्रोंका श्रवण एवं स्वाध्याय—ये सभी अतीर्थ हो जाते हैं। जिसने अपने इन्द्रियसमुदायको वशमें कर लिया है, वह मनुष्य जहाँ निवास करता है, वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्कर आदि तीर्थ हैं। ध्यानसे पवित्र तथा ज्ञानरूपी जलसे भरे हुए राग-द्वेषमय मलको दूर करनेवाले मानसतीर्थमें जो पुरुष स्नान करता है, वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है *। देवि! यह तुम्हें मानसतीर्थका लक्षण बताया गया। अब पृथ्वीपर जो तीर्थ हैं, उनकी पवित्रताका क्या हेतु है, यह सुनो। जैसे शरीरके कुछ अंग अत्यन्त पवित्र माने गये हैं, उसी प्रकार पृथ्वीके कुछ भाग अत्यन्त पुण्यमय हैं। पृथ्वीके अद्भुत प्रभाव, जलके विलक्षण तेज तथा मुनियोंके निवासस्थान होनेसे तीर्थ पुण्यस्वरूप माने जाते हैं। अत: जो प्रतिदिन भूमण्डलके तीर्थों और मानसतीर्थोंमें भी स्नान करता है, वह परम-गतिको प्राप्त होता है। जिसके हाथ, पैर, मन, विद्या, तप और कीर्ति सभी संयममें हैं, वह तीर्थके पूर्ण फलका भागी होता है। जो प्रतिग्रह नहीं लेता और जिस किसी भी वस्तुसे सन्तुष्ट रहता है तथा जिसमें अहंकारका सर्वथा अभाव है, वह तीर्थफलका भागी होता है। जो दम्भी नहीं है, नये-नये कार्योंका प्रारम्भ नहीं करता, थोड़ा खाता है, इन्द्रियोंको काबूमें रखता है और सब प्रकारकी आसक्तियोंसे दूर रहता है, वह तीर्थफलका भागी होता है। जो क्रोधी नहीं है, जिसकी बुद्धि निर्मल है, जो सत्य बोलनेवाला और दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाला है, जो सब प्राणियोंके प्रति अपने ही समान बर्ताव करता है, वह तीर्थफलका भागी होता है। जो तीर्थोंका सेवन करनेवाला, धीर, श्रद्धालु और एकाग्रचित्त है, वह पहलेका पापाचारी हो, तो भी शुद्ध हो जाता है। फिर जो पुण्यकर्म करनेवाला है, उसके लिये तो कहना ही क्या है। तीर्थसेवी मनुष्य कभी पशुयोनिमें जन्म नहीं लेता। कुदेशमें उसका जन्म नहीं होता और वह कभी दु:खका भागी नहीं होता। वह स्वर्ग भोगता और मोक्षका उपाय प्राप्त कर लेता है। अश्रद्धालु, पापात्मा, नास्तिक, संशयात्मा और केवल तर्कका सहारा लेनेवाला—ये पाँच प्रकारके मनुष्य तीर्थसेवनका फल नहीं पाते।

तीर्थयात्राकी इच्छा करनेवाला मनुष्य पहले अपने घरमें उपवास करके श्रीगणेशजीका यथाशक्ति पूजन करे। तत्पश्चात् पितरों, ब्राह्मणों और साधुपुरुषोंकी भी शक्तिके अनुसार पूजा करके व्रतका पारण करे। फिर प्रसन्नतापूर्वक संयम-नियमका पालन करते हुए तीर्थमें जाय। वहाँ पहुँचकर पितरोंका भलीभाँति पूजन करे। ऐसा करनेवाला पुरुष तीर्थके यथार्थ फलका भागी होता है। तीर्थमें ब्राह्मणके पूर्ण गोत्र और विद्याकी परीक्षा नहीं करनी चाहिये। यदि वह अन्नकी इच्छा रखनेवाला हो, तब तो उसे अवश्य भोजन कराना चाहिये। तीर्थोंमें सत्तू, चरु, खीर, पिण्याक (तिलके चूर्ण) और गुड़से पिण्डदान करना चाहिये। तीर्थमें अर्घ्य और आवाहनके बिना श्राद्ध करना चाहिये। श्राद्धके योग्य समय हो अथवा न हो, तीर्थमें पहुँचनेपर श्राद्ध और तर्पण अविलम्ब करना चाहिये। श्राद्धमें किसी प्रकार विघ्न नहीं आने देना चाहिये। अन्य कार्यके प्रसंगसे तीर्थमें जानेपर भी वहाँ अवश्य स्नान करे। ऐसा करनेसे वह स्नानजनित फलको पाता है, तीर्थयात्रासम्बन्धी फलको नहीं। पापचारी मनुष्योंके पापका तीर्थमें स्नान करनेसे नाश होता है। श्रद्धालु मनुष्योंको तीर्थ यथार्थ फल देनेवाला होता है। जो दूसरेके लिये तीर्थयात्रा करता है, वह तीर्थजनित पुण्यके सोलहवें अंशको पाता है। कुशका एक पुतला बनाकर उसे तीर्थके जलमें नहलावे। जिस पुरुषके

* ध्यानपूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे। यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्॥ (स्क० पु०, का० पू० ६।

उद्देश्यसे उस पुतलेको नहलाया जाता है, वह तीर्थ-स्नानजनित पुण्यके आठवें अंशको प्राप्त कर लेता है। तीर्थमें जाकर उपवास तथा सिरका मुण्डन कराना चाहिये; क्योंकि मुण्डन करानेसे सिरपर चढ़े हुए पाप दूर हो जाते हैं। जिस दिन तीर्थमें पहुँचना हो उसके पहले दिन उपवास करना चाहिये और तीर्थमें पहुँचनेके दिन पितरोंके लिये श्राद्ध एवं दान करना चाहिये। काशी, कांची, माया (लक्ष्मणझूलेसे कनखलतक), अयोध्या, द्वारका, मथुरा और अवन्ती—ये सात पुरियाँ मोक्ष देनेवाली हैं।* श्रीशैल नामक पर्वतका सम्पूर्ण प्रदेश मोक्ष देनेवाला है। केदारतीर्थका महत्त्व उससे भी अधिक है। श्रीशैल और केदारसे भी उत्तम मोक्षदायक तीर्थ प्रयाग है तथा तीर्थश्रेष्ठ प्रयागसे भी बढ़कर अविमुक्त क्षेत्र है। अविमुक्त क्षेत्र (काशी)-में जैसा मोक्ष प्राप्त होता है, वैसा कहीं नहीं।

शिवशर्माका सात पुरियोंकी यात्रा करना और हरद्वारमें उसका परमधाम-गमन

अगस्त्यजी कहते हैं—मथुरामें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे। उनके पुत्रका नाम शिवशर्मा था। शिवशर्मा बड़े तेजस्वी और सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता थे। जब जवानी बीत गयी और कानोंके समीप बाल सफेद हो गये तब बुढ़ापाको आया हुआ देख द्विजश्रेष्ठ शिवशर्माको बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे—'मेरा सारा समय पढ़ने और धनोपार्जन करनेमें चला गया। मैंने कर्मोंकी जड़ उखाड़नेमें समर्थ भगवान् महेश्वरकी आराधना कभी नहीं की। सम्पूर्ण पापोंका हरण करनेवाले श्रीहरिको भी मैंने कभी सन्तुष्ट नहीं किया। ये वेद, शास्त्र, धन, स्त्री, पुत्र, खेत और महल आदि परलोकमें जाते समय मेरे साथ नहीं जायँगे।' इस प्रकार विचार करके शिवशर्माने यह निश्चय किया कि जबतक मेरा यह शरीर स्वस्थ है, जबतक मेरी इन्द्रियोंमें विकलता नहीं आयी है, तबतक मैं अपने कल्याणके लिये तीर्थयात्रा करूँगा। यह विचार कर शुभ तिथि, शुभ दिन और शुभ लग्नमें शिवशर्माने एक रात उपवास करके प्रातःकाल पितरोंका श्राद्ध किया और श्रीगणेशजी तथा ब्राह्मणोंको नमस्कार करके व्रतका पारण करनेके पश्चात् तीर्थयात्राके लिये प्रस्थान किया। मार्गमें ब्राह्मणने सोचा—'मैं पहले किस तीर्थमें जाऊँ। इस पृथ्वीपर अनेक तीर्थ हैं। आयु क्षणभंगुर है और मन चंचल है। अतः मैं सबसे पहले सप्तपुरियोंकी यात्रा करूँ; क्योंकि वहाँ सभी तीर्थ विद्यमान हैं।' इस निश्चयके अनुसार वे अयोध्यापुरीमें गये, सरयूमें स्नान किया और वहाँके भिन्न-भिन्न तीर्थोंमें पिण्डदान और तर्पण करके पितरोंको सन्तुष्ट किया। पाँच रात अयोध्यामें निवास करके वे प्रसन्नतापूर्वक तीर्थराज प्रयागको गये, जहाँ श्याम और श्वेत सलिलवाली सरिताओंमें श्रेष्ठ देवदुर्लभ यमुना तथा गंगाजी विराज रही हैं। जिनका शरीर प्रयागतीर्थके जलसे भीगता है, उन यज्ञकर्ताओंका इस संसारमें पुनरागमन नहीं होता। वहाँ शूलटंक महादेवजी निवास करते हैं; वहीं अक्षयवट है, जिसकी जड़ सात पाताललोकोंतक फैली हुई है। प्रलयकालमें उसीपर आरूढ़ होकर मार्कण्डेयजीने निवास किया था। अक्षयवटको वटवृक्षरूपधारी साक्षात् ब्रह्मा जानना चाहिये। उसके समीप ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन कराकर मनुष्य अक्षय पुण्यका भागी होता है। वहाँ लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु वैकुण्ठधामसे आकर श्रीमाधवस्वरूपसे

* काशी काञ्ची च मायाख्या त्वयोध्या द्वारवत्यपि। मथुरावन्तिका चैताः सप्त पुर्योऽत्र मोक्षदाः॥ (स्क० पु०, का० पू० ६। ६८)

निवास करते हैं और मनुष्योंको अपने परम धाममें पहुँचाते हैं। श्याम और श्वेत जलवाली दो नदियाँ वैदिक मन्त्रोंद्वारा वर्णित हुई हैं। उन सितासित सरिताओं—यमुना और गंगामें गोता लगानेवाले पुरुष अमृतत्वको प्राप्त होते हैं। माघमासमें अरुणोदयके समय प्रयागतीर्थमें स्नान करनेके लिये शिवलोक, ब्रह्मलोक, पार्वतीलोक, कुमारलोक, वैकुण्ठलोक और सत्यलोकसे भी वहाँके निवासी आते हैं। तपोलोक, जनलोक, महर्लोक तथा स्वर्गलोकके निवासी भी आते हैं। भुवर्लोक, भूलोक तथा सम्पूर्ण नागलोकसे भी वहाँके रहनेवाले प्राणी पधारते हैं। हिमवान् आदि श्रेष्ठ पर्वत और कल्पवृक्ष आदि तरुवर भी माघमें प्रयाग-स्नान करनेके लिये आते हैं। प्रयाग निश्चय ही इच्छानुसार फल देनेवाला तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला तीर्थ है। 'ज्ञानी पुरुष भगवान् विष्णुके उस सच्चिदानन्दमय पदको सदा देखते हैं, वेदकी श्रुतियोंद्वारा जिसके विषयमें बारंबार यह बात कही जाती है, वह प्रयागतीर्थ ही है। देवि! तीर्थराज प्रयाग सब तीर्थोंद्वारा सेवित है, उसके गुणोंका वर्णन करनेमें यहाँ कौन समर्थ है। उत्तम बुद्धिवाले शिवशर्मा प्रयागके गुणोंको जानकर माघभर वहीं रहे। उसके बाद वे काशीपुरीमें चले आये। वहाँ प्रवेश करते ही उन्हें पुरीकी द्वारदेहलीपर भगवान् गणेशजीका दर्शन हुआ। शिवशर्माने भक्तिपूर्वक गणेशजीके ऊपर घी मिलाये हुए सिन्दूरका लेप किया और उन्हें पाँच मोदकोंका नैवेद्य लगाकर क्षेत्रके भीतर प्रवेश किया। वहाँ मणिकर्णिकातीर्थमें जाकर उन्होंने देखा कि स्वर्गीय नदी गंगाजी दक्षिणसे उत्तरकी ओर प्रवाहित हो रही हैं। पापहीन पुण्यात्मा मनुष्य उन्हें तटपर घेरे हुए हैं। उत्तरवाहिनी गंगाका दर्शन करके शिवशर्माने वस्त्रसहित निर्मल जलमें गोता लगाया; इससे उनकी बुद्धि तत्काल शुद्ध हो गयी। वे कर्मकाण्डके ज्ञाता थे; अतः स्नान करके उन्होंने विधिपूर्वक देवताओं, ऋषियों, दिव्य मनुष्यों, दिव्य पितरों, (चतुर्दश यमों) तथा अपने पितरोंका तर्पण किया। फिर शीघ्र ही काशीके पंचतीर्थोंका सेवन करके अपने वैभवके अनुसार भगवान् विश्वनाथका पूजन किया। शिवशर्मा भगवान् शिवकी उस पुरीको बारंबार देखकर बहुत विस्मित हुए और सोचने लगे—इस काशीकी महिमाका वर्णन कोई नहीं कर सकता। काशीमें यह मणिकर्णिका तीर्थ संसारी जीवोंके लिये साक्षात् चिन्तामणिके समान है। यहाँ साधुपुरुषोंके कानोंमें मृत्युके समय भगवान् शिव तारक मन्त्रका उपदेश देते हैं। इसीलिये उसका नाम मणिकर्णिका है। यहाँ निवास करनेवाले जरायुज (मनुष्य आदि), अण्डज (पक्षी आदि), उद्भिज्ज (वृक्ष आदि) और स्वेदज (मक्खी आदि) सभी जीव मोक्षके भागी होते हैं। इस प्रकार विचार करते हुए शिवशर्मा बार-बार उस पवित्र एवं विचित्र क्षेत्रको नेत्रोंसे निहारते रहे; परंतु उन्हें तृप्ति नहीं होती थी। वे मन-ही-मन कहने लगे—'मैं उत्तम मोक्ष प्रदान करनेमें कुशल काशीपुरीको सातों पुरियोंमें श्रेष्ठ समझता हूँ। तथापि काशी और अयोध्याके अतिरिक्त अन्य पुरियोंका मैंने अभीतक दर्शन नहीं किया है; इसलिये उनका भी प्रभाव जानकर मैं पुनः यहाँ आऊँगा।'

अगस्त्यजी कहते हैं—प्रिये! अनेकानेक शास्त्रीय प्रमाणोंसे उस क्षेत्रके श्रेष्ठ गुणोंको जानकर भी तीर्थयात्रापरायण शिवशर्मा ब्राह्मण काशीपुरीसे बाहर निकले, यह कितने आश्चर्यकी बात है! वे एक देशसे दूसरे देशमें भ्रमण करते हुए महाकालपुरी (उज्जयिनी या अवन्ती)-में पहुँचे, जहाँ कभी कलिकालका प्रभाव नहीं पड़ता। वह पुरी पापसे अवन—रक्षा करती है, इसलिये उसे 'अवन्ती' कहते हैं। कलियुगमें उसका नाम 'उज्जयिनी' होता है। भगवान् शिवका एक ही स्वरूप पातालमें 'हाटकेश्वर', भूतलपर 'महाकाल' तथा स्वर्गलोकमें

'तारकेश्वर' नामसे तीन रूपोंमें अभिव्यक्त होकर तीनों लोकोंको व्याप्त करके स्थित है। जो 'महाकाल, महाकाल, महाकाल' इस प्रकार सदा स्मरण करता है, उसका स्मरण भगवान् श्रीहरि और महादेवजी निरन्तर करते रहते हैं।

भूतनाथ भगवान् महाकालकी आराधना करके शिवशर्मा कांचीपुरीमें गये, जो तीनों लोकोंसे भी अधिक कमनीय है, जहाँ साक्षात् भगवान् लक्ष्मीपति निवास करते हैं। कान्तिमान् पुरुषोंसे सेवित कान्तिमती कांचीनगरीका दर्शन कर, वहाँके आवश्यक तीर्थकृत्योंका पालन करके वे द्वारकापुरीकी ओर गये। वहाँ सब ओर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष— इन चतुर्विध पुरुषार्थोंके द्वार हैं; इसीलिये तत्त्वज्ञ विद्वानोंने उसे 'द्वारवती' कहा है। यमराज अपने दूतोंसे कहते हैं—'जिसके ललाटमें गोपीचन्दनका तिलक लगा हो, उसे प्रज्वलित अग्निकी भाँति समझकर प्रयत्नपूर्वक दूरसे ही त्याग देना उचित है। दूतो! जो तुलसीकी मालासे विभूषित, तुलसी नामका जप करनेवाले तथा तुलसीवनके रक्षक हैं, वे दूरसे ही त्याग देने योग्य हैं। द्वारकापुरीमें जो जीव कालसे प्रेरित हो मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे वैकुण्ठधाममें पहुँचकर पीताम्बरधारी तथा चार भुजाओंसे विभूषित होते हैं।' वहाँ जाकर शिवशर्माने उस क्षेत्रके सभी तीर्थोंमें स्नान और देवता, ऋषि, मनुष्य एवं पितरोंका तर्पण किया। वहाँसे वे मायापुरी (कनखलसे हरद्वार, ऋषिकेश होते हुए लक्ष्मणझूला)-में गये, जो पापी मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है और जहाँ वैष्णवी माया अपने मायापाशमें जीवोंको नहीं बाँधती है। कोई उसे 'हरिद्वार', कोई 'मोक्षद्वार', कोई 'गंगाद्वार' तथा कोई 'मायापुरी' कहते हैं। वहाँ पर्वतमालाओंसे बाहर निकली हुई गंगा इस भूतलपर भागीरथीके नामसे विख्यात होती है, जिसके नामोच्चारण करनेमात्रसे मनुष्योंकी पापराशिके सहस्रों टुकड़े हो जाते हैं। ज्ञानी पुरुष हरिद्वारको वैकुण्ठका एक सोपान कहते हैं। वहाँ स्नान करनेवाले पुरुष भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होते हैं। उस तीर्थमें उपवास करके उन्होंने प्रातःकाल गंगामें स्नान किया और जो-जो तर्पण करने योग्य हैं— उन देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण करके ज्यों-ही पारणा करनेका विचार किया, त्यों-ही वे शीतज्वरसे आक्रान्त हो थरथर काँपने लगे। एक तो वे परदेशमें थे, दूसरे अकेले ही वहाँ आये थे, कोई भी सहायक नहीं था। इस दशामें अत्यन्त ज्वरसे पीड़ित होनेपर उनके मनमें बड़ी भारी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे—'यह कैसी विपत्ति आ गयी। किंतु अब अत्यन्त सन्ताप देनेवाली व्यर्थकी चिन्ताओंसे क्या लाभ। मैं परम कल्याणकारी भगवान् विष्णु और शिवका चिन्तन करूँ। मैंने मुक्तिके एक उपायका तो भली-भाँति साधन कर लिया। मुक्ति देनेवाली सातों पुरियोंका अपने नेत्रोंसे दर्शन किया है। संग्राममें अथवा तीर्थमें मृत्यु होना श्रेष्ठ है। यह शरीर हाड़ और चामका संग्रह है; इसके द्वारा यहाँ मृत्यु होनेसे मैं निश्चय ही कल्याणमयी मुक्ति प्राप्त करूँगा।'

इस प्रकार चिन्तन करते हुए शिवशर्माको अत्यन्त भयंकर पीड़ा हुई। करोड़ों बिच्छुओंके डंक मारनेसे मनुष्यकी जो दशा हो सकती है, वही शिवशर्माको भी प्राप्त हुई। 'मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ' इसकी सुध न रही। स्मरण करने योग्य सभी बातें भूल गयीं। दो सप्ताह रोगग्रस्त रहकर शिवशर्मा मृत्युको प्राप्त हुए। इतनेमें ही वहाँ वैकुण्ठधामसे विमान आया। उसपर सुन्दर मुख और चार भुजावाले पुण्यशील और सुशील नामक दो पार्षद विराजमान थे। शिवशर्मा ब्राह्मणने उस विमानपर बैठकर चतुर्भुज रूप धारण कर लिया और पीताम्बर एवं दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हो आकाश-मार्गकी शोभा बढ़ाते हुए वहाँसे प्रस्थान किया।

शिवशर्मा और विष्णुपार्षदोंका संवाद तथा विभिन्न लोकोंका वर्णन

शिवशर्माने कहा—हे विष्णुपार्षदो! आप दोनों पुण्यात्मा हैं। आप दोनोंके नेत्र कमलदलके समान परम सुन्दर हैं। मैं आपके नामको नहीं जानता, परंतु आकृतिसे कुछ-कुछ समझता हूँ। आप दोनों पुण्यशील और सुशील नामवाले गण हैं, ऐसा मेरा अनुमान है।

दोनों गण बोले—ठीक है, तुमने जैसा कहा है वही हमारा नाम है।

दिव्यरूपधारी ब्राह्मण शिवशर्माने पूछा—यह कौन-सा लोक है?

दोनों गण बोले—यह पिशाचलोक है। इसमें मांसभक्षी जीव निवास करते हैं। जो दान देकर पछताते हैं, नहीं-नहीं करते हुए देते हैं, कभी प्रसंगवश एक बार शिवजीकी पूजा करके सदा प्राय: अपवित्र चित्त ही रहते हैं एवं जिनका पुण्य बहुत थोड़ा और धन-सम्पत्ति भी बहुत थोड़ी है, सखे! वे ही ये पिशाच हैं।

तदनन्तर आगे जानेपर शिवशर्माने देखा, हृष्ट-पुष्ट नर-नारियोंसे भरा हुआ एक सुन्दर लोक है। उसे देखकर उन्होंने पूछा—'पार्षदो! यह कौन-सा लोक है और किस पुण्यसे यहाँ आना होता है?'

दोनों गण बोले—ब्रह्मन्! यह गुह्यकलोक है। यहाँके निवासी गुह्यक माने गये हैं। जो न्यायपूर्वक धन कमाकर उसे धरतीमें गाड़कर छिपा देते हैं, अपने मार्गपर चलते और धनाढ्य होते हैं, जिनका व्यवहार प्राय: शूद्रोंके समान होता है, जो कुटुम्बके साथ रहकर और आपसमें बाँटकर खाते हैं, जिनमें क्रोध और असूया आदि दोष नहीं होते, वे ही ये गुह्यक हैं। ये सदा सुखमें मग्न होनेके कारण तिथि, वार, संक्रान्ति आदि पर्वका ज्ञान नहीं रखते। केवल एक बात जानते हैं। ये कुलपूज्य पुरोहित ब्राह्मणको गोदान देते और उसकी आज्ञाका पालन करते हैं। उसी पुण्यसे गुह्यकलोग समृद्धिशाली होते और यहाँ देवताओंकी भाँति निर्भय होकर स्वर्गीय सुख भोगते हैं।

तदनन्तर आगेके लोकको देखकर शिवशर्माने पूछा—ये कौन लोग हैं और इस लोकका क्या नाम है?

दोनों गण बोले—यह गन्धर्वलोक है, ये लोग उत्तम व्रतका पालन करनेवाले गन्धर्व हैं। ये देवताओंके गायक हैं। मनुष्योंमें जो स्तुति-पाठ करनेवाले चारण हैं, जो संगीतकी कलाको जानते हैं और अपने अति मनोहर गीतसे राजाओंको सन्तुष्ट करते हैं, वे राजाओंके प्रसादसे प्राप्त हुए उत्तम वस्त्र, धन, द्रव्य और सुगन्धित कर्पूर आदि अनेक पदार्थोंको जब ब्राह्मणोंके लिये दान देते हैं, तब उसी पुण्यसे उनको यह गन्धर्वलोक प्राप्त होता है। यह गुह्यकलोककी अपेक्षा श्रेष्ठ है। तुम्बुरु और नारद—ये दोनों गन्धर्व देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ हैं। नाद साक्षात् भगवान् शिवका स्वरूप है। वे दोनों उस नादतत्त्वके ज्ञाता हैं। यदि किसीने कहीं भगवान् विष्णु और शिवके समीप गीत गाया है, तो उसका फल मोक्ष है अथवा उन दोनोंके सामीप्यकी प्राप्तिको उसका फल बताया गया है। अत: संगीतमालाके द्वारा भगवान् विष्णुकी सदा पूजा करनी चाहिये।

तत्पश्चात् शिवशर्मा क्षणभरमें दूसरे मनोहर लोकमें जा पहुँचे और उन्होंने पूछा—इस नगरका क्या नाम है?'

दोनों गणोंने कहा—यह विद्याधरोंका लोक है। अनेक प्रकारकी विद्याओंमें विशारद ये विद्याधर लोग विद्यार्थियोंको अन्न और ओषधि दान करते रहे हैं। विद्याके गर्वसे रहित हो इन्होंने छात्रोंको नाना प्रकारकी कलाएँ सिखलायी हैं। शिष्यको पुत्रके समान देखा तथा भोजन और वस्त्र आदिसे उसका सत्कार किया है। ये धर्मपूर्वक अपनी सुन्दरी कन्याओंको वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित करके उनका विवाह

करते रहे हैं और प्रतिदिन फलकी इच्छासे इन्होंने इष्टदेवोंकी पूजा की है। उन्हीं पुण्योंसे ये विद्याधरलोग यहाँ निवास करते हैं।

शिवशर्मा और विष्णुपार्षदोंमें इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि धर्मराज वहाँ आ पहुँचे और इस प्रकार बोले—शिवशर्मन्! तुम्हें साधुवाद है। तुमने वह कार्य किया, जो ब्राह्मणकुलके लिये सर्वथा उचित है। पहले वेदोंका अभ्यास किया, गुरुजनोंको अपनी सेवासे सन्तुष्ट किया, धर्मशास्त्र और पुराणोंमें प्रतिपादित धर्मको जाना और उसका आदर किया तथा इस क्षणभंगुर शरीरको मोक्षदायिनी सात पुरियोंके जलसे नहलाया। इसीलिये बुद्धिमान् पुरुष विद्वत्ताका आदर करते हैं; क्योंकि विद्वान् लोग दिनका एक क्षण भी व्यर्थ नहीं बीतने देते। आयु शीघ्र बीत जानेवाली है, लोक शोकमें डूबा हुआ है, अतः श्रेष्ठ धर्मात्मा पुरुषोंको तुम्हारी ही भाँति सदा धर्ममें मन लगाना चाहिये। देखो, यह सत्कर्मोंका ही फल है कि तुम्हारे और मेरे लिये भी वन्दनीय ये भगवान्के पार्षद आज तुम्हारे सखा हो गये हैं। आज मैं धन्य हूँ कि यहाँ मुझे भगवान्के युगल पार्षदोंका दर्शन हुआ।

तत्पश्चात् उन दोनों गणोंके कहनेपर यमराज अपनी पुरीको लौट गये। उसके बाद शिवशर्माने उन दोनों पार्षदोंसे कहा—'ये साक्षात् धर्मराज थे, इनकी आकृति तो बड़ी ही सौम्य है। यह संयमनी पुरी भी अतिशय शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न है, जिसका नाम सुनकर भी पापी जीव अत्यन्त भयभीत हो उठते हैं। मर्त्यलोकमें मनुष्य यमराजके स्वरूपका अन्य प्रकारसे वर्णन करते हैं, परंतु मैंने यहाँ इन्हें और ही प्रकारसे देखा है। इसका क्या कारण है, यह आपलोग बतलावें।'

दोनों गण बोले—सौम्य! सुनो, तुम-जैसे पुण्यात्मा पुरुषोंको ही ये अत्यन्त सौम्य दिखायी देते हैं; क्योंकि धर्मराज स्वभावसे ही धर्ममूर्ति हैं। ये ही पापियोंके लिये विकराल स्वरूप धारण कर लेते हैं। इनकी पीली-पीली आँखें क्रोधसे लाल हो उठती हैं, बड़ी-बड़ी दाढ़ोंसे इनका मुख विकराल हो उठता है तथा बिजलीकी-सी लपलपाती हुई जिह्वासे ये और भी भयंकर दिखायी देते हैं। इनके केश ऊपरकी ओर उठे होते हैं, शरीरका रंग अत्यन्त काला हो जाता है और इनकी आवाज प्रलयकालीन मेघोंकी गम्भीर गर्जनाके समान होती है। हाथमें कालदण्ड उठाये टेढ़ी भौंहोंसे कुटिल मुख किये यमराज अपने दूतोंको आज्ञा देते हैं—'इस पापात्माको यहाँ लाओ, नीचे गिरा दो, अच्छी तरह बाँध दो और कठोर दण्ड दो। इस दुराचारीके मस्तकपर लोहेके मुद्गरोंसे जोर-जोरसे मारो। दोनों पैर पकड़कर इसे पत्थरकी चट्टानोंपर दे मारो। अपने पैरोंसे इसका गला दबाकर इसकी दोनों आँखें निकाल लो। परायी स्त्रीकी ओर फैलनेवाले इस पापात्माके हाथ काट डालो। परायी स्त्रीके शरीरमें नखक्षत करनेवाले इस दुरात्माके शरीरमें सब ओरसे रोम-रोममें सूई चुभो दो। पर-स्त्रीका मुख चूमने और सूँघनेवाले इस दुष्टके मुँहमें थूक दो। दूसरोंकी निन्दा करनेवाले इस पापीके मुँहमें तीखी कील ठोंक दो। इस कुलकलंकिनी कुलटाको तपाये हुए लोहेके बने उपपतिके शरीरसे सटा दो। जो अजितेन्द्रिय पुरुष अपने ही ग्रहण किये हुए नियमोंका त्याग करता है, उस दुष्टात्माको भ्रमरदंश नामक नरकमें बार-बार गिराओ।' इत्यादि बातें कहते हुए यमराजका शब्द दुराचारी पुरुषोंको दूरसे ही सुनायी देता है। पापात्माओंको यमराज अत्यन्त भयंकर दिखायी देते हैं।

जो राजा इस जगत्में अपने औरस पुत्रोंकी भाँति प्रजाका पालन करते और धर्मके अनुसार दण्ड देते हैं, वे यमराजकी सभाके सदस्य होते हैं। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सदा अपने धर्ममें तत्पर रहते हैं तथा दूसरे भी जो संयमी जीवन व्यतीत करनेवाले हैं, वे सब लोग संयमनीपुरीमें धर्मसभाके सदस्य होकर निवास करते हैं। उशीनर (शिवि), सुधन्वा, वृषपर्वा,

जयद्रथ, रजि, सहस्त्रजित्, कुक्षि, दृढ़धन्वा, रिपुंजय, युवनाश्व, दन्तवक्र, शत्रुओंका भी मंगल चाहनेवाले नाभाग, करन्धम, धर्मसेन, परमर्द तथा परान्तक— ये और दूसरे भी बहुत-से नीतिज्ञ राजा, जो धर्म और अधर्मका विचार करनेमें कुशल हैं, धर्मराजकी सुधर्मा सभामें बैठते हैं।

यमराज अपने दूतोंसे कहते हैं—मेरे सेवको! जो मनुष्य गोविन्द, माधव, मुकुन्द, हरे, मुरारे, शम्भु, शिव, ईश, चन्द्रशेखर, शूलपाणि, दामोदर, अच्युत, जनार्दन और वासुदेव इत्यादि नामोंका सदा उच्चारण करते रहते हैं, उनको दूरसे ही त्याग देना। दूतो! जो लोग सदा गंगाधर, अन्धकरिपु, हर, नीलकण्ठ, वैकुण्ठ, कैटभरिपु, कमठ, पद्मपाणि, भूतेश, खण्डपरशु, मृड, चण्डिकेश आदि नामोंका जप करते हैं, वे तुम्हारे लिये सर्वथा त्याज्य हैं। मेरे दूतो! विष्णु, नृसिंह, मधुसूदन, चक्रपाणि, गौरीपति, गिरीश, शंकर, चन्द्रचूड, नारायण, असुरविनाशन, शार्ङ्गपाणि इत्यादि नामोंका सदा जो लोग कीर्तन करते रहते हैं, उन्हें भी दूरसे ही त्याग देना उचित है*।

अगस्त्यजी कहते हैं—प्रिये लोपामुद्रे! इस प्रकार पापरहित मनोरम कथाका श्रवण करते हुए शिवशर्माने प्रसन्नमुख होकर अपने सामने अप्सराओंकी पुरी देखी।

शिवशर्माका सूर्यलोकमें पहुँचकर सूर्यदेवकी महिमा श्रवण करना

अगस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर विमानपर बैठे हुए शिवशर्मा सूर्यलोकमें जा पहुँचे। उन्होंने सूर्यदेवको हाथ जोड़कर प्रणाम किया। भगवान् सूर्य अपने भ्रूभंगमात्रसे उनके प्रणामको स्वीकार

करके क्षणभरमें आकाशमार्गमें बहुत दूर निकल गये। तब शिवशर्माने भगवत्पार्षदोंसे पूछा— 'भगवान् सूर्यका लोक कैसे प्राप्त होता है?'

भगवान् विष्णुके पार्षदोंने कहा—ब्रह्मन्! सुनो। जो समस्त प्राणियोंके एकमात्र नियन्ता, परम कारण, नाम और गोत्रसे रहित तथा रूप आदिसे शून्य हैं, जिनकी भौंहोंके विलासमात्रसे जगत्‌की सृष्टि और प्रलय होते हैं, वे सर्वात्मा वेद-पुरुष ऐसा कहते हैं कि जो आदित्य-मण्डलमें अन्तर्यामी पुरुष सूर्यदेव हैं, वही मैं हूँ। जो गायत्रीमन्त्रकी दीक्षा प्राप्त करके तीनों कालमें ठीक समयपर सन्ध्योपासना, सूर्योपस्थान तथा गायत्री-मन्त्रका जप नहीं करता, वह एक सप्ताहमें स्वधर्मसे भ्रष्ट हो जाता है, इसमें संशय नहीं। प्रातःकाल सन्ध्योपासना करके गायत्री-मन्त्रका जप करते हुए तबतक खड़ा रहे, जबतक कि सूर्यदेवका आधा उदय न हो जाय। सायंकालमें मौनभावसे आसनपर बैठे हुए ही तबतक जप करता रहे, जबतक ताराओंका उदय न हो जाय। मध्याह्न-सन्ध्यामें सूर्यकी ओर मुख करके जप

* गोविन्द माधव मुकुन्द हरे मुरारे शम्भो शिवेश शशिशेखर शूलपाणे।
दामोदराच्युत जनार्दन वासुदेव त्याज्या भटा य इति सन्ततमामनन्ति॥ (स्क० पु०, का० पू० ८।९९)

करना चाहिये। समयपर ही अन्न आदि ओषधियोंमें फल लगते हैं, समयपर ही वृक्षोंमें फूल खिलते हैं और समयपर ही मेघगण पानी बरसाते हैं। इसलिये सन्ध्याके लिये उचित कालका उल्लंघन न करे[१]। जिसने समयपर भगवान् सूर्यको गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रित जलकी तीन अंजलियाँ प्रदान कीं, उसने क्या तीनों लोकोंका दान नहीं कर दिया? ठीक समयसे उपासना करनेपर भगवान् सूर्य मनुष्यको आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन, पशु, मित्र, पुत्र, स्त्री, भाँति-भाँतिके क्षेत्र, आठ प्रकारके भोग, स्वर्ग तथा मोक्ष क्या-क्या नहीं देते। सब मन्त्रोंमें प्रणवसहित गायत्री दुर्लभ है। तीनों वेदोंमें गायत्रीसे बढ़कर कोई मन्त्र नहीं बताया गया है। गायत्रीके समान मन्त्र, काशीके सदृश पुरी तथा भगवान् विश्वनाथके तुल्य शिवमूर्ति कहीं नहीं है। गायत्री वेदोंकी माता और ब्राह्मणोंकी जननी है। वह अपना गान करनेवाले उपासकका त्राण करती है, इसलिये 'गायत्री' कहलाती है[२]। गायत्री-मन्त्र और भगवान् सूर्य इन दोनोंमें वाच्य-वाचक सम्बन्ध है। साक्षात् भगवान् सूर्य वाच्य (अर्थरूप) हैं और मन्त्रोंमें श्रेष्ठ गायत्री वाचक है। गायत्रीके प्रभावसे ही जितेन्द्रिय विश्वामित्र क्षत्रिय होनेपर भी राजर्षिपदका परित्याग करके ब्रह्मर्षिपदको प्राप्त हुए। गायत्री ही परम विष्णु है, गायत्री ही परम शिव है, गायत्री ही परम ब्रह्मा है और गायत्री ही तीनों वेद है।[३] जो ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि आलस्य छोड़कर सूर्यदेवतासम्बन्धी वैदिक सूक्तोंद्वारा सदैव भगवान् सूर्यका उपस्थान करते और उन्हें मस्तक झुकाते हैं, वे साक्षात् सूर्यके ही समान हैं। सूर्यग्रहणके समय जो कुछ स्नान, दान, जप, होम तथा श्राद्ध आदि सत्कर्मोंका अनुष्ठान किया जाता है, वह सब भगवान् सूर्यके सामीप्यकी प्राप्तिमें सहायक होता है। १ हंस, २ भानु, ३ सहस्रांशु, ४ तपन, ५ तापन, ६ रवि, ७ विकर्तन, ८ विवस्वान्, ९ विश्वकर्मा, १० विभावसु, ११ विश्वरूप, १२ विश्वकर्ता, १३ मार्तण्ड, १४ मिहिर, १५ अंशुमान्, १६ आदित्य, १७ उष्णगु, १८ सूर्य, १९ अर्यमा, २० ब्रध्न, २१ दिवाकर, २२ द्वादशात्मा, २३ सप्तहय, २४ भास्कर, २५ अहस्कर, २६ खग, २७ सूर, २८ प्रभाकर, २९ श्रीमान्, ३० लोकचक्षु, ३१ ग्रहेश्वर, ३२ त्रिलोकेश, ३३ लोकसाक्षी, ३४ तमारि, ३५ शाश्वत, ३६ शुचि, ३७ गभस्तिहस्त, ३८ तीव्रांशु, ३९ तरणि, ४० सुमहोरणि, ४१ द्युमणि, ४२ हरिदश्व, ४३ अर्क, ४४ भानुमान्, ४५ भयनाशन, ४६ छन्दोश्व, ४७ वेदवेद्य,

---

गंगाधरान्धकरिपो हर नीलकण्ठ वैकुण्ठ कैटभरिपो कमठाब्जपाणे।
भूतेश खण्डपरशो मृड चण्डिकेश त्याज्या भटा य इति सन्ततमामनन्ति॥
विष्णो नृसिंह मधुसूदन चक्रपाणे गौरीपते गिरिश शङ्कर चन्द्रचूड।
नारायणासुरनिबर्हणशार्ङ्गपाणे त्याज्या भटा य इति सन्ततमामनन्ति॥
(स्क० पु०, का० पू० ८। १००-१०१)

१- उपलभ्य च सावित्रीं नोपतिष्ठेत यः पराम्। काले त्रिकालं सप्ताहात्स पतेन्नात्र संशयः॥
तावत्प्रातर्जपंस्तिष्ठेद्यावदर्धोदयो रवेः। आसनस्थो जपेन्मौनी प्रत्यगा तारकोदयात्॥
सादित्यां मध्यमां सन्ध्यां जपेदादित्यसम्मुखः। काललोपो न कर्तव्यस्ततः कालं प्रतीक्षयेत्॥
काले फलन्त्योषधयः काले पुष्यन्ति पादपाः। वर्षन्ति तोयदाः काले तस्मात्कालं न लङ्घयेत्॥
(स्क० पु०, का० पू० ९। ४१—४४)

२- दुर्लभा सर्वमन्त्रेषु गायत्री प्रणवान्विता। न गायत्र्याधिकं किञ्चित्त्रयीषु परिगीयते॥
न गायत्रीसमो मन्त्रो न काशीसदृशी पुरी। न विश्वेशसमं लिंगं सत्यं सत्यं पुनः पुनः॥
गायत्री वेदजननी गायत्री ब्राह्मणप्रसूः। गातारं त्रायते यस्माद्गायत्री तेन गीयते॥
(स्क० पु०, का० पू० ९। ५१—५३)

३- गायत्र्येव परो विष्णुर्गायत्र्येव परः शिवः। गायत्र्येव परो ब्रह्मा गायत्र्येव त्रयी ततः॥
(स्क० पु०, का० पू० ९। ५७)

४८ भास्वान्, ४९ पूषा, ५० वृषाकपि, ५१ एकचक्ररथ, ५२ मित्र, ५३ मन्देहारि, ५४ तमिश्रहा, ५५ दैत्यहा, ५६ पापहर्ता, ५७ धर्म, ५८ धर्मप्रकाशक, ५९ हेलिक, ६० चित्रभानु, ६१ कलिघ्न, ६२ ताक्ष्यर्वाहन, ६३ दिक्पति, ६४ पद्मिनीनाथ, ६५ कुशेशयकर, ६६ हरि, ६७ धर्मरश्मि, ६८ दुर्निरीक्ष्य, ६९ चण्डांशु और ७० कश्यपात्मज *—सूर्यदेवके इन परम पवित्र नामोंके आदिमें प्रणव और अन्तमें '**नमः**' शब्द जोड़कर प्रत्येक नामको चतुर्थ्यन्त करके उसका उच्चारण

---

* इन सत्तर नामोंका संक्षेपसे अर्थ-बोध कराया जाता है—

१. हन्ति गच्छति जानाति सर्वम् इति वा हंसः।

जो सर्वत्र जाता है अथवा सबको जानता है, वह हंस है, इस व्युत्पत्तिके अनुसार सर्वव्यापी सर्वज्ञ परमात्माका नाम ही हंस है। 'हंस' या 'सोऽहम्' यह अजपा-मन्त्र भी है।

२. भातीति भानुः, भाः नुदति प्रेरयति इति वा भानुः।

जो विभासित हो अथवा अपनी प्रभाका प्रसार करे, वह भानु है। ३. सहस्र (असंख्य) किरणोंवाले। ४. तपनेवाले। ५. तपानेवाले। ६. लोकान् अवति रक्षति इति रविः; जो सम्पूर्ण लोकोंका अवन—रक्षण करे, वह रवि है। अवधातुके पूर्वमें 'रुट्' का आगम होता है, जिससे 'रवि' शब्दकी सिद्धि होती है। जैसा कि अन्यत्र बताया गया है—

'अवेति रक्षणे धातुः प्रत्ययेऽस्य रुडागमः।
अवति त्रीनिमाँल्लोकांस्तेनासौ रविरुच्यते॥' ॥ इति॥

७. विश्वकर्माके द्वारा भगवान् सूर्यके तेजका विशेषरूपसे कर्तन—संक्षिप्तीकरण किया गया है, इसलिये उनका नाम विकर्तन है। ८. जिनका वसु अर्थात् तेज सबसे विशिष्ट है, उन्हें विवस्वान् कहते हैं। ९. सम्पूर्ण विश्व जिनका कर्म है अथवा जिनसे सम्पूर्ण विश्वकी कर्ममें प्रवृत्ति होती है, उन भगवान् सूर्यका नाम विश्वकर्मा है। १०. अग्निस्वरूप होनेसे सूर्यदेवका नाम विभावसु है अथवा जिनके वसु—किरण अनेक प्रकारसे विभासित हैं, वे विभावसु कहलाते हैं। ११. सम्पूर्ण विश्वमें जिनका तेजोमय स्वरूप व्याप्त है अथवा यह विश्व जिनका ही स्वरूप है, वे भगवान् सूर्य विश्वरूप कहे गये हैं। १२. सम्पूर्ण विश्वको उत्पन्न करनेवाले। १३. मृत्तिकामय अर्थात् अचेतन अण्डमें वैराजरूपसे प्रविष्ट होनेके कारण सूर्यदेवका नाम मार्तण्ड हुआ। १४. मिहि राति गृह्णाति नाशयति इति वा मिहिरः। हिम अथवा कुहरेको ग्रहण करते या नष्ट करते हैं, इसलिये सूर्य मिहिर कहलाते हैं। १५. किरणोंसे युक्त। १६. अदितिके पुत्र। १७ उष्ण (गरम) किरणोंवाले। १८. सूते इति सूर्यः; जो सबका उत्पादन करे, वह सूर्य है। १९. अर्यमा त्रैमूर्तिः; वेदत्रयी जिनका स्वरूप है, वे सूर्यदेव अर्यमा कहलाते हैं। २०. जो सम्पूर्ण जगत्‌को बढ़ाता है, वह ब्रध्न है। २१. दिनको प्रकट करनेवाले। २२.बारह महीनोंमें बारह स्वरूपोंसे आदित्यमण्डलका संचालन करनेवाले। २३ सात घोड़ोंवाले। २४ प्रभाको फैलानेवाले। २५ दिन प्रकट करनेवाले। २६ आकाशमें चलनेवाले। २७ जगत् सूते इति सूरः; संसारको उत्पन्न करते हैं, इसलिये सूर हैं। २८ प्रभाका विस्तार करनेवाले। २९ कान्तिमान्। ३० सम्पूर्ण जगत्‌के नेत्रोंमें प्रकाश देनेवाले। ३१ ग्रहोंके स्वामी। ३२ तीनों लोकोंके स्वामी। ३३ अन्तर्यामीरूपसे सम्पूर्ण जगत्‌के साक्षी। ३४ अन्धकारके शत्रु। ३५ नित्य। ३६ पवित्र। ३७ किरणरूपी हाथोंवाले। ३८ तीक्ष्ण किरणवाले। ३९ संसार-समुद्रसे तारनेवाले नौकारूप। ४० अत्यन्त महान् तेजकी उत्पत्तिके स्थान। ४१ आकाशमें मणिके समान प्रकाशित होनेवाले। ४२ हरे रंगके घोड़ेवाले। ४३ अतिशयेन इयति गच्छति इत्यर्कः; जो अत्यन्त तीव्र वेगसे गमन करे, वह अर्क है। ४४ प्रकाशमान किरणोंवाले। ४५ भयका निवारण करनेवाले। ४६ गायत्री आदि सात छन्द ही सूर्यदेवके सात अश्व हैं, इसलिये उनका नाम छन्दोश्व है। ४७ वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य। ४८ प्रकाशवान्। ४९ वृष्टिः आदि द्वारेण सर्वं जगत् पुष्णाति इति पूषा; वर्षा आदिके द्वारा समस्त जगत्‌का पोषण करते हैं, इसलिये उनका नाम पूषा है। ५० वर्षति पुण्यफलम् आकम्पयति पापम् इति वृषाकपिः; पुण्यफलकी वर्षा करते और पापको आकम्पित (नष्ट) करते हैं, इसलिये सूर्यदेव वृषाकपि कहलाते हैं। ५१ सूर्यका रथ एक पहियेवाला है, इसलिये वे एक-चक्ररथ हैं। ५२ स्वभावतः सबके सुहृद् होनेसे उनका नाम मित्र है। ५३ आलस्यके प्रतीक मन्देह नामक राक्षसोंका शत्रु होनेके कारण भगवान् सूर्यको मन्देहारि कहते हैं। ५४ अन्धकारनाशक। ५५ दैत्योंके नाशक। ५६ पापोंका अपहरण करनेवाले। ५७ धारण करनेवाले अथवा धर्मस्वरूप। ५८ धर्मको प्रकाशित करनेवाले। ५९ हे आकाशे लिंकति गच्छति इति हेलिकः; 'ह' अर्थात् आकाशमें गमन करनेवाले होनेके कारण वे हेलिक हैं। ६० चित्र अर्थात् अनेक प्रकारकी किरणोंवाले। ६१ कलिके दोषोंका नाश करनेवाले। ६२ विष्णुरूपसे गरुड़की पीठपर चलनेवाले; अथवा तार्क्ष्य नाम है अरुणका, वह जिनका वाहन अर्थात् सारथि है, वे सूर्यदेव तार्क्ष्यवाहन कहे गये हैं। ६३ दिशाओंके स्वामी। ६४ कमलिनीके स्वामी अथवा उसे विकसित करनेवाले। ६५ हाथमें कमल धारण करनेवाले। ६६ अज्ञान एवं अन्धकारका अपहरण करनेवाले। ६७ उष्ण किरणवाले। ६८ जिनकी ओर देखना कठिन होता है। ६९ प्रचण्ड किरणवाले। ७० कश्यपजीके पुत्र।

करते हुए भगवान् सूर्यको अर्घ्य देना चाहिये। यथा— '**ॐ हंसाय नमः, ॐ भानवे नमः**' इत्यादि। अर्घ्यकी विधि इस प्रकार है—दोनों हाथोंमें निर्मल ताम्रपात्र लेकर उसे जलसे भर ले। उसमें कनेर आदिके पुष्प, रक्त चन्दन, दूर्वादल और अक्षत डाल दे। तत्पश्चात् पृथ्वीपर दोनों घुटने टेककर सूर्यकी ओर देख-देखकर एक-एक नामका पूर्वोक्त रूपसे उच्चारण करते हुए अर्घ्यपात्रको अपने मस्तकके पास लाकर परम पूजनीय सूर्यदेवको ध्यानपूर्वक अर्घ्य दे। सूर्योदय और सूर्यास्तके समय महामन्त्र-रहस्यरूप इन सत्तर नामोंके द्वारा प्रत्येक नाममय मन्त्रके साथ सूर्यदेवको नमस्कार करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य न कभी दरिद्र होता है और न कभी दुःखका ही भागी होता है। वह पूर्वजन्मोपार्जित भयंकर रोगोंसे भी मुक्त हो जाता है और समयपर मृत्युको प्राप्त होकर भगवान् सूर्यके लोकमें प्रतिष्ठित होता है।

इस पुण्यकथाको सुनते हुए शिवशर्माने क्षणभरमें देवराज इन्द्रके लोकमें पहुँचकर उनकी महापुरीका दर्शन किया।

इन्द्रलोक तथा अग्निलोकका वर्णन, विश्वानर मुनिके द्वारा की हुई आराधनासे प्रसन्न होकर शिवजीका उन्हें वरदान देना

शिवशर्माने पूछा—यह उत्तम पुरी किसकी है?

दोनों भगवत्पार्षदोंने कहा—महाभाग! यह देवराज इन्द्रकी पुरी है। विश्वकर्माजीने बड़ी भारी तपस्याके बलसे इस पुरीका निर्माण किया है। इस अमरावतीमें कपड़ा बुननेवाले और आभूषण बनानेवाले नहीं रहते; क्योंकि यहाँ कल्पवृक्ष ही सबको रुचिके अनुसार वस्त्र और आभूषण देता है। यहाँ रसोई बनानेके कार्यमें कुशल रसोइये भी नहीं हैं, एकमात्र कामधेनु ही यहाँ सम्पूर्ण रसोंको प्रस्तुत करती है। यहीं सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्र हैं। ये ही स्वर्गलोकके अधिपति हैं। इन्होंने सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया है, इसलिये ये इन्द्रदेव शतमन्यु कहलाते हैं। अग्नि आदि सात लोकपाल इनकी उपासना करते हैं। जो कोई भी जितेन्द्रिय पुरुष पृथ्वीपर निर्विघ्नतापूर्वक सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान पूरा कर लेता है, वह इन्द्रपुरीमें जाकर इन्द्र-पदवीको पाता है। जिन्होंने सौ यज्ञ पूरे नहीं किये हैं, वे यज्ञकर्ता राजा भी इस लोकमें निवास करते हैं। जो ब्राह्मण ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंद्वारा यजन करते हैं, वे भी इस लोकमें निवास करते हैं। जो तुलापुरुषदान आदि सोलह महादानोंका अनुष्ठान करते हैं, वे शुद्ध चित्तवाले पुण्यात्मा पुरुष अमरावतीपुरीको प्राप्त करते हैं। जो संग्राममें कभी पीठ नहीं दिखाते, कायरोंकी-सी बात नहीं करते, धीरतापूर्वक पराक्रम दिखाते हुए वीरशय्यापर वीरगतिको प्राप्त होते हैं, वे राजा भी यहाँ निवास करते हैं। यज्ञविद्यामें कुशल यज्ञकर्ता मनुष्य भी यहाँ निवास करते हैं। इस प्रकार देवराज इन्द्रके नगरकी स्थिति संक्षेपसे बतायी गयी है। अब तुम इस ज्योतिर्मयी अग्निपुरीकी ओर देखो। जो उत्तम व्रतका पालन करनेवाले पुरुष अग्निदेवके उपासक हैं, वे इस लोकमें निवास करते हैं। अग्निहोत्रपरायण ब्राह्मण, अग्निसेवी ब्रह्मचारी तथा पंचाग्निव्रतका पालन करनेवाले तपस्वी अग्निलोकमें अग्निके समान तेजस्वी होकर रहते हैं। जो सर्दीके समय शीतका कष्ट दूर करनेके लिये सूखे काठ दान करते तथा मन्दाग्नि रोगवाले मनुष्यके जठराग्निकी वृद्धिके लिये वैश्वानर चूर्ण आदि औषध प्रदान करते हैं, वे चिरकालतक अग्निलोकमें निवास करते हैं। जो यज्ञके लिये

उपयोगी सामग्री अथवा धन अपनी शक्तिके अनुसार देते हैं, वे अर्चिष्मती पुरीमें स्थान पाते हैं। द्विजातियोंके लिये एकमात्र अग्निदेवता ही परम कल्याणकारी हैं—गुरु, देवता, व्रत और तीर्थ सब अग्नि ही हैं। सभी अपवित्र वस्तुएँ अग्निके संसर्गमें आनेपर क्षणभरमें पवित्र हो जाती हैं, अतएव उनका नाम पावक है। अग्निदेव त्रिभुवनके स्वामी परमेश्वरके नेत्र हैं। जब संसार घोर अन्धकारसे आच्छादित हो जाता है उस समय उनके सिवा दूसरा कौन प्रकाशक होता है।

पूर्वकालकी बात है, नर्मदा नदीके रमणीय तटपर नर्मपुरमें एक विश्वानर नामक मुनि थे, जो भगवान् शिवके भक्त और बड़े पुण्यात्मा थे। एक समय भगवान् शिवका ध्यान करके वे मन-ही-मन विचार करने लगे कि चारों आश्रमोंमें कौन-सा आश्रम सत्पुरुषोंके लिये विशेष कल्याणकारक है, जिसका भलीभाँति पालन करनेपर इहलोक और परलोकमें भी सुख होता है। यह साधन श्रेष्ठ है, यह उससे भी श्रेष्ठ है और यह सुगम है, इस प्रकार सबकी आलोचना करके उन्होंने गृहस्थ-आश्रमकी प्रशंसा की। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा संन्यासी—इन सबका आधार गृहस्थ-आश्रम ही है। देवता, मनुष्य, पितर तथा पशु-पक्षी आदि भी प्रतिदिन गृहस्थसे ही अपनी जीविका चलाते हैं, इसलिये गृहस्थाश्रमी पुरुष ही सर्वश्रेष्ठ हैं। जो गृहस्थ स्नान, होम अथवा दान किये बिना ही भोजन कर लेता है, वह देवता आदिका ऋणी होकर नरकमें पड़ता है। जो हठसे, लोकभयसे अथवा स्वार्थसे ब्रह्मचर्य-व्रतको धारण करता है, किंतु मन-ही-मन विषयभोगोंका चिन्तन करता रहता है, उसका धारण किया हुआ व्रत भी नहींके समान हो जाता है। परायी स्त्रीका परित्याग करने, अपनी ही स्त्रीसे सन्तुष्ट रहने तथा ऋतुकालके समय पत्नी-समागम करनेवाले गृहस्थको ब्रह्मचारी ही कहा गया है। जिसने राग-द्वेषको त्याग दिया है, जो काम-क्रोधसे दूर रहता है, वह अग्नि और स्त्रीके साथ रहनेवाला गृहस्थ वानप्रस्थसे भी बढ़कर है। जो वैराग्यसे घर छोड़कर निकले, किंतु हृदयमें घरका सदा चिन्तन करता रहे, वह दोनों ओरसे भ्रष्ट होता है। उसको न तो गृहस्थ कहा जा सकता है और न वानप्रस्थ ही। जो गृहस्थ ब्राह्मण बिना माँगे प्राप्त हुई जीविकासे जीवन-निर्वाह करता और जिस किसी वस्तुसे भी सन्तुष्ट रहता है, वह संन्यासीसे भी बढ़कर है। जो संन्यासी जहाँ कहीं भी कोई दुर्लभ वस्तु भी माँग बैठता है और भोजनसे सन्तुष्ट नहीं होता, वह संन्यास-धर्मसे भ्रष्ट हो जाता है।

इस प्रकार गुण-अवगुणका विचार करके विश्वानर ब्राह्मणने अपने योग्य उत्तम कुलकी कन्याके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। वे अग्निसेवामें तत्पर रहते, पंचयज्ञोंका अनुष्ठान करते, सदा यजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन और दान-प्रतिग्रह—इन छः कर्मोंमें संलग्न रहते तथा देवता, पितर एवं अतिथियोंसे प्रेम रखते थे। मनको संयममें रखनेवाले विश्वानर मुनि धर्म, अर्थ और कामका तदनुकूल समयमें संग्रह करते थे। दोनों दम्पति एक-दूसरेके अनुकूल चलते थे; अतः उनमें परस्पर कोई संकोच नहीं था। वे ब्राह्मण कर्मकाण्डके ज्ञाता थे, अतः पूर्वाह्णकालमें देवयज्ञ, मध्याह्नमें मनुष्ययज्ञ (अतिथि-सेवा) तथा अपराह्णमें पितृयज्ञ करते थे। इस तरह बहुत समय बीत जानेपर उन ब्राह्मणदेवताकी पतिव्रता पत्नी शुचिष्मती एक दिन अपने पतिसे इस प्रकार बोली—'प्राणनाथ! स्त्रियोंके योग्य जितने भोग हैं, वे सब आपके प्रसादसे मेरे द्वारा पूर्णरूपसे भोगे गये हैं। अब आप मुझे भगवान् शंकरके सदृश पुत्र प्रदान करें।'

शुचिष्मतीका यह वचन सुनकर विश्वानर मुनिने क्षणभर समाधि लगाकर मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया—'अहो! मेरी इस पत्नीने यह कैसा अत्यन्त दुर्लभ वर माँगा है। परंतु

इसके मुखमें वचनरूपसे स्थित होकर साक्षात् भगवान् शिवने ही यह बात कही है, अतः इसे टालने या बदलनेकी भी सामर्थ्य किसमें है।' यों सोच-विचारकर विश्वानर मुनिने पत्नीसे कहा—'प्रिये! ऐसा ही होगा।' उसे इस प्रकार आश्वासन देकर मुनि तपस्याके लिये चल दिये। उन्होंने काशीमें जाकर मणिकर्णिकाका दर्शन किया और सौ जन्मोंमें उपार्जित त्रिविध पाप-तापोंका परित्याग कर दिया। विश्वेश्वर आदि सम्पूर्ण शिवलिंगोंका दर्शन करके सभी कुण्डों, बावड़ियों, कुओं और तालाबोंमें स्नान किया। सम्पूर्ण गणेश-विग्रहोंको नमस्कार करके समस्त गौरी-विग्रहोंके चरणोंमें मस्तक झुकाया। तत्पश्चात् पापोंका भक्षण करनेवाले कालराज भैरवका भलीभाँति पूजन करके आदिकेशव, आदिश्रीविष्णु-विग्रहोंको सन्तुष्ट किया। फिर लोलार्क आदि सूर्य-विग्रहोंको बार-बार नमस्कार करके सब तीर्थोंमें पिण्डदान किया। सहस्रोंकी संख्यामें भोजन कराकर संन्यासियों और ब्राह्मणोंको तृप्त किया।

तदनन्तर वे बार-बार यह सोचने लगे कि कौन-सा शिवलिंग शीघ्र सिद्धि प्रदान करनेवाला है। क्षणभर सोच-विचार करनेके बाद वे इस निर्णयपर पहुँचे कि जहाँ सिद्धिरूपिणी विकटा देवी प्रकट हुई हैं और जहाँ सिद्धिविनायकजी सब विघ्नोंका निवारण करके समस्त सिद्धियाँ प्रदान करते हैं, वह सिद्धिक्षेत्र ही अविमुक्त क्षेत्रमें सबसे प्रधान स्थान है। वहाँ वीरेश्वर नामसे प्रसिद्ध शिवलिंग अत्यन्त गुह्यतम माना गया है। काशीमें ऐसी भूमि नहीं है, जहाँ कोई शिवलिंग न हो। परंतु वीरेश्वरलिंगके समान शीघ्र सिद्धि प्रदान करनेवाला तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष देनेवाला दूसरा लिंग नहीं है। शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ चन्द्रमौलि तथा भरद्वाजजी पूर्वकालमें वीरेश्वरकी आराधना करके उनकी महिमाका गान करते हुए उन्हींमें लीन हो गये। नागराज शंखचूडने भी प्रतिदिन रातमें अपने फनोंकी मणियोंसे बार-बार आरती उतारते हुए छः महीनेमें सिद्धि प्राप्त कर ली। यहाँ वसुदत्त और रत्नदत्त नामक वैश्योंने एक वर्षतक श्रीवीरेश्वरकी आराधना करके सत्यवतीके समान पुत्री प्राप्त की थी। अतः मैं भी यहाँ तीनों काल वीरेश्वरकी आराधना करके अपनी स्त्रीकी रुचिके अनुसार शीघ्र ही पुत्र प्राप्त करूँगा।

धीर बुद्धिवाले विप्रवर विश्वानरने ऐसा निश्चय करके चन्द्रकूपके जलसे स्नान किया और व्रतकी दीक्षा ले नियम ग्रहण किया। वे एक मासतक प्रतिदिन केवल एक बार भोजन करके रहे। फिर दूसरे मासमें दिनभर उपवास करके केवल रातमें ही भोजन करते रहे। फिर एक मासतक बिना माँगे जो कुछ मिल जाय, उसीपर निर्वाह करते रहे। उसके बाद पूरे एक मासतक उन्होंने अखण्ड उपवास किया। तदनन्तर, एक मासतक दूध पीकर, एक मासतक साग और फल खाकर, एक महीनेतक मुट्ठीभर तिल चबाकर और एक महीनेतक केवल जल पीकर जीवन-निर्वाह किया। तत्पश्चात् एक मासतक वे केवल पंचगव्य पीकर रहे, एक मासतक चान्द्रायण व्रतमें लगे रहे, एक मासतक कुशाके अग्रभागपर जितना जल आता है, उतना ही पीकर तप करते रहे और एक मासतक उन्होंने केवल वायुका आहार किया। इसके बाद तेरहवें मासमें गंगाजीके जलमें स्नान करके वे प्रातःकाल ज्यों ही भगवान् वीरेश्वरके समीप गये, त्यों ही उस लिंगके मध्यभागमें उन्हें एक विभूति-भूषित अष्टवर्षीय सुन्दर बालक दिखायी दिया। उसके नेत्र कानोंके समीपतक फैले हुए थे। ओठ बहुत ही लाल थे। मस्तकपर पीले रंगकी जटाका मनोहर मुकुट शोभा पा रहा था। वह बालक नंगा था और उसके मुखपर हास्यकी छटा छा रही थी। उसने बालकोचित वेष-भूषा धारण कर रखी थी। वह मनोहर बालक वैदिक सूक्तोंका पाठ करता और खेल-खेलमें ही हँसता था।

उसे देखकर विश्वानरके शरीरमें आनन्दातिरेकसे रोमांच हो आया और वे गद्गदकण्ठसे बोल उठे—'नमस्कार है, नमस्कार है।' तत्पश्चात् उन्होंने इस प्रकार स्तवन किया—'यहाँ सब कुछ एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म ही है। यह बात सत्य है, सत्य है। इस विश्वमें भेद या नानात्व कुछ भी नहीं है। इसलिये एक अद्वितीयरूप आप महेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। शम्भो! आप रूपरहित अथवा एकरूप होकर भी जगत्के नाना स्वरूपोंमें अनेककी भाँति प्रतीत होते हैं। ठीक उसी तरह, जैसे जलके भिन्न-भिन्न पात्रोंमें एक ही सूर्य अनेकवत् दृष्टिगोचर होता है। अतः आपके सिवा और किसी स्वामीकी मैं शरण नहीं लेता। जैसे रज्जुका ज्ञान हो जानेपर सर्पका भ्रम मिट जाता है, सीपीका बोध होते ही चाँदीकी प्रतीति नष्ट हो जाती है तथा मृगमरीचिकाका निश्चय होनेपर उसमें प्रतीत होनेवाला जलप्रवाह असत्य सिद्ध हो जाता है, उसी प्रकार जिनका ज्ञान होनेपर सब ओर प्रतीत होनेवाला यह सम्पूर्ण प्रपंच उन्हींमें विलीन हो जाता है, उन महेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। शम्भो! जैसे जलमें शीतलता, अग्निमें दाहकता, सूर्यमें ताप, चन्द्रमामें आह्लाद, पुष्पमें सुगन्ध तथा दूधमें घी स्थित है, उसी प्रकार सम्पूर्ण विश्वमें आप व्याप्त हैं, इसलिये मैं आपकी ही शरण लेता हूँ। आप बिना कानके ही शब्दको सुनते हैं, नासिकाके बिना ही सूँघते हैं, पैरोंके बिना ही दूरसे चले आते हैं, नेत्रोंके बिना ही देखते और रसनाके बिना ही रसका अनुभव करते हैं, आपको यथार्थरूपसे कौन जानता है? अतः मैं आपकी ही शरण लेता हूँ। ईश! वेद भी आपके साक्षात् स्वरूपको नहीं जानता, बड़े-बड़े योगीश्वर तथा इन्द्र आदि देवता भी आपको यथार्थरूपसे नहीं जानते, परंतु आपका भक्त आपकी ही कृपासे आपको जानता है, अतः मैं आपकी ही शरण लेता हूँ। आप ही वृद्ध हैं, आप ही तरुण हैं और आप ही बालक हैं। कौन-सा ऐसा तत्त्व है, जो आप नहीं हैं, सब कुछ आप ही हैं, अतः मैं आपके चरणोंमें मस्तक नवाता हूँ।'

इस प्रकार स्तुति करके विप्रवर विश्वानर अतिशय आनन्दमग्न हो दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़ गये। इतनेमें ही बालकरूपधारी शिव बोल उठे—'भूदेव! तुम कोई वर माँगो। तुमने अपनी धर्मपत्नी शुचिष्मतीके विषयमें अपने मनमें जो अभिलाषा की है, वह थोड़े ही समयमें पूर्ण होगी। महामते! मैं स्वयं ही शुचिष्मतीके गर्भमें आकर तुम्हारा पुत्र होऊँगा। उस समय सब देवताओंका परम प्रिय मैं गृहपति (अग्नि)-के नामसे विख्यात होऊँगा। तुमने जो इस अभिलाषाष्टक नामक पवित्र स्तोत्रका पाठ किया है, इस स्तोत्रको तीनों समय मेरे समीप यदि पढ़ा जाय तो यह सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला होगा। इस स्तोत्रका पाठ पुत्र, पौत्र और धन देनेवाला होगा, सब प्रकारकी शान्ति करनेवाला और सम्पूर्ण आपत्तियोंका नाशक होगा। इतना ही नहीं, यह स्वर्ग, मोक्ष तथा सम्पत्ति देनेवाला भी होगा। एक वर्षतक पाठ करनेपर यह स्तोत्र पुत्रदान करनेवाला होगा, इसमें संशय नहीं है।' ऐसा कहकर बालरूपधारी महादेवजी अन्तर्धान हो गये और विप्रवर विश्वानर भी अपने घर लौट गये।

विश्वानरके पुत्र गृहपतिका भगवान् शिवकी आराधनासे अग्नि एवं दिक्पालका पद प्राप्त करना

अगस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर विश्वानरद्वारा विधिपूर्वक गर्भाधान-संस्कार सम्पन्न होनेपर उनकी स्त्री शुचिष्मती गर्भवती हुई। तत्पश्चात् विद्वान् विश्वानरने गृह्यसूत्रोक्त विधिसे बालककी पुरुषोचित शक्ति बढ़ानेके उद्देश्यसे गर्भिणीका पुंसवन-संस्कार किया। यह संस्कार गर्भस्थ बालकके

गर्भमें चलने-फिरनेसे पहले ही सम्पन्न किया गया। तदनन्तर आठवें मासमें सीमन्तोन्नयन संस्कार किया, जो गर्भस्थ बालकके अवयवोंको पुष्ट करनेवाला है। उसके बाद सुखपूर्वक पुत्रका जन्म हो जाय, इसके लिये भी विद्वान् ब्राह्मणने सोष्यन्ती नामक वैदिक कर्म सम्पन्न किया। यह सब होनेके पश्चात् शुभ ग्रह एवं नक्षत्रोंके योगमें शुचिष्मतीके गर्भसे एक चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाला पुत्र उत्पन्न हुआ, जो सब प्रकारके अरिष्टोंका नाश करनेवाला था। वह अपने अंगोंकी प्रभासे सूतिकागृहको प्रकाशित कर रहा था। स्वयं ब्रह्माजीने आकर उस बालकका जातकर्म-संस्कार किया और यह बताया कि इस बालकका नाम गृहपति होगा। विष्णु और महादेवजीके साथ बालकके लिये उचित रक्षा-विधान करके सबके प्रपितामह ब्रह्माजी हंसपर आरूढ़ हो चले गये। चौथे महीनेमें बालकका घरसे बाहर निष्क्रमण हुआ। छठे महीनेमें उसका अन्नप्राशन-संस्कार किया गया और वर्ष पूरा होनेपर चूड़ाकरण। तदनन्तर श्रवण नक्षत्रमें कर्णवेध संस्कार करके ब्रह्मतेजकी वृद्धिके लिये पाँचवें वर्षमें उपनयन-संस्कारपूर्वक उसे यज्ञोपवीत दे दिया गया। उसके बाद श्रावणीमें उपाकर्म करके विद्वान् विश्वानरने उसे वेद पढ़ाना प्रारम्भ किया। तीन ही वर्षमें उस बालकने अंग, पद और क्रमके साथ विधिपूर्वक सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन कर लिया। विनय आदि सद्‌गुणोंको प्रकट करनेवाले उस शक्तिमान् विप्रकुमारने गुरुमुखको साक्षीमात्र बनाकर समस्त विद्याएँ ग्रहण कर लीं।

तदनन्तर नवें वर्षमें विश्वानरकुमार गृहपति जब माता-पिताकी सेवामें संलग्न था, उस समय इच्छानुसार विचरनेवाले देवर्षि नारदजी विश्वानरकी पर्णशालामें आये और उस बालकको देखकर अर्घ्य और आसन ग्रहण करनेके पश्चात् उन्होंने वहाँका कुशल-समाचार पूछा—'महाभाग विश्वानर और उत्तम व्रतका पालन करनेवाली देवी शुचिष्मती! यह बालक गृहपति तुम दोनोंकी आज्ञाका पालन तो करता है न? क्योंकि पुत्रके लिये पिता-माताके आज्ञापालनको छोड़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है, दूसरा कोई तीर्थ नहीं है तथा दूसरा कोई देवता, गुरु और सत्कर्म नहीं है। त्रिलोकीमें पुत्रके लिये माता-पितासे बढ़कर कोई वस्तु नहीं है। गर्भमें धारण और बाल्यावस्थामें पोषण करनेके कारण माताका गौरव पितासे भी बढ़कर है। समस्त कर्मोंका संन्यास (त्याग) करनेवाले संन्यासीके द्वारा भी पिता वन्दनीय हैं। उस सर्ववन्द्य संन्यासीको भी प्रयत्नपूर्वक अपनी माताके चरणोंकी वन्दना करनी चाहिये। यही अत्यन्त उग्र तपस्या है, यही सबसे श्रेष्ठ व्रत है और यही सर्वोत्तम धर्म है कि पिता-माताको सन्तुष्ट किया जाय *। विश्वानरकुमार! मेरे पास आओ मेरी गोदमें बैठो और अपना दाहिना हाथ दिखाओ। तुम्हारे लक्षण कैसे हैं, यह मैं देखूँगा।'

देवर्षि नारदके ऐसा कहनेपर बालक गृहपति पिता-माताकी आज्ञा ले नारदजीको प्रणाम करके भक्तिसे विनीत हो उनके समीप आ बैठा। उसे अच्छी तरह देखनेके बाद नारदजीने कहा—'विप्रवर! तुम्हारा यह पुत्र समूची पृथ्वीका पालन करनेवाला होगा और दिक्पाल पदवी धारण करेगा। इसके पास महान् ऐश्वर्य होगा। इसमें राजा होनेके लक्षण हैं। यह अत्यन्त सुलक्षण बालक है; किंतु सर्वगुणसम्पन्न, समस्त शुभ लक्षणोंसे लक्षित तथा सम्पूर्ण निर्मल कलाओंसे युक्त होनेपर भी इसे दुर्दैव चन्द्रमाकी भाँति नीचे गिरा सकता है। अतः पूर्ण प्रयत्न करके तुम्हें अपने इस शिशुकी रक्षा करनी चाहिये। बारहवें वर्षकी अवस्थामें इसको बिजलीकी अग्निसे भय है।' ऐसा कहकर बुद्धिमान् नारदजी जैसे आये थे, वैसे

---

* संन्यस्ताखिलकर्मापि पितुर्वन्द्यो हि मस्करी। सर्ववन्द्येन यतिना प्रसूर्वन्द्या प्रयत्नतः॥
इदमेव तपोऽत्युग्रमिदमेव परं व्रतम्। अयमेव परो धर्मो यत्पित्रोः परितोषणम्॥
(स्क० पु०, का० पू० ११। ५०-५१)

ही लौट गये। नारदजीके चले जानेपर माता-पिताको शोकसे घिरा हुआ देख गृहपतिने मुसकराते हुए कहा—'माता और पिताजी! आपलोगोंको इतना भय क्यों हो रहा है? आप दोनोंके चरणोंकी धूलिसे मेरे शरीरकी रक्षा हो रही है। मुझे काल भी अपना ग्रास नहीं बना सकता, फिर बेचारी बिजली तो बहुत छोटी वस्तु है। आप दोनों मेरी प्रतिज्ञा सुनें। यदि मैं आप दोनोंका पुत्र हूँ तो ऐसा प्रयत्न करूँगा जिससे बिजली स्वयं मुझसे भयभीत होगी। जो साधु-महात्माओंको सब कुछ देनेवाले और सर्वज्ञ हैं, कालके भी काल, कालकूट विषका भक्षण करनेवाले महाकाल हैं, उन भगवान् मृत्युंजयकी आराधना करके मैं निर्भय हो जाऊँगा।' पुत्रकी यह बात सुनकर बूढ़े ब्राह्मण-दम्पति इस प्रकार बोले—'बेटा! तुम भगवान् शिवकी शरणमें जाओ। इससे बढ़कर हितकी दूसरी कोई बात नहीं हो सकती। भगवान् शिव आशातीत फलको देनेवाले और कालका भी संहार करनेवाले हैं। जिसने तीनों लोकोंकी सम्पत्तिका अपहरण कर लिया था, उस महाभिमानी जालन्धरको जिन्होंने अपने चरणोंके अंगुष्ठकी रेखासे प्रकट हुए चक्रके द्वारा मार डाला था, जो ब्रह्मा आदि देवताओंके एकमात्र उत्पादक हैं और अपनी महिमासे कभी च्युत नहीं होते, उन सम्पूर्ण विश्वकी रक्षाके लिये चिन्तामणिस्वरूप भगवान् शिवकी शरणमें जाओ।'

माता-पिताकी ऐसी आज्ञा पाकर बालक गृहपति उनके चरणोंमें प्रणाम करके काशीमें गया। वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके उसने तीनों लोकोंके प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले भगवान् विश्वनाथका दर्शन एवं उन्हें प्रणाम किया। विश्वनाथजीका दर्शन करके गृहपतिके हृदयमें बड़ा सन्तोष हुआ। उसने मन-ही-मन कहा—'यह दिव्य शिवस्वरूप वास्तवमें परमानन्दकन्द है। इस मोक्षदायक मूर्तिमें सम्पूर्ण विश्वका और विश्वके बीजभूत कर्मोंका लय होता है, इसलिये यह 'विश्वनाथ' है। मेरे भाग्यका उदय हुआ था, इसीलिये महर्षि नारदने उस दिन आकर वैसी बात कही थी। इसीसे आज मैं विश्वनाथजीका दर्शन करके कृतकृत्य हो रहा हूँ।' इस प्रकार आनन्द-सुधारससे पारण-सा करके गृहपतिने अत्यन्त कठोर नियम ग्रहण किये। वह प्रतिदिन गंगाके अमृतमय जलसे भरे हुए एक सौ आठ कलशोंके वस्त्रद्वारा छाने हुए जलसे भगवान् शिवको स्नान कराता और उन्हें नीलकमलकी माला समर्पित करता था। वह माला एक हजार आठ पुष्पोंकी बनी हुई होती थी। गृहपति पंद्रह-पंद्रह दिनपर कन्द-मूल-फल भोजन करता था। इस तरह उसने छ:मास व्यतीत किये। फिर छः महीनोंतक उसने एक-एक पक्षपर सूखे पत्ते चबाये। छः महीनोंतक उसने जलकी एक-एक बूँदका ही आहार किया और छः महीनोंतक केवल वायुभक्षण किया। इस प्रकार तपस्या करते हुए उस बालकके दो वर्ष व्यतीत हो गये। जन्मसे बारहवें वर्षमें वज्रधारी इन्द्र उसके समीप आये और बोले—'तुम कोई मनोवांछित वर माँगो, मैं उसे दूँगा।'

बालक बोला—इन्द्र! मैं आपको जानता हूँ, किंतु आपसे वर नहीं माँगूँगा। मुझे वर देनेवाले तो भगवान् शंकर हैं।

इन्द्रने कहा—बालक! मैं देवताओंका भी देवता हूँ। मुझसे भिन्न दूसरा कोई कल्याणकारी शंकर नहीं है। तुम मूर्खता छोड़कर मुझसे वर माँगो।

ब्राह्मणबालक बोला—पाकशासन! मैं भगवान् शिवके अतिरिक्त दूसरे किसी देवतासे याचना नहीं कर सकता।

उसकी यह बात सुनकर इन्द्रके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। उन्होंने भयानक वज्र उठाकर उस बालकको भयभीत किया। विद्युतकी सैकड़ों ज्वालाओंसे व्याप्त वज्रको देखकर ब्राह्मणबालकको देवर्षि नारदके वचनका स्मरण हो आया और वह भयसे व्याकुल होकर मूर्छित हो गया। इसी समय अज्ञानान्धकारको दूर करनेवाले गौरीपति भगवान् शंकर वहाँ प्रकट हो गये और अपने स्पर्शसे उस बालकमें नवजीवनका संचार-सा करते हुए बोले—'वत्स! तुम्हारा कल्याण हो, उठो, उठो।' उसने रातमें सोये हुएकी भाँति बंद नेत्रकमलोंको

खोलकर और उठकर देखा, आगे भगवान् शिव विराजमान हैं। उनका तेज सैकड़ों सूर्योंसे भी अधिक प्रकाशमान है, मस्तकपर जटाजूट उनकी

शोभा बढ़ा रहा है, त्रिशूल और आजगव धनुष (पिनाक) ये दोनों आयुध उनके हाथोंमें सुशोभित हैं। कर्पूरके समान गौर अंग उद्भासित हो रहा है। गुरुजनों और शास्त्रके वचनसे उक्त लक्षणोंद्वारा महादेवजीको पहचानकर गृहपतिके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। वह एक क्षणतक ठगा हुआ-सा खड़ा रहा। स्तुति, नमस्कार अथवा कुछ निवेदन करनेमें भी समर्थ न हुआ। तब भगवान् शंकर मुसकराते हुए बोले—'वत्स गृहपते! तुम भयभीत न होओ। इन्द्रवज्र अथवा काल भी मेरे भक्तका अनिष्ट करनेमें समर्थ नहीं है। मैंने ही इन्द्रका रूप धरकर तुम्हें डराया था। भद्र! मैं तुम्हें वर देता हूँ, तुम अग्निपदवीके भागी बनो। तुम सम्पूर्ण देवताओंके मुख होओगे। अग्ने! तुम समस्त प्राणियोंके भीतर विचरण करो। इन्द्र (पूर्व) और धर्मराज (दक्षिण)-के मध्यमें तुम दिक्पाल बनकर रहो और अपना राज्य ग्रहण करो। तुमने जो यह शिवजीकी मूर्ति स्थापित की है, तुम्हारे ही नामसे प्रसिद्ध होगी। अग्नीश्वर नामसे विख्यात यह सब तेजोंको बढ़ानेवाली होगी। सब समृद्धियोंको देनेवाले अग्नीश्वरकी पूजा करके दैववश काशीसे अन्यत्र मरनेवाला पुरुष भी अग्निलोकमें प्रतिष्ठित होगा।' ऐसा कहकर गृहपति अग्निको दिक्पाल पदपर अभिषिक्त करके भगवान् शंकर उसी शिवमूर्तिमें समा गये।

नैर्ऋत्यलोक तथा वरुणलोकका वर्णन

शिवशर्मा बोले—नारायणस्वरूप भगवत्पार्षदो! अब आपलोग नैर्ऋत्य आदि लोकोंका क्रमशः वर्णन करें।

दोनों भगवत्पार्षदोंने कहा—महाभाग! संयमनीपुरीसे आगे जो निर्ऋति नामक दिक्पालकी पुण्यमयी पुरी है, उसका वर्णन सुनो। उसमें पुण्यजन निवास करते हैं। यद्यपि इसमें राक्षसोंका ही वास है, तथापि वे राक्षस कभी भी दूसरोंसे द्रोह नहीं रखते। वे जातिमात्रसे राक्षस हैं, आचार-व्यवहारसे तो ये पुण्यजन हैं—पुण्यात्मा पुरुष हैं। ये सदा तीर्थ-स्नानपरायण हो प्रतिदिन देवपूजामें तत्पर रहते हैं। अपने नाम-गोत्रका उच्चारण करके ब्राह्मणोंको प्रणाम करते हैं। दम (मनोनिग्रह), दान, दया, क्षमा, शौच, इन्द्रियनिग्रह, अस्तेय (चोरी न करना), सत्य और अहिंसा—ये सभी प्राणियोंके लिये धर्ममें सहायक हैं। जो मनुष्य जहाँ कहीं भी जन्म लेकर सदा आवश्यक कार्योंके लिये उद्यमशील बने रहते हैं, वे सब प्रकारकी भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न हो इस नैर्ऋत्यलोकमें निवास करते हैं। काशी छोड़कर अन्य उत्तम तीर्थोंमें मरे हुए म्लेच्छकोटिके लोग यदि आत्मघाती न हों तो वे इस लोकमें भोगसम्पन्न होकर निवास करते हैं। जो कोई अन्त्यज भी दयाधर्मका अनुसरण करनेवाले और परोपकारपरायण

होते हैं, वे इस लोकमें श्रेष्ठतम होकर निवास करते हैं।

पूर्वकालमें विन्ध्याचलके जंगलोंमें पिंगाक्ष नामसे प्रसिद्ध एक भील रहता था, जो भीलोंका सरदार था। निर्विन्ध्या नदीके तटपर उसका घर था। वह शूरवीर होनेके साथ ही क्रूरकर्मोंसे विमुख था। पथिकोंपर डाका डालनेवाले लुटेरोंको वह दूर रहकर भी मरवा डालता था और व्याघ्र आदि दुष्ट एवं हिंसक जीवोंको प्रयत्नपूर्वक मारता था। यद्यपि व्याधोंके आचार-व्यवहारसे ही उसकी जीविका चलती थी तथापि उस दशामें भी वह जीवोंके प्रति बड़ा दयालु था। वह थके-माँदे बटोहियोंको विश्राम देता, भूखोंको भोजन देकर उनकी भूख मिटाता और नंगे पाँववाले मनुष्योंको जूता देता था। जिनके पास वस्त्र नहीं होता, उन्हें कोमल मृगचर्म देता और दुर्गम मार्ग एवं निर्जन प्रान्तरमें वह पथिकोंके पीछे-पीछे जाकर उन्हें अभीष्ट स्थानपर पहुँचा आता था। उनके देनेपर भी उनसे कभी धन नहीं लेना चाहता और सबको अभयदान करता था। पिंगाक्षके रहनेसे विन्ध्याचलका वह भयानक वन नगर-सा हो गया था। उसके डरसे कोई भी राह चलनेवालोंकी रोक-टोक नहीं करता था।

पिंगाक्षके घरके समीप ही एक-दूसरे गाँवमें उसका चाचा निवास करता था। एक दिन उसने गेरुए वस्त्र धारण करनेवाले तीर्थयात्रियोंके समूहका बड़ा भारी कोलाहल सुना। उन यात्रियोंके पास बहुत धन था। वह नीच व्याध उस धनके लोभसे उन्हें मार डालनेको उद्यत हो गया और आगे जाकर बहुत छिपे हुए उसने उस मार्गको घेर लिया। उस समय पिंगाक्ष भी शिकार खेलनेके लिये उस जंगलमें गया था और रातमें उसी मार्गके समीप टिका हुआ था। यह सम्पूर्ण जगत् भगवान् विश्वनाथसे सुरक्षित होकर कुशलपूर्वक रहता है। अतः विद्वान् पुरुष कभी किसी भी जीवका अनिष्टचिन्तन न करे। होगा वही जो विधाताने रच रखा है। बुरा चाहनेवालोंको केवल पाप ही हाथ लगेगा। इसलिये आत्मसुखकी इच्छा रखनेवाला पुरुष किसीका बुरा न सोचे। यदि कुछ सोचना ही हो तो मोक्षके उपायका चिन्तन करे और किसी बात का नहीं *।

तदनन्तर जब रात बीतने लगी और प्रातःकाल निकट आ गया, उस समय बड़ा भारी कोलाहल मचा। एक ओरसे आवाज आयी—'योद्धाओ! सबको मार डालो, नीचे गिरा दो और नंगे करके तलाशी लो।' दूसरी ओरसे करुणाभरी पुकार सुनायी पड़ी—'सिपाहियो! मत मारो, रक्षा करो, हम तीर्थयात्री हैं। हमारे पास जो कुछ है, उसे बिना परिश्रमके लूट लो और ले जाओ। हम अनाथ बटोही हैं, भगवान् विश्वनाथके उपासक हैं और उन्हींसे सनाथ हैं। पिंगाक्षके विश्वाससे हम सदा इस मार्गपर निर्भय होकर आया-जाया करते हैं, किंतु आज वह भी यहाँसे बहुत दूर है।'

तीर्थयात्रियोंकी यह बात सुनकर पिंगाक्ष दूरसे ही 'मत डरो, मत डरो' की रट लगाता हुआ सहसा वहाँ आ पहुँचा और बोला—'यह कौन दुराचारी है, जो मुझ पिंगाक्षके जीते-जी मेरे प्राणोंके समान प्यारे पथिकोंको लूटना चाहता है।' उसका यह वचन सुनकर उसके पापी पितृव्य तारक्षने क्रोधपूर्वक अपने सेवकोंको आज्ञा दी—'पहले इसीको मार डालो, उसके बाद इन साधु यात्रियोंको लूटना।' यह सुनकर वे सभी दुराचारी भील मिलकर अकेले पिंगाक्षके साथ युद्ध करने लगे। किसी-किसी तरह उन सबका सामना करता हुआ पिंगाक्ष यात्रियोंको अपने घरके समीपतक ले गया। इसी बीचमें विरोधियोंके बाणोंसे उसके धनुष-बाण और कवच सभी कट गये। वे यात्री भी निर्भय होकर उसकी बस्तीमें पहुँच गये और उसने दूसरोंकी रक्षाके लिये लड़ते-लड़ते प्राण त्याग दिये। मरते समय उसके मनमें यह अभिलाषा थी कि यदि

* तस्मादात्मसुखं प्रेप्सुरिष्टानिष्टं न चिन्तयेत्। चिन्तयेच्चेत्तदा चिन्त्यो मोक्षोपायो न चेतरः॥ (स्क० पु०, का० पू० १२। ३१)

में समर्थ होता तो इन सबको मार गिराता। अन्तकालमें जैसी मति होती है, उसके अनुरूप ही गति होती है। अत: वह नैर्ऋत्यलोकमें राक्षसोंका राजा एवं दिक्पाल हुआ। इस प्रकार हम दोनोंने तुम्हें निर्ऋतिके स्वरूपका परिचय दिया है।

नैर्ऋत्यपुरीसे उत्तर दिशामें वह वरुणदेवका अद्भुत लोक है। जो लोग न्यायोपार्जित धनसे कुआँ-बावली और तालाब बनवाते हैं, वे वरुणलोकमें वरुणके ही समान कान्तिमान् होकर सम्मानपूर्वक निवास करते हैं। जो निर्जल प्रदेशमें जल देते, दूसरोंके सन्ताप दूर करते और याचकोंको विचित्र छाता एवं कमण्डलु देते हैं, जो नाना प्रकारकी खान-पानकी सामग्रियोंसे युक्त पौंसला बनवाते, सुगन्धित जलसे भरे हुए धर्मघट दान करते, जो पीपलके वृक्षको सींचते और मार्गमें वृक्ष लगाते हैं, यात्रियोंके ठहरनेके लिये धर्मशालाएँ बनवाते, थके-माँदे पथिकोंका कष्ट दूर करते, गरमीमें मोरपंख आदिके बने हुए पंखे बाँटते और यात्रियोंका पसीना दूर करते हैं तथा जो पुण्यात्मा मानव दुराचारी मनुष्योंद्वारा गलेमें फाँसी लगाये हुए जीवोंको बन्धनसे मुक्त करते हैं, वे निर्भय होकर वरुण देवताके इस लोकमें निवास करते हैं। ये वरुणदेव ही सम्पूर्ण जलाशयों तथा जलजन्तुओंके एकमात्र स्वामी और सब कर्मोंके साक्षी हैं। इस प्रकार यह वरुणलोकका स्वरूप बताया गया है। इस प्रसंगको सुनकर मनुष्य कहीं भी दुर्मृत्युके कष्टसे पीड़ित नहीं होता है।

वायु, कुबेर, ईशान और चन्द्रमाके लोकोंकी स्थितिका वर्णन

भगवान्‌के दोनों पार्षद कहते हैं—ब्रह्मन्! वरुणकी पुरीसे उत्तर भागमें इस पुण्यमयी पुरीको देखो। यह वायुदेवकी गन्धवती नामवाली नगरी है। इसमें सम्पूर्ण जगत्‌के प्राणस्वरूप प्रभंजन (वायु) नामक दिक्पाल निवास करते हैं। इन्होंने महादेवजीकी आराधना करके दिक्पालका पद प्राप्त किया है। पहलेकी बात है। कश्यपजीके पुत्र पूतात्माने महादेवजीकी राजधानी काशीपुरीमें दस लाख वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की। उन्होंने वहाँ पवनेश्वर नामक परम पवित्र महान् शिवजीके स्वरूपकी स्थापना की, जिसके दर्शनमात्रसे मनुष्यका अन्त:करण परम पवित्र हो जाता है और वह पापकी केंचुल त्यागकर वायुदेवके पवित्र नगरमें निवास करता है। तदनन्तर पूतात्माकी घोर तपस्यासे प्रसन्न हो तपका फल देनेवाले ज्योतिस्वरूप भगवान् महेश्वर उस मूर्तिसे प्रकट हुए और बोले—'सुव्रत! उठो, उठो। मनोवांछित वर माँगो।'

पूतात्मा बोला—देवाधिदेव महादेव! आप देवताओंको अभयदान देनेवाले हैं। प्रभो! वेद भी नेति-नेति कहते हुए आपके सम्बन्धमें यह नहीं जानते कि आपका स्वरूप कैसा है? फिर मेरे-जैसा मनुष्य आपकी स्तुति करनेमें कैसे समर्थ हो सकता है? योगी भी आपके तत्त्वको वास्तवमें नहीं उपलब्ध कर पाते। आप एक होकर भी शिव और शक्तिके भेदसे दो स्वरूपोंमें अभिव्यक्त हुए हैं। आप ज्ञानस्वरूप भगवान् हैं और आपकी इच्छा ही शक्तिस्वरूपा है। शिव और शक्तिरूप आप दोनोंके द्वारा लीलापूर्वक क्रियाशक्ति उत्पन्न की गयी है, जिसके द्वारा इस सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि की गयी है। आप ज्ञानशक्ति महेश्वर हैं और उमादेवी इच्छाशक्ति मानी गयी हैं। यह सम्पूर्ण जगत् क्रियाशक्तिमय है और आप इसके कारण हैं। नाथ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है।

पूतात्माके ऐसा कहनेपर सर्वशक्तिमान् देवेश्वर शिवने उन्हें अपना स्वरूप प्रदान किया और दिक्पालके पदपर प्रतिष्ठित किया। तत्पश्चात् इस प्रकार कहा—'तुम सब तत्त्वोंके ज्ञाता और सबकी आयुरूप होओगे। जो मनुष्य तुम्हारे द्वारा स्थापित की हुई मेरी इस दिव्य मूर्तिका यहाँ दर्शन करेंगे, वे तुम्हारे लोकमें सब भोगोंसे सम्पन्न हो सुखके भागी

होंगे।' इस प्रकार वरदान देकर महादेवजी उस मूर्तिमें विलीन हो गये।

ब्रह्मन्! गन्धवतीपुरीके स्वरूपका निरूपण किया गया। उसके पूर्वभागमें शोभामयी कुबेरकी अलकापुरी है। इसके स्वामी कुबेर अपने भक्तिभावके प्रभावसे भगवान् शिवके सखा हो गये हैं। शिवकी पूजाके बलसे वे पद्म आदि नवनिधियोंके दाता और भोक्ता हैं।

अलकापुरीके पूर्वभागमें भगवान् शंकरकी ईशानपुरी है, जो महान् अभ्युदयसे सदा सुशोभित है। उसके भीतर भगवान् शंकरके तपस्वी भक्त निवास करते हैं। जो भगवान् शिवके चिन्तनमें संलग्न रहते, शिवसम्बन्धी व्रतोंका पालन करते, अपने समस्त कर्म भगवान् शिवको अर्पित कर देते और सदा शिवकी पूजामें तत्पर रहते तथा जो स्वर्गभोगकी अभिलाषा लेकर भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये तप करते हैं, वे सब मानव रुद्ररूप धारण करके इस परम रमणीय रुद्रपुरीमें निवास करते हैं। इस पुरीमें अजैकपात् और अहिर्बुध्न्य आदि ग्यारह रुद्र अधिपतिरूपसे हाथमें त्रिशूल लिये विराजमान रहते हैं। ये देवद्रोहियोंसे आठ पुरियोंकी रक्षा करते और शिवभक्तोंको सदैव वर देते हैं। इन्होंने भी काशीपुरीमें जाकर शुभदायक ईशानेश्वरकी स्थापना करके बड़ी भारी तपस्या की है और भगवान् ईशानेश्वरके प्रसादसे ईशानकोणमें ये दिक्पाल हुए हैं। ये ग्यारहों रुद्र जटाके मुकुटसे मण्डित हो एक साथ चलते हैं।

इस प्रकार स्वर्गमार्गमें विष्णुपार्षदोंकी कही हुई कथा सुनते हुए शिवशर्माने आगे जाकर दिनमें भी चन्द्रमाकी चटकीली चाँदनी देखी, जो सब इन्द्रियोंके साथ-साथ मनको परम आह्लाद प्रदान करती थी। उसे देखकर शिवशर्माने पूछा— 'भगवत्पार्षदो! वह कौन-सा लोक है?'

दोनों पार्षदोंने कहा—महाभाग! यह चन्द्रमाका लोक है, जिसकी अमृतकी वर्षा करनेवाली किरणोंसे यह सम्पूर्ण जगत् परिपुष्ट होता है। चन्द्रमाके पिता महर्षि अत्रि हैं, जो पूर्वकालमें प्रजासर्गकी इच्छा रखनेवाले ब्रह्माजीके मनसे प्रकट हुए थे। हमने सुना है, मुनिवर अत्रिने प्राचीन कालमें तीन हजार दिव्य वर्षोंतक लोकोत्तर तपस्या की है। उन्हींके पुत्र चन्द्रमा हैं। स्वयं ब्रह्माजीने उनका पालन-पोषण किया है। तेज प्राप्त करके भगवान् चन्द्रमाने बहुत वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की। परम पावन अविमुक्त क्षेत्र (काशीधाम)-में जाकर अपने नामसे उन्होंने चन्द्रेश्वर नामक मूर्तिकी स्थापना की। इससे वे पिनाकधारी देवाधिदेव श्रीविश्वनाथजीकी कृपासे बीज, ओषधि, जल और ब्राह्मणोंके राजा हुए। वहाँ उन्होंने अमृतोद नामसे प्रसिद्ध कूपका निर्माण कराया, जिसके जलको पीने और जिसमें स्नान करनेसे मनुष्य अज्ञानसे मुक्त हो जाता है। देवदेव महादेवने प्रसन्न होकर जगत्को जीवन प्रदान करनेवाली चन्द्रमाकी एक उत्तम कलाको लेकर अपने मस्तकपर धारण किया। तत्पश्चात् दक्षके शापसे मासकी समाप्तिपर अमावास्या तिथिको क्षीण होनेपर भी केवल उसी कलाके द्वारा पुनः वे वृद्धि एवं पुष्टिको प्राप्त होते हैं।

जब सोमवारको अमावास्या तिथि हो, तब सज्जन पुरुषोंको आदरपूर्वक चतुर्दशी तिथिमें उपवास करना चाहिये। नित्यकर्म करके त्रयोदशी तिथिमें शनिप्रदोषयोगमें चन्द्रेश्वरलिंगका पूजन करके त्रयोदशीमें नक्त व्रत करे और उसीमें नियम ग्रहण करके चतुर्दशीको उपवास एवं रात्रि-जागरण करे। प्रातःकाल सोमवती अमावास्याके योगमें चन्द्रोदतीर्थके जलसे स्नान करे। तत्पश्चात् विधिपूर्वक सन्ध्योपासना करके तर्पण आदि कर्म करे। फिर चन्द्रोदतीर्थके समीप ही शास्त्रोक्त विधिके अनुसार श्राद्ध करे। आवाहन और अर्घ्यदान कर्मके बिना ही यत्नपूर्वक पिण्डदान दे। वसु, रुद्र और आदित्यस्वरूप पिता, पितामह और प्रपितामहको क्रमशः पिण्ड देकर मातामह, प्रमातामह तथा वृद्धप्रमातामहके उद्देश्यसे पिण्ड दे। तदनन्तर अपने गोत्रमें उत्पन्न हुए अन्य लोगोंको एवं गुरु, श्वशुर और बन्धुजनोंको भी उनके नाम लेकर पिण्ड देवे। जो श्रद्धापूर्वक चन्द्रोदतीर्थमें पिण्डदान करता है, वह अपने

सम्पूर्ण पितरोंका उद्धार कर देता है। जैसे गयामें पिण्ड देनेसे पितर तृप्त होते हैं, उसी प्रकार इस चन्द्रोदकुण्डके समीप श्राद्ध करनेसे भी उनकी तृप्ति होती है। काशीक्षेत्रमें निवास करनेवाले लोगोंको तारकमन्त्रके ज्ञानकी प्राप्तिके लिये चैत्रकी महापूर्णिमाको यहाँ यात्रा करनी चाहिये। यह यात्रा इस क्षेत्रके निवासमें आनेवाले विघ्नका निवारण करनेवाली है। काशीसे अन्यत्र निवास करनेवाला पुरुष भी यदि यहाँ आकर चन्द्रेश्वरकी भलीभाँति पूजा कर ले तो वह पापराशिका भेदन करके चन्द्रलोकको प्राप्त होगा। सोमवारका व्रत करनेवाले और सोमयागमें सोमरस पीनेवाले मनुष्य चन्द्रमाके समान प्रकाशमान विमानद्वारा जाकर सोमलोकमें ही निवास करते हैं।

अगस्त्यजी कहते हैं—प्रिये! भगवान्‌के दोनों दिव्य पार्षद उस दिव्य मार्गमें शिवशर्माको यह कल्याणकारिणी कथा सुनाते हुए परम उज्ज्वल नक्षत्रलोकमें जा पहुँचे।

बुधलोक और शुक्रलोककी स्थिति, बुध और शुक्रके द्वारा भगवान् शिवकी स्तुति और वरदान-प्राप्ति

अगस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर शिवशर्माको बुधका लोक दृष्टिगोचर हुआ। तब उन्होंने पूछा—'भगवत्पार्षदो! यह अनुपम लोक किसका है?'

भगवान्‌के पार्षदोंने कहा—शिवशर्मन्! यह चन्द्रमाके पुत्र बुधका लोक है। बुध अपने पिता चन्द्रदेवकी आज्ञा लेकर काशीपुरीमें गये। वहाँ उन्होंने अपने नामसे बुधेश्वरको स्थापित किया और हृदयमें भगवान् शिवका ध्यान करते हुए दस हजार वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की। तब सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी विश्वभावन भगवान् विश्वनाथ बुधेश्वर नामसे प्रकट हुए। उनका स्वरूप ज्योतिर्मय था। वे प्रसन्नचित्त होकर बोले—'बुध! तुम वर माँगो।'

बुध बोले—पूतात्मा वायुरूप! आपको नमस्कार है (अथवा पवित्र अन्तःकरणवाले आप परमेश्वरको नमस्कार है)। ज्योतिःस्वरूप महेश्वर! आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्व आपका ही स्वरूप है, आपको नमस्कार है। आप रूपसे अतीत, निराकार हैं, आपको नमस्कार है। सबकी पीड़ाओंका नाश करनेवाले आपको नमस्कार है। शरणागतोंके लिये कल्याणरूप आपको नमस्कार है। आप सबके ज्ञाता और सर्वस्रष्टा हैं, आपको नमस्कार है। आप परम दयालु हैं, आपको नमस्कार है। भक्तिभावसे आप प्राप्त होने योग्य हैं, आपको नमस्कार है। आप तपस्याओंका फल देनेवाले और तपःस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। शम्भो! शिव! शिवाकान्त! शान्त! श्रीकण्ठ! शूलपाणे! चन्द्रशेखर! सर्वेश! शंकर! ईश्वर! धूर्जटे! पिनाकपाणे! गिरीश! शितिकण्ठ! सदाशिव! महादेव! आपको नमस्कार है। देवदेव! आपको नमस्कार है। स्तुतिप्रिय महेश्वर! मैं स्तुति करना नहीं जानता। आपके युगल चरणारविन्दोंमें मेरी निश्चल भक्ति हो।

उनकी स्तुतिसे प्रसन्न हो भगवान् महेश्वर बोले—महाभाग! तुम्हारा स्थान नक्षत्रलोकसे ऊपर होगा और तुम समस्त ग्रहोंमें अधिक सम्मान प्राप्त करोगे। तुम्हारे द्वारा स्थापित की हुई यह मेरी मूर्ति सबको बुद्धि देनेवाली, दुर्बुद्धि हरनेवाली और तुम्हारे लोकमें निवास देनेवाली है। ऐसा कहकर भगवान् शंकर वहीं अन्तर्धान हो गये। महादेवजीका प्रसाद प्राप्त करके बुध पुनः स्वर्गलोकमें लौट आये।

काशीमें बुधेश्वरकी पूजासे उत्तम बुद्धि पाकर मनुष्य अगाध संसारसागरमें प्रवेश करते हुए डूब नहीं सकता और अन्तमें वह बुधलोकमें निवास करता है। चन्द्रेश्वरके पूर्वभागमें बुधेश्वरका दर्शन

करके मनुष्य मृत्युकालमें भी कभी बुद्धिसे हीन नहीं होता।

महामते शिवशर्मन्! बुधलोकसे ऊपर यह परम अद्भुत शुक्रलोक है। यहाँ दानवों और दैत्योंके गुरु शुक्राचार्य निवास करते हैं, जिन्होंने सहस्र वर्षोंतक तपस्या करके महादेवजीसे मृत्युसंजीवनी नामवाली महाविद्या प्राप्त की थी। इस दुर्लभ विद्याको देवगुरु बृहस्पति भी नहीं जानते। भृगुवंशी शुक्रने अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज और जरायुज—इन चार प्रकारके प्राणियोंको मुक्ति प्रदान करनेवाली काशीपुरीमें जाकर एक शिवमूर्तिको स्थापित किया और बिल्वपत्र आदि सहस्रों प्रकारके पत्तों और पुष्पोंसे उसका भलीभाँति पूजन किया। चन्दन और यक्षकर्दमसे लेपन किया। सुगन्धित उबटन लगाया, नृत्य और गीतसे भी भगवान्‌को रिझाया तथा भाँति-भाँतिकी भेंट-सामग्री समर्पित करके सहस्रनाम आदि स्तोत्रोंसे भगवान् शंकरका स्तवन किया। इस प्रकार पाँच हजार वर्षोंतक शुक्राचार्यने भगवान् शिवकी भलीभाँति आराधना की। तत्पश्चात् इन्द्रियोंसहित चित्तके चांचल्य (विक्षेप)-रूपी महान् मलको ध्यानरूपी जलसे धोकर अपने निर्मल किये हुए चित्तरत्नको उन्होंने पिनाकपाणि भगवान् शिवकी सेवामें समर्पित कर दिया। तब भगवान् शंकर प्रसन्न हो सहस्रों सूर्योंसे भी अधिक तेजस्वी रूप धारण कर उस मूर्तिसे प्रकट हुए और बोले—'भृगुनन्दन! मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो।'

भगवान् शंकरका वचन सुनकर शुक्राचार्यने दोनों हाथ जोड़ जय-जयकार करते हुए उनका इस प्रकार स्तवन किया। 'सूर्यस्वरूप जगदीश्वर! आप अपनी प्रभासे निशाचरोंको प्रिय लगनेवाले अन्धकारको तिरस्कृत करके उसे सर्वथा विलुप्त कर देते और तीनों लोकोंके हितके लिये आकाशमें देदीप्यमान होते हैं, अतः आपको नमस्कार है। हे चन्द्रस्वरूप शिव! आप अमृतमयी किरणोंसे परिपूर्ण हैं, समस्त अन्धकारको दूर भगानेवाले और परम सुन्दर हैं। आप संसारमें निरन्तर असीम एवं महान् प्रकाश फैलाकर कुमुद पुष्पोंको प्रमोद देते तथा संसारके प्राणियोंके लिये आनन्दका समुद्र उड़ेल देते हैं। इतना ही नहीं, आप समुद्रको भी आनन्दसे परिपूर्ण करते हैं, अतः आपको नमस्कार है। हे वायुरूप परमेश्वर! आप नम्रता एवं विनयसे रहित चराचर जगत्‌को भग्न करनेवाले हैं, सब जीवोंको अपनी प्राणशक्ति देकर बढ़ानेवाले हैं, वायुभक्षी सर्पोंको सन्तुष्ट करनेवाले हैं, सर्वव्यापी! आप सदा पावन पथपर

चलते हुए सबके उपास्य हैं। सम्पूर्ण जगत्‌को जीवन प्रदान करनेवाले देव! आपके बिना इस संसारमें कौन जीवित रह सकता है, आपको नमस्कार है। हे अग्निस्वरूप महेश्वर! आप सम्पूर्ण जगत्‌के एकमात्र पवित्र करनेवाले और प्रणतजनोंके रक्षक हैं, अमृतब्रह्मस्वरूप हैं। सम्पूर्ण विश्वके अन्तरात्मा पावक! क्या आपकी पावनशक्तिके बिना यह आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक जगत् कभी जीवित रह सकता है? कदापि नहीं। आपको किया हुआ नमस्कार प्रतिक्षण शान्ति देनेवाला होता है। जलस्वरूप परमेश्वर! आप सम्पूर्ण जगत्‌में परम पवित्र हैं,

आपका उत्तम चरित्र परम विचित्र है। हे विश्वनाथ! आप इस विचित्र जगत्‌को जलपान और स्नानकी सुविधा देकर निश्चय ही बाहर-भीतरसे पवित्र एवं निर्मल कर देते हैं, अतः आपको मैं नमस्कार करता हूँ। हे आकाशस्वरूप महादेव! हे ईश्वर! आपके द्वारा बाहर और भीतरसे अवकाश मिलनेके कारण यह सम्पूर्ण विश्व नित्य विकसित होता रहता है। सदा सबपर दया रखनेवाले प्रभो! आपसे ही यह जगत् जीवन धारण करता है और आपमें ही स्वभावतः इसका लय होता है, अतः मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे पृथ्वीरूप परमेश्वर! हे विभो! हे विश्वनाथ! हे अज्ञानान्धकारका नाश करनेवाले शिव! इस सम्पूर्ण विश्वको यहाँ आपके सिवा दूसरा कौन धारण करता है? गिरिराजनन्दिनी उमा और नागराज वासुकि आपके आभूषण हैं, आप परात्पर हैं। शान्ति, क्षमा आदि गुणोंसे विभूषित देवताओंमें आपसे बढ़कर दूसरा कोई स्तवन करने योग्य नहीं है। अथवा शम, दम आदि साधनोंसे सम्पन्न संत-महात्माओंके द्वारा स्तवन करने योग्य आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है, अतः मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे आत्मस्वरूप शिव! हे अज्ञानका अपहरण करनेवाले हर! सबके अन्तरात्मामें निवास करनेवाले परमात्मस्वरूप! अष्टमूर्ते! आपकी इन रूप-परम्पराओं— सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश और आत्मा— इन आठ मूर्तियोंसे यह समस्त चराचर जगत् व्याप्त है। आप प्रत्येक रूपमें व्यापक होनेके कारण तदनुरूप प्रतीत होते हैं, अतः मैं सदा आपको नमस्कार करता हूँ। प्रभो! प्रणतजनोंको प्राप्त होनेवाले सम्पूर्ण अर्थसमूहोंमें आप ही परमार्थस्वरूप हैं। भगवती उमा आपके चरणारविन्दोंकी वन्दना करती हैं। आप वन्दनीय पुरुषोंके द्वारा भी अतिशय वन्दनीय हैं। आप ही इस विश्वके उत्पादक हैं। आपकी मूर्ति सम्पूर्ण विश्वके प्राणियोंका हित साधन करनेवाली है। आपकी पूर्वोक्त आठ मूर्तियोंद्वारा यह विशाल जगत् व्याप्त है, अतः मैं आपको नमस्कार करता हूँ।'

भृगुनन्दन शुक्रने अष्टमूर्त्यष्टक स्तोत्रसे इस प्रकार अपने इष्टदेव शिवकी स्तुति करके धरतीपर मस्तक टेककर उन्हें बार-बार प्रणाम किया। तब महादेवजीने उन्हें अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर उठाया और इस प्रकार कहा—'ब्रह्मन्! मेरे द्वारा तपोबलसे प्रकट की हुई जो मेरी मृतसंजीवनी नामक निर्मल विद्या है, उस मन्त्ररूपा विद्याका ज्ञान आज मैं तुम्हें कराऊँगा। उस विद्याके लिये तुम्हारी योग्यता है। तुम जिस-जिस व्यक्तिके लिये इस विद्याका जप करोगे, वह-वह निश्चय ही जीवित हो उठेगा। आकाशमें तुम्हारा तेज सब नक्षत्रोंसे भी अधिक प्रकाशित होगा। तुम ग्रहोंमें श्रेष्ठ माने जाओगे। तुम्हारे उदय होनेपर ही विवाह आदि शुभ एवं धार्मिक कार्य सफल होंगे। तुम्हारे द्वारा स्थापित किये हुए इस शुक्रेश्वरका जो मनुष्य पूजन करेंगे, उन्हें सिद्धि प्राप्त होगी। जो एक वर्षतक प्रति शुक्रवारको केवल रात्रिमें भोजन करनेका नियम लेंगे और तुम्हारे दिनमें शुक्रकूपमें स्नान करके तर्पण आदि कर्म करनेके पश्चात् शुक्रेश्वरकी पूजा करेंगे, वे मनुष्य अधिक वीर्यवान्, पुत्रवान्, सौभाग्यशाली एवं सुखी होंगे।' यह वरदान देकर महादेवजी वहीं अन्तर्धान हो गये।

जो शुक्रेश्वरके भक्त होते हैं, वे शुक्रलोकमें निवास करते हैं। शुक्रेश्वर विश्वनाथके दक्षिण भागमें है। उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य शुक्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। महामते! इस प्रकार तुम्हें शुक्रलोककी स्थिति बतायी गयी।

अगस्त्यजी कहते हैं—प्रिये! इस प्रकार शुक्रलोककी कथा सुनते हुए शिवशर्माने अपने समीप मंगललोकको देखा।

मंगल, बृहस्पति और शनिके लोकोंकी स्थिति

शिवशर्माने पूछा—यह किसका लोक है?

भगवत्पार्षदोंने कहा—शिवशर्मन्! यह मंगलग्रहका लोक है। मंगलकी उत्पत्ति पृथ्वीसे हुई है, पृथ्वीमाताने ही उनका स्नेहपूर्वक पालन-पोषण किया है। जहाँ जगत्का हित करनेवाली असी और वरणा नामक दो शोभायमान नदियाँ उत्तरवाहिनी गंगासे मिली हैं, जहाँ मृत्युको प्राप्त हुए देहधारी जीव भगवान् विश्वनाथका महान् अनुग्रह प्राप्त करके अमृतमय ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं, उस काशीपुरीमें जाकर मंगलने अपने नामसे अंगारकेश्वरको स्थापित किया और वहाँ वे तबतक तपस्या करते रहे जबतक कि उनके शरीरसे प्रज्वलित अंगारके समान तेज नहीं निकला। अंगारके समान तेज प्रकट होनेसे वे सब लोकोंमें अंगारक नामसे विख्यात हुए। तदनन्तर उनसे सन्तुष्ट हुए महादेवजीने उन्हें महान् ग्रहका पद प्रदान किया। जो मनुष्य अंगारकचतुर्थीको उत्तरवाहिनी गंगाके जलमें स्नान करके अंगारकेश्वरकी पूजा और उन्हें नमस्कार करेंगे, उन्हें कभी कहीं भी ग्रहजनित पीड़ा नहीं होगी।

अगस्त्यजी कहते हैं—इस प्रकार सुन्दर एवं पुण्यमयी कथा कहते हुए भगवत्पार्षदोंको देवगुरु बृहस्पतिकी पुरी दृष्टिगोचर हुई।

शिवशर्माने पूछा—यह किसकी पुरी है?

भगवत्पार्षदोंने कहा—सखे! प्रजापति अंगिराके पुत्र देवपूज्य बृहस्पति हुए। वे अपनी बुद्धिसे देवताओं और विद्वानोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं। शान्त और जितेन्द्रिय हैं, उन्होंने क्रोधको जीत लिया है। उनकी वाणी मधुर और अन्तःकरण निर्मल है। वे वेदों और वेदार्थोंके तत्त्वज्ञ, समस्त कलाओंमें कुशल, निर्मल, समस्त शास्त्रोंमें पारंगत तथा नीतिविद्याके विशेषज्ञ हैं। वे हितका उपदेश करनेवाले, हितकारक, रूपवान्, सुशील, गुणवान्, देश-कालको जाननेवाले, समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और गुरुजनोंके प्रति भक्ति रखनेवाले हैं। उन्होंने काशीमें तपस्वीजनोंकी वृत्तिका आश्रय लेकर और शिवजीकी मूर्तिकी स्थापना करके बड़ी भारी तपस्या की। तब भगवान् शिव प्रसन्न होकर प्रकट हुए और बोले—'बृहस्पते! वर माँगो।' भगवान् शंकरको अपने सामने उपस्थित देख बृहस्पतिजी हर्षमें भर गये और इस प्रकार स्तुति करने लगे—'चन्द्रमाके समान गौर कान्तिवाले, शान्तस्वरूप शंकर! आपकी जय हो। आप रुचिके अनुकूल मनोहर पदार्थों एवं चारों पुरुषार्थोंको देनेवाले हैं। सर्वस्वरूप, सब कुछ देनेवाले तथा नित्य शुद्ध हैं। पवित्र भक्तोंद्वारा शुद्धभावसे दी हुई महती उपहार-सामग्रीको ग्रहण करते हैं। भक्तजनोंपर आयी हुई घोर सन्ताप-परम्पराका आप नाश करनेवाले हैं। आपने सबके हृदयाकाशको व्याप्त कर रखा है। प्रणतजनोंको आप मनोवांछित वर देनेवाले हैं। शरणागत भक्तोंके पापरूपी महान् वनको जलानेके लिये दावानलस्वरूप हैं। अपने शरीरसे भाँति-भाँतिकी लीलाएँ करते रहते हैं। आपका श्रीअंग परम सुन्दर है। आप कामदेवके बाणोंको सुखा देनेवाले हैं। धैर्यनिधे! आपकी जय हो। आप मृत्यु आदि विकारोंसे सर्वथा रहित हैं तथा अपने चरणोंमें प्रणाम करनेवाले भक्तजनोंको भी मृत्यु आदि विकारोंसे रहित कर देते हैं। पुण्यात्मा पुरुषोंका मनोरथ पूर्ण करते और सर्पोंको आभूषणरूपमें धारण करते हैं। आपका वामांग भाग गिरिराजनन्दिनी उमासे व्याप्त है। आपने अपने सर्वव्यापी स्वरूपसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रखा है। तीनों लोक आपके ही स्वरूप हैं, फिर भी आप इन सभी

रूपोंसे परे हैं। आपकी दृष्टि बड़ी सुन्दर है। आप अपने नेत्रोंके खोलने-मीचनेसे जगत्‌की सृष्टि और प्रलय करनेवाले हैं। आपने ही अग्निदेवको प्रकट किया है। जगत्‌को उत्पन्न करनेवाले भूतनाथ! एकमात्र आप ही प्रमथगणोंके पालक और स्वामी हैं। अपनी शरणमें आये हुए पतितजनोंपर भी आप अपना वरद हस्त फैलाते रहते हैं। आप सम्पूर्ण भूतलमें फैले हुए आवरणका निवारण करनेवाले तथा प्रणवनादरूपी सुधाधौलिगृहमें निवास करनेवाले हैं। आपने चन्द्रमाको अपने ललाटमें धारण कर रखा है। गिरिराजकुमारी पार्वतीके द्वारा सर्वथा सन्तुष्ट रहनेवाले शिव! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। शिव! देव! गिरीश! महेश! विभो! आप वैभव प्रदान करनेवाले और कैलास पर्वतपर सोनेवाले हैं। पार्वतीवल्लभ! आप सबको सुख देनेवाले हैं। चन्द्रधर! आप भक्तिका विघात करनेवाले दुष्टोंको कठोर दण्ड देनेवाले हैं। तीनों लोकोंको सुखी बनाइये। सबकी पीड़ा हरनेवाले महादेव! मैं कालसे भी नहीं डरता। अमोघमते! आप शीघ्र मेरी पापराशिका विनाश कीजिये। शिवके चरणारविन्दोंमें नमस्कार करनेके सिवा दूसरी किसी विचारधाराको मैं जीवोंके लिये कल्याणकारी नहीं मानता, अतः आपके चरणोंमें ही मस्तक झुकाता हूँ। इस सम्पूर्ण विशाल जगत्‌में भगवान् शिवको सन्तुष्ट करना ही सब पापोंका नाशक तथा परम गुणकारी है। हे ईश! आप त्रिगुणमय प्रपंचसे अतीत, नागराज वासुकिका महान् कंगन धारण करनेवाले तथा प्रलयकालमें सबका विनाश करनेवाले हैं, अतः मैं आपको नमस्कार करता हूँ।'

इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति करके बृहस्पतिजी मौन हो गये। इस स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर महादेवजीने कहा—'ब्रह्मन्! तुमने बृहत् तप किया है, इसलिये बृहत् अर्थात् बड़े-बड़े देवताओंके पति (पालक) बने रहो। तुम ग्रहोंमें बृहस्पति नामसे पूजित होओ। तीन वर्षोंतक तीनों समय इस स्तोत्रका पाठ करनेसे जिस पुरुषके प्रति सरस्वती उदित हों, उसकी वाणी संस्कृत होगी*। इस स्तोत्रके पाठसे किसीकी दुराचारमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। तुम्हारे द्वारा स्थापित की हुई इस मूर्तिकी पूजा करके इस स्तोत्रका पाठ करनेवाला पुरुष मनोवांछित फल प्राप्त करेगा। तुम्हारे द्वारा स्थापित यह मूर्ति काशीमें बृहस्पतीश्वरके नामसे विख्यात होगी। बृहस्पतिवार और पुष्य नक्षत्रके योगमें इसकी पूजा करके मनुष्य जो कार्य प्रारम्भ करेंगे, उसमें उन्हें सिद्धि प्राप्त होगी। चन्द्रेश्वरके दक्षिण और वीरेश्वरसे नैर्ऋत्यकोणमें स्थित बृहस्पतीश्वरका पूजन करके मनुष्य बृहस्पतिलोकमें सम्मानित होगा।'

अगस्त्यजी कहते हैं—लोपामुद्रे! बृहस्पति-लोकके ऊपर जाकर शिवशर्माने शनिका लोक देखा और उसके विषयमें प्रश्न किया। तब दोनों भगवत्पार्षदोंने कहा—'ब्रह्मन्! यह सूर्यके पुत्र शनिकी पुरी है। भगवान् सूर्यसे सवर्णाके गर्भसे शनैश्चरकी उत्पत्ति हुई। शनैश्चरने देववन्दित काशीपुरीमें जाकर शिवलिंग स्थापित किया और उसके समीप बड़ी भारी तपस्या करके शिवपूजनके प्रभावसे इस शनिलोकको तथा ग्रहकी पदवीको प्राप्त किया। काशीमें परम सुन्दर शनैश्चरेश्वरका दर्शन करके शनिवारको उनकी पूजा करनेसे शनैश्चरकी बाधा नहीं होती है। विश्वनाथजीसे दक्षिण और शुक्रेश्वरसे उत्तर भागमें शनैश्चरेश्वरकी पूजा करके मनुष्य इस शनिलोकमें आनन्दका भागी होता है।'

---

* अस्य स्तोत्रस्य पठनादपि वागुदियाच्च वम्। तस्य स्यात्संस्कृता वाणी त्रिभिर्वर्षैस्त्रिकालतः॥

(स्क० पु०, का० पू० १७। ४६)

सप्तर्षिलोक और ध्रुवलोककी स्थिति, ध्रुवकी तपस्या और वरदान-प्राप्ति

अगस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर शिवशर्माने सप्तर्षिमण्डलको अपने नेत्रोंसे देखा और पूछा—'यह अनुपम तेजोमय शुभ लोक किसका है?'

दोनों भगवत्पार्षदोंने कहा—ब्रह्मन्! इस लोकमें सदा निर्मल अन्तःकरणवाले सप्तर्षि निवास करते हैं। ब्रह्माजीके द्वारा सृष्टिकार्यमें नियुक्त होकर वे यहीं रहते हैं। मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अंगिरा और महाभाग वसिष्ठ—ये ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं। पुराणोंमें ये सात ब्रह्मा निश्चित किये गये हैं। सम्भूति, अनसूया, क्षमा, प्रीति, सन्नति, स्मृति और अरुन्धती—ये क्रमशः इन सात ऋषियोंकी पत्नियाँ हैं, जो लोकमाता कही गयी हैं। इन सप्तर्षियोंने काशीक्षेत्रमें जाकर अपने-अपने नामसे एक-एक शिव-मूर्ति स्थापित की और शिवमें बड़ी भक्ति रखकर अत्यन्त कठोर तपस्या प्रारम्भ की। इनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर भगवान् शंकरने इन्हें प्रजापतिका पद दिया। जो लोग प्रयत्नपूर्वक काशीमें अत्रीश्वर आदि शिव-मूर्तियोंका दर्शन करते हैं, वे उज्ज्वल तेजसे सम्पन्न हो इस प्राजापत्यलोकमें निवास करते हैं। अत्रीश्वर लिंग गोकर्णेश्वरकुण्डके पश्चिम तटपर प्रतिष्ठित है। कर्कोटककुण्डके ईशानकोणमें मरीचिकुण्ड है। वहीं मरीचीश्वर-संज्ञक शिवलिंग प्रतिष्ठित है। पुलहेश्वर और पुलस्त्येश्वर लिंग स्वर्गद्वारके पश्चिम भागमें हैं। आंगिरसेश्वर लिंग हरिकेश वनमें स्थित है। वसिष्ठेश्वर लिंग वरणा नदीके रमणीय तटपर है। क्रत्वीश्वर लिंग भी वहीं है। शुभकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंद्वारा काशीतीर्थमें सेवित होनेपर ये सातों लिंग इहलोक और परलोकमें मनोवांछित फल देते हैं। इस सप्तर्षिलोकमें महापुण्यमयी पतिव्रता एवं परम सुन्दरी वसिष्ठपत्नी अरुन्धती रहती हैं, जिनके स्मरण करनेमात्रसे मनुष्य गंगास्नानका फल पाता है। भगवान् नारायण अरुन्धतीके पातिव्रत्यसे सन्तुष्ट होकर लक्ष्मीजीके सामने प्रसन्नतापूर्वक उनकी चर्चा किया करते हैं और कहते हैं—'कमले! पतिव्रताओंमें अरुन्धतीका अन्तःकरण जैसा शुद्ध है, वैसा कहीं किसीका भी नहीं है। वैसा रूप, वैसा शील-स्वभाव, वैसी कुलीनता, वह कला-कौशल, वह पतिसेवापरायणता, वह माधुर्य, वह गम्भीरता और वह गुरुजनोंको सन्तुष्ट रखनेका भाव जैसा अरुन्धती देवीमें है, वैसा अन्य स्त्रियोंमें कहीं नहीं है। जो वार्तालापके प्रसंगमें अरुन्धतीका नाम भी लेती हैं, वे युवतियाँ संसारमें धन्य हैं, सौभाग्यवती हैं और शुद्ध चित्तवाली हैं।

तदनन्तर शिवशर्माके समक्ष ध्रुवलोक प्राप्त हुआ। उसे देखकर उन्होंने पूछा—'भगवत्पार्षदो! यह कौन लोक है?'

भगवत्पार्षदोंने कहा—ब्रह्मन्! स्वायम्भुव मनुके एक पुत्रका नाम उत्तानपाद था। राजा उत्तानपादके दो पुत्र हुए। रानी सुरुचिके गर्भसे उत्तमका जन्म हुआ था, जो ज्येष्ठ था और सुनीतिके गर्भसे ध्रुव नामक पुत्र हुआ था, जो कनिष्ठ था। एक दिन राजा उत्तानपाद जब राजसभामें बैठे हुए थे, उस समय सुनीतिने अपने पुत्रको वस्त्राभूषणोंसे विभूषित करके राजाकी सेवामें भेजा। विनयशील ध्रुवने धायके बालकोंके साथ वहाँ जाकर महाराज उत्तानपादके चरणोंमें प्रणाम किया और ऊँचे सिंहासनपर बैठे हुए पिताकी गोदमें उत्तम भैयाको बैठा देख बालोचित चपलताके कारण उसने भी पिताकी गोदमें चढ़नेकी चेष्टा की। सुरुचिने ध्रुवको पिताकी गोदमें चढ़नेके लिये उत्सुक देख फटकारते हुए कहा—'ओ अभागिनीके पुत्र! क्या तू महाराजकी गोदमें बैठना चाहता है? इस सिंहासनपर बैठनेके योग्य पुण्य तूने नहीं किया है। यदि तेरा कुछ

पुण्य होता तो तू एक अभागिनी स्त्रीके पेटसे कैसे पैदा होता? मेरे परम सुन्दर उत्तमको देख ले। वह सौभाग्यवतीकी अच्छी कोखसे पैदा हुआ है। इसीलिये वह पृथ्वीपतिके अंकमें सम्मानपूर्वक बैठा हुआ है।'

राजसभाके बीचमें सुरुचिके द्वारा इस प्रकार अपमानित होनेपर ध्रुवने गिरते हुए आँसुओंको रोक लिया और धैर्य धारण करके कुछ भी उत्तर नहीं दिया। राजाने भी उचित-अनुचित कुछ नहीं कहा। वे रानी सुरुचिके वशीभूत थे। कुमार ध्रुव राजाको प्रणाम करके बालकोंके साथ अपने घर लौट गया। सुनीतिने बालकके मुखकी कान्ति देखकर ही ताड़ लिया कि ध्रुवका अपमान हुआ है। उन्होंने बार-बार अपने पुत्रका मस्तक सूँघा और सान्त्वना देकर हृदयसे लगा लिया। एकान्तमें माता सुनीतिको देखकर बालक ध्रुव फूट-फूटकर रोने लगा। माताके नेत्रोंसे भी आँसू बहने लगे।

सुनीतिने समझा-बुझाकर आँचलसे ध्रुवका मुँह पोंछा और कहा—'बेटा! तुम्हारे रोनेका क्या कारण है, बताओ। महाराजके रहते हुए किसने तुम्हारा अपमान किया है?' माताके आग्रहपूर्वक पूछनेपर ध्रुवने कहा—'माँ! मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ। तुम और सुरुचि दोनों ही महाराजकी पत्नी हो, तो भी राजाको केवल सुरुचि क्यों प्यारी है और क्यों तुमपर उनका प्रेम नहीं है? मैं और उत्तम दोनों समानरूपसे राजकुमार हैं, फिर सुरुचिका पुत्र उत्तम क्यों उत्तम है और क्यों मैं अधम हूँ? राजसिंहासन क्यों उत्तमके ही योग्य है और क्यों मेरे योग्य नहीं है?'

ध्रुवका यह वचन सुनकर सुनीतिने लंबी साँस खींचकर कहा—वत्स! सुरुचिने जो कुछ कहा है, सब सत्य है। वह महाराजकी पटरानी है, इसलिये सब रानियोंमें अधिक प्रिय है। तात! उसने दूसरे जन्ममें बड़ा भारी पुण्य किया है। उसी पुण्यकी वृद्धिसे सुरुचिके प्रति राजा अच्छी रुचि रखते हैं। जो मेरी-जैसी अभागिनी स्त्रियाँ हैं, उनमें राजाकी वैसी प्रीति नहीं है। उत्तमने भी महान् पुण्यराशिका उपार्जन किया है, इसीलिये उसने उस पुण्यात्मा स्त्रीकी उत्तम कोखमें निवास किया है और यही कारण है कि वह राजसिंहासनपर बैठनेका अधिकारी माना गया है। महामते! थोड़ी तपस्या करनेके कारण मैं और तुम राजाके समीप पहुँचकर भी राजलक्ष्मीके पात्र नहीं हो सके। बेटा! अपना पूर्वजन्मका कर्म ही मान और अपमानमें कारण होता है, अतः तुम इसके लिये शोक न करो।

ध्रुव बोला—माँ! यदि मैं मनुके कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ, राजा उत्तानपादका पुत्र हूँ और तुम्हारी कोखसे पैदा हुआ हूँ तो मेरी बात सुनो। यदि तपस्या ही सब सम्पत्तियोंका कारण है तो आजतक जो स्थान दूसरोंके लिये दुर्लभ रहा है, उसे भी मैंने प्राप्त कर लिया, ऐसा समझो। माँ! तुम केवल मुझे तपस्याके लिये जानेकी आज्ञा दे दो और अपने आशीर्वादसे मेरा उत्साह बढ़ाओ।

तब सुनीतिने कहा—राजकुमार! तुम्हारी आयु अभी कम है, अतः मैं तुम्हें वनमें जानेकी आज्ञा देनेमें असमर्थ हूँ। तथापि इस समय आज्ञा देती हूँ। तपस्याके लिये तुम्हारे जानेपर मेरे कठोर प्राण

किसी तरह कण्ठमें अटके रहेंगे।

इस प्रकार माताकी आज्ञा पाकर ध्रुवने उनके चरणकमलोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया और वह वहाँसे चल दिया। माताने मार्गमें पुत्रकी रक्षाके लिये शतशः आशीर्वाद दिये। वह तरुणोंके समान पराक्रमी बालक अपने महलसे निकलकर वनमें गया। उस समय अनुकूल वायु चलकर उसे मार्ग दिखा रही थी। वनमें ध्रुवने सप्तर्षियोंको देखा। भोले-भाले असहाय जीवोंका भाग्य सहायक होता है। कहाँ राजकुमार और कहाँ वह घोर जंगल; परंतु जहाँ जिसकी शुभ या अशुभ भवितव्यता होती है, वहाँ उस मनुष्यको वह अपनी रस्सीमें बाँधकर खींच लेती है। मनुष्य अपने बुद्धिविभवसे कुछ और करनेकी चेष्टा करता है, किंतु भावीकी सहायतासे विधाता कुछ और ही कर डालता है। सप्तर्षियोंका दर्शन करके ध्रुव बहुत प्रसन्न हुआ और उनके पास जा हाथ जोड़े हुए प्रणाम करके ललित वाणीमें बोला—'मुनिवरो! आप मुझे राजा उत्तानपादका पुत्र ध्रुव जानें। मैं माता सुनीतिकी कोखसे पैदा हुआ हूँ।' वे सप्तर्षिगण स्वभावसे ही मधुर आकृतिवाले, अतिशय नीतिकुशल, मृदुल, गम्भीरभाषी उस तेजस्वी बालकको देखकर इस प्रकार बोले—'बालक! तू अपने खेदका कारण बता।' उनके सहज स्नेहसे सने हुए वचन सुनकर ध्रुवने कहा—'मुनीश्वरो! मेरी माताने मुझे महाराजकी सेवामें भेजा था। जब मैं वहाँ जाकर उनकी गोदीमें बैठनेको उत्सुक हुआ तब विमाता सुरुचिने मेरा बहुत तिरस्कार किया। उसने अपने पुत्र उत्तमको तो उत्तम बताया और मुझको तथा मेरी माताको धिक्कार देकर अपनी प्रशंसा की। यही मेरे खेदका कारण है।'

बालक ध्रुवकी यह बात सुनकर सप्तर्षि आपसमें एक-दूसरेकी ओर देखकर उसके क्षत्रियस्वभावकी चर्चा करने लगे—'अहो! देखो तो सही इस छोटे-से बालकमें भी अपमान सहन करनेकी शक्ति नहीं।'

ऋषि बोले—वत्स! हमसे तुम्हारा क्या काम है? तुम्हारा कौन-सा मनोरथ है?

ध्रुवने कहा—मुनियो! मेरे सर्वोत्तम बन्धु जो उत्तम हैं, वे पिताजीके दिये श्रेष्ठ राजसिंहासनपर बैठें। मैं आपके द्वारा इतनी ही सहायता चाहता हूँ कि मैं बालक होनेके कारण प्रायः कुछ साधन-भजन नहीं जानता, अतः मेरे लिये आप उसीका उपदेश करें। मैं पिताके दिये हुए सिंहासनको नहीं चाहता, मैं तो अपनी भुजाओंके बलसे उपार्जित उस उत्तम वस्तुको पाना चाहता हूँ, जो मेरे पिताके लिये भी आशातीत हो। जो पिताकी सम्पत्ति भोगनेवाले हैं, वे प्रायः यशके धनी नहीं होते। श्रेष्ठ मनुष्य तो उन्हें जानना चाहिये, जो पितासे भी अधिक उन्नति करके दिखा दें।

इस प्रकार उसके नीतिसे युक्त वचन सुनकर मरीचि आदि मुनियोंने उससे इस प्रकार कहा—

मरीचि बोले—प्रिय वत्स! मैं झूठ नहीं कहता, तुम जिस स्थानको पानेकी बात करते हो, उसे, जिसने भगवान् विष्णुके चरणारविन्दोंकी आराधना नहीं की है, वह पुरुष कैसे पा सकता है?

अत्रिने कहा—जिसने भगवान् गोविन्दके चरणकमलोंकी धूलिके रसका आस्वादन नहीं किया है, वह आशातीत समृद्धिशाली पदको नहीं पा सकता।

अंगिरा बोले—जो भगवान् लक्ष्मीपतिके कान्तिमान् चरणकमलोंका भलीभाँति चिन्तन करता है, उसके लिये सम्पूर्ण सम्पदाओंका स्थान दूर नहीं है।

पुलस्त्यने कहा—ध्रुव! जिनके स्मरणमात्रसे महापातकोंकी परम्पराका सर्वथा नाश हो जाता है, वे भगवान् विष्णु ही सब कुछ देनेवाले हैं।

पुलह बोले—जिनको प्रकृति और पुरुषसे परे परब्रह्म कहते हैं तथा जिनकी मायासे सम्पूर्ण जगत्‌का विस्तार किया गया है, वे भगवान् विष्णु ही सब कुछ देंगे।

क्रतुने कहा—जो यज्ञपुरुष हैं, सर्वत्र व्यापक

हैं, सम्पूर्ण वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य तथा समस्त जगत्‌के अन्तरात्मा हैं, वे भगवान् जनार्दन यदि सन्तुष्ट हो जायँ तो क्या नहीं दे सकते हैं?

वसिष्ठ बोले—राजकुमार! जिनके भ्रूभंगमात्रसे अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ आज्ञाके अनुसार कार्य करनेको प्रस्तुत रहती हैं, उन भगवान् हृषीकेशकी आराधना करनेपर मोक्ष भी दूर नहीं है।

ध्रुवने कहा—मुनीश्वरो! आपने भगवान् विष्णुकी आराधनाके विषयमें जो विचार व्यक्त किया है, वह सत्य है। परंतु भगवान् विष्णुकी आराधना कैसे की जाती है, उसकी विधि क्या है, इसका उपदेश करें।

मुनि बोले—खड़े होते, चलते, सोते, जागते, लेटे अथवा बैठे हुए सब समय भगवान् नारायणके नामका जप करना चाहिये। चार भुजाधारी भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए वासुदेवस्वरूप द्वादशाक्षर मन्त्र (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**) द्वारा जप करके कौन सिद्धिको नहीं प्राप्त हुआ है *? अलसीके फूलकी भाँति श्याम कान्तिवाले पीतवस्त्रधारी सर्वात्मा अच्युतका एक क्षण भी ध्यान करनेवाला कौन ऐसा पुरुष है, जो इस भूतलपर सिद्धिको नहीं पाता? भगवान् वासुदेवका जप करनेवाला मनुष्य स्त्री, पुत्र, मित्र, राज्य, स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) सब कुछ निःसन्देह प्राप्त कर लेता है। वासुदेवके मन्त्र-जपमें लगे हुए पापी मनुष्योंको भी विघ्न तथा भयंकर यमदूत नहीं छू सकते। महा समृद्धिशाली और विष्णुभक्त तुम्हारे दादा मनुने भी राज्यकी कामनासे इस महामन्त्रका जप किया था। तुम भी इसी मन्त्रसे भगवान् वासुदेवकी आराधनामें लग जाओ। इससे तुम शीघ्र ही मनोवांछित सिद्धि प्राप्त कर लोगे।

ऐसा कहकर वे सब महात्मा मुनीश्वर वहीं अन्तर्धान हो गये। इधर ध्रुव भी भगवान् वासुदेवके चिन्तनमें मन लगाकर तपस्याके लिये चल दिये। जंगलसे निकलकर वे यमुनाके किनारे मनोहर मधुवनमें गये। वह भगवान् श्रीहरिका परम पवित्र आदिस्थान है, जहाँ पहुँचकर पापी जीव भी निष्पाप हो जाता है। वहाँ जाकर ध्रुवने वासुदेव नामक निरामय परब्रह्मका जप प्रारम्भ किया। उनके नेत्र ध्यानमें निश्चल रहते थे और वे सम्पूर्ण विश्वको वासुदेवमय देखते थे। सम्पूर्ण दिशाओंमें श्रीहरि हैं, वे ही पातालमें अनन्तरूपसे रहते हैं, आकाशमें भी वे ही अनन्तरूपसे व्याप्त हैं। यद्यपि वे एक हैं तथापि अनन्त रूपभेदके कारण अनन्तताको प्राप्त हुए हैं। जो सदा देवताओंमें वास करें अथवा देवताओंके वासस्थान हों या व्यापकशक्तिसे सर्वत्र देदीप्यमान हों, वे भगवान् वासुदेव कहलाते हैं। '**विष्लृ व्याप्तौ**' धातु है। इसका प्रयोग व्याप्ति अर्थमें होता है। (इसीसे 'विष्णु' शब्द बनता है) भगवान् विष्णुके सर्वव्यापी नाम एवं स्वरूपमें ही यह धातु पूर्णतः सार्थक होती है। जो परमेश्वर सम्पूर्ण हृषीक अर्थात् इन्द्रियोंके स्वामी होनेसे 'हृषीकेश' कहलाते हैं, वे ही सर्वत्र स्थित हैं। जिनके भक्त भी महाप्रलयमें अपने स्वरूपसे च्युत नहीं होते, वे भगवान् सम्पूर्ण लोकोंमें 'अच्युत' कहलाते हैं। जो एकमात्र अविनाशी एवं सर्वत्र व्यापक हैं, जो पालन-पोषण करने और स्वरूपकी प्राप्ति करानेके द्वारा इस समस्त चराचर विश्वका लीलापूर्वक भरण करते हैं, वे भगवान् विश्वम्भर यहाँ विराजमान हैं। ध्रुवकी आँखें भगवान् विष्णुके स्वरूपके अतिरिक्त दूसरी किसी वस्तुको नहीं देखती थीं। उन्होंने यह नियम बना लिया था कि केवल कमलनयन भगवान् विष्णु ही दर्शन करनेयोग्य हैं, दूसरा कोई नहीं। उनके कान गोविन्द, मुकुन्द, दामोदर, चतुर्भुज आदि शब्दोंके बिना दूसरा कोई शब्द नहीं ग्रहण करते थे। उनके दोनों हाथ गोविन्दके चरणारविन्दोंकी पूजा

---

* तिष्ठता गच्छता वापि स्वपता जाग्रता तथा। शयानेनोपविष्टेन जप्यो नारायणः सदा॥
द्वादशाक्षरमन्त्रेण वासुदेवात्मकेन च। ध्यायंश्चतुर्भुजं विष्णुं जप्त्वा सिद्धिं न को गतः॥
(स्क० पु०, का० पू० १९। १७-१८)

तथा उन्हें प्रिय लगनेवाले कर्मोंको छोड़कर और कोई कर्म नहीं करते थे। उनका मन अन्य सारी बातोंका मनन छोड़कर केवल भगवान्‌के द्वन्द्वरहित युगल चरणकमलोंका चिन्तन करता हुआ स्थिर हो गया था। तपस्या करते हुए ध्रुवके दोनों पैर भगवान् नारायणका आँगन छोड़कर अन्यत्र नहीं जाते थे। परम सारभूत तपस्या करते हुए राजकुमारने मौन धारण कर लिया था। केवल गोविन्दका गुणगान करनेमें वे अपनी वाणीको प्रमाणित करते थे। निरन्तर भगवान् कमलाकान्तके नामामृतरसका आस्वादन करती हुई ध्रुवकी रसना अन्य लौकिक रसोंकी स्पृहा त्याग चुकी थी। उनकी घ्राणेन्द्रिय श्रीमुकुन्दके युगल चरणारविन्दोंकी सुगन्धसे परमानन्दमें निमग्न रहती थी। इसलिये वह और किसी गन्धको नहीं सूँघती थी। राजकुमार ध्रुवके शरीरकी त्वचा-इन्द्रिय भगवान् मधुसूदनके युगल चरणोंका स्पर्श करती हुई सम्पूर्ण स्पर्शसुखको प्राप्त कर लेती थी। उनकी समस्त इन्द्रियाँ शब्दादि सभी विषयोंके आधार एवं सारभूत परात्पर भगवान् दामोदरकी सेवामें संलग्न हो कृतार्थ हो गयी थीं। ध्रुवकी तपस्यारूपी सूर्यका उदय होनेपर तीनों लोक सन्तप्त होने लगे। इन्द्र, सोम, अग्नि, वरुण, वायु, कुबेर, यम और निर्ऋति आदि समस्त दिक्पाल अपना-अपना पद खो जानेके भयसे शंकित हो उठे। ध्रुव पृथ्वीपर जहाँ-जहाँ पाँव रखते थे, वहाँ-वहाँ वह महान् भारसे दबने लगती थी। उनके अंगके स्पर्शमें आये हुए समस्त जल अपनी मलिनताका परित्याग करके सरस एवं स्वच्छ हो गये थे। राजकुमारने कौस्तुभमणिसे उद्भासित वक्षवाले पीताम्बरधारी भगवान् विष्णुका ध्यान करनेके कारण सम्पूर्ण विश्वको तेजोमय ही देखा। उनकी तपस्याके भयसे इन्द्रको बड़ी भारी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे—'ध्रुव चाहे तो मेरा इन्द्रपद अवश्य हर लेगा। अप्सराओंका समूह उस बालकपर अपना कोई प्रभाव नहीं डाल सकता। काम और क्रोध उसे विचलित करनेमें समर्थ न होंगे। उसे डिगानेके लिये एक ही उपाय है, उसके पास भयंकर आकारवाले भूतोंकी सेना भेजें। बालक होनेके कारण वह भूतोंसे डरकर निश्चय ही अपनी तपस्या त्याग देगा।' ऐसा निश्चय करके इन्द्रने भूतोंकी सेना भेज दी। उन भूतोंमेंसे कोई यक्षिणी किसीके रोते हुए शिशुको उठा लायी और उसकी कोख फाड़कर उसका रक्त पीने लगी। फिर उसने उसकी हड्डियोंको चबा डाला और ध्रुवको सम्बोधित करके कहा—'अरे! इसी बालककी भाँति तेरी हड्डियोंको भी चबाकर मैं आज प्यास लगनेपर तेरा रक्त पीऊँगी।' किसी भूतनीने बवंडर (तूफान)-का रूप धारण करके कितने ही वृक्षों और गिरि-शिखरोंको तोड़-फोड़कर आकाशके मार्गको ढँक दिया और उस बालकको कम्पित करने लगी। परंतु उन भूत-भूतनियोंका भय त्यागकर ध्रुव केवल भगवान् नारायणके ध्यानमें तत्पर रहे। भय दिखानेवाली भूतावलियोंने देखा—ध्रुवके चारों ओर भगवान्‌का सुदर्शनचक्र प्रज्वलित हो उठा है। वह मण्डलाकार चक्र सूर्यकी परिधिके समान अत्यन्त प्रकाशित हो रहा था। भगवान्‌ने भूतावलियोंसे भक्तकी रक्षाके लिये उसे प्रकट किया था। उस चक्रको देख डरी हुई भूतोंकी सेना ध्रुवको नमस्कार करके जैसे आयी थी, वैसे ही लौट गयी।

ब्रह्मन्! तदनन्तर भयभीत हुए सम्पूर्ण देवता इन्द्रके साथ ब्रह्माजीकी शरणमें गये और उनको प्रणाम करके सबने उनका स्तवन किया। तत्पश्चात् बोलनेका अवसर देख इस प्रकार कहा—'पितामह! उत्तानपादके तेजस्वी पुत्रने तपस्या करके तीनों लोकोंके सम्पूर्ण निवासियोंको सन्तप्त कर दिया है। तात! ध्रुवका मनोरथ क्या है, यह हम अच्छी तरह नहीं जानते। पता नहीं, वह महातपस्वी बालक हमलोगोंमेंसे किसके पदको चाहता है।'

देवताओंकी यह बात सुनकर चतुर्मुख ब्रह्माजी हँसकर बोले—देवताओ! ध्रुव ध्रुवपद (अविनाशी स्थान) प्राप्त करना चाहता है। अत:

उससे तुम्हें भय नहीं मानना चाहिये। तुम सब लोग निश्चिन्त होकर जाओ। वह तुम्हारा पद नहीं लेना चाहता। ध्रुव भगवान्‌का भक्त है, उससे किसीको कहीं भी भय नहीं होना चाहिये। यह निश्चित है कि भगवान् विष्णुके भक्त दूसरोंको सन्ताप देनेवाले नहीं होते। देवेश्वर श्रीविष्णुकी आराधना करके उनसे अपनी मनोवांछित वस्तु प्राप्त करके ध्रुव तुम सब देवताओंके भी स्थानोंको स्थिर करेगा।

ब्रह्माजीकी कही हुई यह बात सुनकर देवता बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें प्रणाम करके अपने-अपने स्थानको चले गये। इधर भगवान् विष्णु उस अनन्यशरण बालकको स्थिरचित्त देखकर गरुड़पर आरूढ़ हो उसके पास गये और इस प्रकार बोले—'महाभाग! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, तुम कोई वर माँगो।' यह अमृतके समान वचन सुनकर ध्रुवने आँखें खोल दीं और देखा—इन्द्रनीलमणिके समान श्याम तेजका पुंज सामने प्रकाशित हो रहा है। पीताम्बरधारी, मेघके समान श्याम गरुड़वाहन भगवान् विष्णुको ध्रुवने देखा। देखते ही ध्रुव दण्डकी भाँति उनके चरणोंमें पड़ गये और सब ओर लोटने लगे। फिर जैसे दुःखी बालक दीर्घकालके बाद पिताको देखकर रोता है, उसी प्रकार वे फूट-फूटकर रोने लगे। उस समय भगवान्‌के कमल-समान नेत्रोंमें करुणापूर्ण अश्रुजल भर आया और उन्होंने अपने हाथसे ध्रुवको उठाया तथा उनके धूलिधूसरित अंगोंको प्रेमपूर्वक सहलाया। देवाधिदेव श्रीहरिके स्पर्शमात्रसे ध्रुवके मुखसे संस्कृतमयी शुभ वाणी प्रकट हुई और उन्होंने इस प्रकार स्तवन किया—

ध्रुव बोले—सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि करनेवाले हिरण्यगर्भस्वरूप आपको नमस्कार है। आप उत्तम ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। समस्त भूतोंका संहार करनेवाले हरस्वरूप! आपको नमस्कार है। पंचमहाभूतस्वरूप तथा समस्त भूत-प्राणियोंके स्वामी आपको नमस्कार है। सर्वशक्तिमान् अथवा जगत्‌के उत्पादक, पालनकर्ता आप भगवान् विष्णुको नमस्कार है। विषयोंकी तृष्णा हर लेनेवाले सच्चिदानन्द श्रीकृष्णस्वरूप आपको नमस्कार है। कूर्म और वाराह आदि अवतारोंके रूप आप समस्त विश्वका महान् भार सहन करते हैं, आपको नमस्कार है। लक्ष्मीजीके स्वामी एवं सुदर्शनचक्र धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। पृथ्वीको अपने दाढ़ोंपर उठानेवाले आप वाराहरूपधारी परमात्माको नमस्कार है। वेदान्तोंद्वारा आप ही जानने योग्य हैं, आपको नमस्कार है। आप अपने वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न धारण करते हैं, आपको नमस्कार है। आप सत्त्वादि गुणस्वरूप तथा सगुण एवं निर्गुण ब्रह्म हैं, आपको नमस्कार है। आपकी नाभिसे ब्रह्माण्डरूपी कमल प्रकट हुआ है, आपको नमस्कार है। आप पांचजन्य नामक शंख धारण करते हैं, आपको नमस्कार है। वासुदेव! आपको नमस्कार है। देवकीनन्दन! आपको नमस्कार है। दामोदर! हृषीकेश! गोविन्द! अच्युत! माधव! उपेन्द्र! मधुसूदन! और अधोक्षज! आपको नमस्कार है। आपका कहीं अन्त नहीं है, इसलिये अनन्त कहलाते हैं। आपको नमस्कार है। आप अनन्त नामक शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। रुक्मिणीके पति! आपको नमस्कार है। मुकुन्द! परमानन्द! नन्दगोपके प्रिय! आपको नमस्कार है। पुण्डरीकाक्ष! आपको नमस्कार है। गोपालरूप धारण करके वंशी बजानेवाले! आपको नमस्कार है। गोपीवल्लभ! गोवर्द्धनधारी! आपको नमस्कार है। आपमें योगीजन रमण करते हैं, इसलिये आप राम हैं, रघुकुलके स्वामी होनेसे रघुनाथ हैं तथा रघुवंशमें अवतार ग्रहण करनेके कारण आप राघव कहलाते हैं। आपको बार-बार नमस्कार है। विभीषणको आश्रय देनेवाले आपको नमस्कार है। आप अजन्मा एवं जयस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। क्षण, निमेष आदि जितने कालभेद हैं, वे सब आपके ही स्वरूप हैं। आप अनेक रूप धारण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप शार्ङ्ग

ध्रुवकी सफल साधना

नामक धनुष, कौमोदकी गदा और सुदर्शन चक्र धारण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप गौओं और ब्राह्मणोंके हितकारी हैं, आपको नमस्कार है। धर्मस्वरूप आपको नमस्कार है। सत्त्वगुण धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। आपके सहस्रों मस्तक हैं, आप परम पुरुष परमेश्वर हैं, आपको नमस्कार है। आपके सहस्रों नेत्र, सहस्रों चरण, सहस्रों किरणें और सहस्रों मूर्तियाँ हैं, आपको नमस्कार है। श्रीकान्त! यज्ञपुरुष! आपको नमस्कार है। आपका स्वरूप वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य है और वेद आपको बहुत प्रिय हैं, आपको नमस्कार है। वेदस्वरूप, वेदोंके वक्ता और सदाचारके पथपर चलनेवाले आपको नमस्कार है। आप वैकुण्ठधामस्वरूप तथा वैकुण्ठधामके निवासी हैं, आपको नमस्कार है। विस्तृत यशवाले आप भगवान् गरुड़वाहनको नमस्कार है। विष्वक्सेन! आपको नमस्कार है। जगन्मय जनार्दन! आपको नमस्कार है। आप अपने तीन पगोंसे त्रिलोकीको माप लेनेवाले, सत्यस्वरूप तथा सत्यप्रिय हैं, आपको नमस्कार है। केशव! आपको नमस्कार है। आप मायाशक्तिसे सम्पन्न हैं और वेदोंके गायक हैं अथवा ब्रह्म नामसे आपकी महिमाका गान किया जाता है, आपको नमस्कार है। आप तपःस्वरूप और तपस्याका फल देनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप ही स्तवन करनेयोग्य देवता हैं, स्तुति भी आपका ही स्वरूप है तथा आप अपने भक्तजनोंकी स्तुतिमें तत्पर रहते हैं, आपको नमस्कार है। आप श्रुतिरूप हैं और श्रुतियोंमें प्रतिपादित सदाचार आपको विशेष प्रिय है, आपको नमस्कार है। अण्डज, स्वेदज, जरायुज और उद्भिज्ज सभी जीव आपके स्वरूप हैं; उन सभी रूपोंमें आपको नमस्कार है। आप देवताओंमें इन्द्र, ग्रहोंमें सूर्य, लोकोंमें सत्यलोक, समुद्रोंमें क्षीरसागर, नदियोंमें गंगा, सरोवरोंमें मानस, पर्वतमें हिमवान्, धेनुओंमें कामधेनु, धातुओंमें सुवर्ण, पत्थरोंमें स्फटिक, फूलोंमें नीलकमल, वृक्षोंमें तुलसी, सम्पूर्ण पूजनीय शिलाओंमें शालग्राम शिला, मुक्तिदायक क्षेत्रोंमें काशी, तीर्थोंमें प्रयाग, रंगोंमें श्वेत रंग, मनुष्योंमें ब्राह्मण, पक्षियोंमें गरुड, कर्मेन्द्रियोंमें वाणी, वेदोंमें उपनिषद्, मन्त्रोंमें प्रणव, अक्षरोंमें अकार, यज्ञकर्ताओंमें सोमरूपधारी, प्रतापियोंमें अग्नि, क्षमाशीलोंमें क्षमा (पृथ्वी), दाताओंमें मेघ, पवित्रोंमें परम पवित्र, सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंमें धनुष, वेगवानोंमें वायु, इन्द्रियोंमें मन, भयशून्य अंगोंमें हाथ, व्यापक वस्तुओंमें आकाश, आत्माओंमें परमात्मा, सम्पूर्ण नित्यकर्मोंमें सन्ध्योपासना, यज्ञोंमें अश्वमेध-यज्ञ, दानोंमें अभयदान, लाभोंमें पुत्रलाभ, ऋतुओंमें वसन्त, युगोंमें प्रथम (सत्ययुग), तिथियोंमें अमावास्या, नक्षत्रोंमें पुष्य, सब पर्वोंमें संक्रान्ति, योगोंमें व्यतीपात, तृणोंमें कुश और सब पुरुषार्थोंमें मोक्ष हैं। अजन्मा प्रभो! सम्पूर्ण बुद्धियोंमें आप धर्मबुद्धि हैं, सब वृक्षोंमें पीपल हैं, लताओंमें सोमलता हैं, समस्त पवित्र साधनोंमें प्राणायाम हैं तथा सम्पूर्ण शिवलिंगोंमें आप सब कुछ देनेवाले साक्षात् विश्वनाथ हैं। मित्रोंमें पत्नी और सब बन्धुओंमें धर्म आप ही हैं। नारायण! इस चराचर जगत्में आपसे भिन्न कोई वस्तु नहीं है। आप ही माता, आप ही पिता, आप ही सुहृद्, आप ही महान् वैभव, आप ही सौख्य-सम्पत्ति तथा आप ही आयु और जीवनके स्वामी हैं। वही कथा है, जहाँ आपके नामकी महिमा बतायी जाती है। वही मन है, जो आपको समर्पित होता है। वही कर्म है, जो आपकी प्रसन्नताके लिये किया जाता है और वही तपस्या है, जिससे आपकी स्मृति होती है। धनियोंका वही धन शुद्ध है, जो आपके लिये व्यय किया जाता हो। विष्णो! वही काल सफल है, जिसमें आपकी पूजा होती है। यह जीवन तभीतक कल्याणकारी है, जबतक हृदयमें आपका चिन्तन होता रहता है। आपका चरणोदक पीनेसे सब रोग शान्त हो जाते हैं। गोविन्द! आपके वासुदेव नामका कीर्तन करनेसे अनेक जन्मोंद्वारा उपार्जित महान् पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। अहो! मनुष्योंमें कैसा अद्भुत महान् मोह

है, कैसा प्रमाद है कि वे भगवान् वासुदेवकी अवहेलना करके दूसरोंको रिझानेके लिये परिश्रम करते हैं। भगवान्के नामोंका जो कीर्तन किया जाता है, वही परम मंगल है, वही धनका उपार्जन है और वही जीवनका फल है। भगवान् अधोक्षज (विष्णु)-से भिन्न कोई धर्म नहीं है, नारायणसे परे कोई अर्थ नहीं है, केशवसे भिन्न कोई काम नहीं है और श्रीहरिके बिना मोक्ष नहीं है। भगवान् वासुदेवका स्मरण और ध्यान न हो तो यही सबसे बड़ी हानि है, यही महान् उपद्रव है और यही बड़ा भारी दुर्भाग्य है। अहो! भगवान् विष्णुकी आराधना मनुष्योंके लिये क्या-क्या नहीं करती। पुत्र, मित्र, स्त्री, धन, राज्य, स्वर्ग और मोक्ष सब कुछ तो वही देती है। श्रीहरिकी आराधना पापको हर लेती है, रोगोंका नाश करती है और मानसिक चिन्ताओंको मिटा देती है। इतना ही नहीं, वह धर्मको बढ़ाती और शीघ्र ही मनोवांछित वस्तु प्रदान करती है। यदि पापी भी प्रसंगवश भी भगवान्के युगल चरणोंका निर्द्वन्द्व ध्यान करता है, तो वह उसके लिये परम हितकी बात है। पापियोंके जो महापाप और सामान्य पाप हैं, उन सबको भगवान्के ध्यानपूर्वक किया हुआ नामोच्चारण अविलम्ब हर लेता है। जैसे आगकी चिनगारी भूलसे भी छू जाय तो वह जला ही देती है, उसी प्रकार होठोंसे श्रीहरिनामका स्पर्श होते ही वह समस्त पापोंको हर लेता है *। जो अपने चित्तको शान्त करके उसे क्षणभर भी कमलाकान्तके चिन्तनमें लगाता है तो उसके यहाँ लक्ष्मी निश्चल होकर रहती है। भगवान् विष्णुका चरणामृत पान करना ही सबसे बड़ा धर्म है, यही सर्वोत्तम तप है और यही सर्वोत्कृष्ट तीर्थ है। यज्ञपुरुष! जो आपको भोग लगाये हुए नैवेद्यका प्रसाद भक्तिपूर्वक ग्रहण करता है, उस परम बुद्धिमान् मनुष्यने मानो निश्चय ही यज्ञका पुरोडाश प्राप्त कर लिया। जो मनुष्य भगवान् विष्णुका चरणोदक शंखमें रखकर उससे अपने सिर आदि अंगोंका अभिषेक करता है, वही अवभृथ-स्नान करता है और वही गंगाजीके जलमें गोता लगाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा इतर जातिका मनुष्य, कोई भी क्यों न हो, यदि वह भगवान् विष्णुकी भक्तिसे युक्त है तो उसे सर्वश्रेष्ठ जानना चाहिये। जो प्रतिदिन द्वारकाके गोमतीचक्रके साथ शालग्रामकी बारह शिलाओंका पूजन करता है, वह वैकुण्ठधाममें प्रतिष्ठित होता है। जिसके घरमें प्रतिदिन तुलसीकी पूजा होती है, उसके घरमें कभी यमराजके दूत नहीं जाते। जिसके मुखमें भगवन्नामके अक्षर हों, ललाटमें गोपीचन्दनका तिलक हो और जिसका वक्ष:स्थल तुलसीकी मालासे सुशोभित हो, उसे यमराजके दूत छू नहीं सकते। गोपीचन्दन, तुलसी, शंख, शालग्राम शिला और गोमतीचक्र—ये पाँच वस्तुएँ जिसके घरमें विद्यमान हैं, उसे पापका भय कैसे हो सकता है। जो मुहूर्त, जो क्षण, जो काष्ठा और जो निमेष भगवान् विष्णुका स्मरण किये बिना बीत जाते हैं, उन्हींमें मनुष्य यमके द्वारा लूटा जाता है। कहाँ तो आगकी जलती हुई चिनगारियोंके समान हरि-नामके दो अक्षर और कहाँ रूईकी ढेरीके समान पातकोंकी बड़ी भारी राशि। मैं तो गोविन्द, परमानन्द, मुकुन्द एवं मधुसूदन आदि नामोंवाले भगवान् विष्णुको छोड़कर दूसरेको नहीं जानता, नहीं भजता और नहीं स्मरण करता हूँ। श्रीहरिके बिना मैं दूसरेको न तो नमस्कार करता हूँ, न उसकी स्तुति करता हूँ, न नेत्रोंसे उसे देखता हूँ, न शरीरसे उसका स्पर्श करता हूँ, न उसके पास जाता हूँ और न उसकी महिमाके गीत ही गाता हूँ। मैं जलमें, स्थलमें, पातालमें, अग्निमें, वायुमें, पर्वतमें, विद्याधरमें, असुर और देवताओंमें, किन्नरमें, वानरमें, नरमें, तिनकेमें, स्त्रियोंके समुदायमें, पत्थरमें, वृक्ष, झाड़ी और लताओंमें, सर्वत्र श्रीवत्सचिह्नसे विभूषित वक्षवाले श्यामसुन्दर श्रीहरिको ही देखता हूँ। प्रभो! आप सबके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे निवास करते हैं। आप ही सबके साक्षात् साक्षी हैं। अपने बाहर और भीतर आप सर्वव्यापी

* प्रमादादपि संस्पृष्टो यथानलकणो दहेत्। तथौष्ठपुटसंस्पृष्टं हरिनाम हरेदघम्॥ (स्क० पु०, का० पू० २१। ५७)

परमेश्वरको छोड़कर मैं दूसरेको नहीं जानता।

शिवशर्मन्! ऐसा कहकर भक्त ध्रुव चुप हो गये। तब भगवान् विष्णुने प्रसन्नतापूर्ण दृष्टिसे

देखते हुए कहा—'वत्स ध्रुव! मैंने तुम्हारे मनोरथको अच्छी तरह जान लिया है। देखो, सब प्राणी अन्नसे उत्पन्न होते हैं, अन्न वर्षासे उत्पन्न होता है, उस वर्षाके कारण हैं सूर्यदेव, परंतु तुम सूर्यके भी आधार हो जाओ। आकाशमें भ्रमण करनेवाले समस्त ग्रह-नक्षत्र आदिका जो ज्योतिर्मण्डल है, उसके तुम आधार होओगे। इस दिव्य पदपर तुम पूरे कल्पभर शासन करोगे। तुम्हारी माता सुनीति भी तुम्हारे समीप आ पहुँचेगी। जो मनुष्य एकाग्रचित्त हो तुम्हारे द्वारा किये हुए इस उत्तम स्तोत्रका तीनों समय पाठ करेगा, उसकी पापराशि नष्ट हो जायगी और लक्ष्मी उसका घर नहीं छोड़ेगी; उसका मातासे वियोग नहीं होगा और भाई-बन्धुओंके साथ कभी कलह नहीं होगा।'

भगवान्‌के दोनों पार्षद कहते हैं—ब्रह्मन्! ध्रुवसे ऐसा कहकर भगवान् गरुड़ध्वज वहाँसे चले गये।

महर्लोक, जनलोक और तपोलोककी स्थिति; ब्रह्माजीके द्वारा सत्यलोकका महत्त्व-कथन और भारतवर्ष एवं वहाँके तीर्थोंकी महत्ता बताते हुए प्रयाग और काशीकी महिमाका प्रतिपादन

अगस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर वायुके समान वेगशाली वह विमान स्वर्गलोकसे ऊपर अत्यन्त अद्भुत महर्लोकमें जा पहुँचा। तब ब्राह्मणने पूछा—'यह मनोहर लोक कौन-सा है?'

दोनों भगवत्पार्षदोंने कहा—ब्रह्मन्! यह महर्लोक है, जो स्वर्गलोकसे भी अद्भुत है। जिन्होंने तपस्यासे अपनी पापराशि धो डाली है वे कल्पान्तजीवी तपस्वी यहाँ निवास करते हैं। भगवान् विष्णुका निरन्तर स्मरण करनेसे उनकी समस्त पापराशि नष्ट हो जाती है।

इस प्रकार वे दोनों पार्षद कह ही रहे थे कि आधे क्षणमें वह विमान उन सबको लेकर जनलोकमें जा पहुँचा। यहाँ ब्रह्माजीके मानसपुत्र निर्मल योगीश्वर एवं नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनक, सनन्दन आदि निवास करते हैं। अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले अन्यान्य योगी भी सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे मुक्त हो अत्यन्त निर्मल होकर जनलोकमें निवास करते हैं। मनके समान वेगसे चलनेवाले उस विमानने जनलोकसे ऊपर जाकर शीघ्र ही तपोलोकको दृष्टिगोचर कराया, जहाँ वैराज नामवाले देवता निवास करते हैं। जिनका मन भगवान् वासुदेवमें लगा होता है, जो अपने समस्त कर्म वासुदेवको समर्पित कर देते हैं तथा तपस्याद्वारा भगवान् गोविन्दको सन्तुष्ट करके जो सब प्रकारकी इच्छाओंका त्याग कर चुके हैं, ऐसे जितेन्द्रिय महात्मा तपोलोकमें जाकर निवास करते हैं। जो तपस्याओंसे अपने शरीरको क्लेश देकर तपरूपी धनका संग्रह कर चुके हैं, वे ब्रह्माजीके समान आयुवाले होकर निर्भयतापूर्वक निवास करते हैं।

पुण्यात्मा शिवशर्मा जबतक भगवत्पार्षदोंके मुखसे इस प्रकार तपोलोककी महिमा सुनते रहे, तबतक उनके नेत्रोंके सामने परम प्रकाशमय सत्यलोक आ पहुँचा। वहाँ जाते ही वे दोनों पार्षद उनके साथ तुरंत ही विमानसे उतर पड़े और उन सबने समस्त लोकोंके स्रष्टा ब्रह्माजीके चरणोंमें प्रणाम किया।

ब्रह्माजी बोले—भगवत्पार्षदो! ये बुद्धिमान् ब्राह्मण शिवशर्मा वेद-वेदांगोंके पारंगत विद्वान् हैं। स्मृतियों और धर्मशास्त्रोंमें बताये हुए सदाचारके पालनमें परम प्रवीण हैं तथा पापकर्मोंसे सदा विमुख रहे हैं। परम बुद्धिमान् द्विज शिवशर्मन्! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। वत्स! तुमने उत्तम तीर्थमें प्राणत्याग करके बहुत ही अच्छा किया। तुमने यह जो कुछ देखा है, वह सब शीघ्र नष्ट होनेवाला है। मेरे प्रत्येक दिनके अन्तमें प्रलय होता है और मैं दिनके प्रारम्भमें बार-बार सृष्टि करता हूँ। जब स्वर्गादि लोकोंकी यह अवस्था है तब मरणशील मनुष्योंकी तो बात ही क्या है। परंतु चार प्रकारके जीव (स्वेदज, उद्भिज्ज, जरायुज तथा अण्डज) समुदायमेंसे मनुष्योंमें ही एक ऐसा गुण है कि वे कर्मभूमि भारतमें मनसहित चंचल इन्द्रियोंको जीतकर, गुणोंके शत्रु लोभका त्याग करके, धर्मकी परम्परा तथा धनराशिका नाश करनेवाले कामको विचारके द्वारा मनसे बाहर निकालकर, धैर्यसे क्रोधरूपी शत्रुको जीतकर और मदका परित्याग, अहंकारका निवारण तथा मोहका नाश करके, धर्मकी सीढ़ीपर चढ़कर, अनायास ही इस सत्यलोकमें आ जाते हैं। आर्यावर्तके समान देश, काशीके समान पुरी तथा विश्वनाथजीके समान लिंग इस ब्रह्माण्डमण्डलमें कहीं भी नहीं है। समुद्रके बीचमें अनेक द्वीप हैं, किंतु इस पृथ्वीपर जम्बूद्वीपके समान दूसरा कोई द्वीप नहीं है। जम्बूद्वीपमें भी नौ वर्ष हैं, जिनमें भारतवर्ष सबसे श्रेष्ठ है। इसे कर्मभूमि कहा गया है। यह देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। किंपुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं, वे देवभोग्य हैं; उनमें देवतालोग स्वर्गसे आकर रमण करते हैं। यह भारतवर्ष नौ हजार योजन विस्तृत है। इस भारतवर्षमें भी हिमवान् और विन्ध्यगिरिके बीचका भाग अत्यन्त पुण्यदायक है। इसमें भी गंगा और यमुनाके बीचका भाग पृथ्वीकी अन्तर्वेदी है। यहाँके क्षेत्रोंमें कुरुक्षेत्र सबसे बढ़कर है। उससे भी उत्तम नैमिषारण्यक्षेत्र है जो स्वर्गका श्रेष्ठ साधन है। इस समस्त भूमण्डलमें नैमिषारण्यसे तथा अन्य सब तीर्थोंसे भी बढ़कर तीर्थराज प्रयाग है। वह स्वर्ग, मोक्ष तथा सम्पूर्ण मनोवांछित फलोंको देनेवाला है। इसीलिये प्रयाग महान् क्षेत्र है और उसे सब तीर्थोंका राजा माना गया है। मैंने पूर्वकालमें सब यज्ञोंको एक ओर तराजूपर रखा और दूसरी ओर तीर्थोंमें श्रेष्ठ प्रयागको रखा, किंतु उसीका पलड़ा भारी रहा। दक्षिणा आदिसे पुष्ट समस्त यागोंकी अपेक्षा इस क्षेत्रको प्रधान देखकर विष्णु और शिव आदिने उसका नाम प्रयाग रख दिया। उसके नाममात्रका तीनों कालमें स्मरण करनेसे मनुष्यके शरीरमें कभी कहीं पाप नहीं ठहरता है। असंख्य जन्मान्तरोंमें जिस पापराशिका संग्रह किया गया है, व्रत, दान, जप और तपसे भी जिसको दूर करना अत्यन्त कठिन है, वह पापराशि भी जब कोई तीर्थराज प्रयागमें जानेके लिये उद्यत होता है, तब आँधीके मारे हुए वृक्षकी भाँति शरीरके भीतर थर-थर काँपने लगती है। तत्पश्चात् प्रयाग जानेका दृढ़ संकल्प लेकर जो आधा रास्ता तय कर लेता है, उस पुरुषके शरीरसे वह पापराशि पग-पगपर निकलनेकी इच्छा करती है। यदि भाग्यवश उस महात्माको तीर्थराज प्रयागका दर्शन हो जाता है, तब तो उसके पाप उसी प्रकार शीघ्र भाग जाते हैं, जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार। सात धातुओंके बने हुए मानवशरीरमें जो-जो पाप हैं, वे केशोंमें आकर ठहरते हैं। अतः केशोंका मुण्डन करा देनेपर वे भी निकल जाते हैं। इस प्रकार निष्पाप होकर, गंगा-यमुनाके श्वेत-श्याम सलिलके संगममें स्नान करना चाहिये। उस स्नानसे मनुष्य महान् पुण्यराशि, मनोवांछित पुण्यमय भोग तथा स्वर्गको भी पाता है और जो निष्काम भावसे स्नान करता है, वह मोक्ष पाता है। ब्रह्मन्!

मैं सत्यलोक और प्रयागमें कोई अन्तर नहीं समझता, क्योंकि वहाँ रहकर जो शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, वे मेरे लोकके निवासी होते हैं। जिस भाग्यवान् मनुष्यकी हड्डियाँ भी प्रयागमें पड़ जाती हैं, उसे किसी जन्ममें लेशमात्र भी दुःख नहीं प्राप्त होता। ब्रह्महत्या आदि पापोंका प्रायश्चित्त करनेकी इच्छावाले पुरुषको ब्राह्मणकी आज्ञा लेकर विधिपूर्वक प्रयागतीर्थका सेवन करना चाहिये।

तीर्थराज प्रयागसे भी श्रेष्ठ तीर्थ है काशी। वह सम्पूर्ण भुवनोंमें सबसे उत्तम है। काशीमें देहावसान होनेसे अनायास मुक्ति होती है। इसमें संशय नहीं कि काशीक्षेत्र प्रयागसे भी अधिक रमणीय है, जहाँ साक्षात् भगवान् विश्वनाथ निवास करते हैं। विश्वनाथजीके निवासस्थान अविमुक्त नामक महाक्षेत्रसे अधिक रमणीय तीर्थ इस ब्रह्माण्डमें कहीं नहीं है। अविमुक्त क्षेत्र ब्रह्माण्डके भीतर रहकर भी ब्रह्माण्डमें नहीं है। इसकी लम्बाई पाँच कोस है। प्रलयकालमें एकार्णवका जल जैसे-जैसे बढ़ता है, वैसे-वैसे इस क्षेत्रको शिवजी ऊपर उठाते जाते हैं। काशीक्षेत्र महादेवजीके त्रिशूलकी नोकपर स्थित है। यह न तो आकाशमें स्थित है और न भूमिपर ही। किंतु मूढबुद्धि मनुष्य इसे इस रूपमें नहीं देख पाते। यहाँ सदा सत्ययुग रहता है, सदा महापर्व लगा रहता है। विश्वनाथजीके निवासस्थानमें ग्रहोंके अस्त-उदयजनित दोषकी प्राप्ति नहीं होती। वहाँ सदा उत्तरायण है, सदा महान् अभ्युदय है और सदैव मंगल है, जहाँ कि भगवान् विश्वनाथकी स्थिति है। विप्रवर! चौदहों भुवनोंकी सृष्टि मैंने ही की है, परंतु इस काशीपुरीके निर्माता साक्षात् भगवान् विश्वनाथ हैं, मैं नहीं। काशीमें देहत्याग करनेवालोंका नियन्त्रण स्वयं भगवान् विश्वनाथ करते हैं। जिन्होंने वहाँ रहकर भी पाप किये हैं, उनको दण्ड देनेवाले कालभैरव हैं। वहाँ कभी किसीको पाप नहीं करना चाहिये, क्योंकि वहाँ पाप करनेवालोंको दारुण रुद्रयातना भोगनी पड़ती है, जो नरकसे भी अधिक दुःसह है। जो मनुष्य दूसरोंकी निन्दा और परस्त्रीकी अभिलाषा करते हैं, उन्हें काशीका सेवन नहीं करना चाहिये; क्योंकि कहाँ काशी और कहाँ वह नरक। जो वहाँ सदा प्रतिग्रह लेकर धन संग्रह करनेकी अभिलाषा रखते हैं अथवा कपटपूर्वक दूसरोंका धन हड़प लेना चाहते हैं, ऐसे लोगोंको भी काशीका सेवन नहीं करना चाहिये। काशीमें रहनेवाले पुरुषको दूसरोंको पीड़ा देनेवाला कर्म सदाके लिये त्याग देना चहिये। यदि वहाँ भी वही करना हो तो दुष्ट चित्तवाले पुरुषोंका काशीमें निवास करना किस कामका है। जो दूसरोंसे द्रोहकी बात सोचते, दूसरोंसे डाह रखते और सदा दूसरोंको सताया करते हैं, उनके लिये काशीपुरी सिद्धिदायक नहीं। इस पृथ्वीपर ज्ञानके बिना कहीं मोक्ष नहीं होता। वह ज्ञान न तो चान्द्रायण आदि व्रतोंसे प्राप्त होता है और न उत्तम देश, कालमें सत्पात्रोंको विधि एवं श्रद्धापूर्वक दिये हुए तुलापुरुष आदि मुख्य-मुख्य दानोंसे ही मिलता है। अहिंसा-ब्रह्मचर्य आदि यमों, शौच-सन्तोषादि नियमों, पूजन आदि सत्कर्मों तथा शरीरको सुखानेवाली कठोर तपस्याओंसे भी उसकी प्राप्ति नहीं होती। गुरुओंद्वारा दिये हुए महामन्त्रोंके जपसे, स्वाध्यायसे, शास्त्रोक्त विधिसे, अग्निहोत्र करनेसे, गुरुओंकी सेवासे, श्राद्धसे, देवपूजासे तथा अनेकों तीर्थोंकी यात्रा करनेसे भी उस ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती; क्योंकि योगके बिना ज्ञान नहीं होता। गुरुके उपदेश किये हुए मार्गसे निरन्तर अभ्यासपूर्वक तत्त्वार्थ विचार करना ही योग है। उस योगमें भी अनेक प्रकारके विघ्न आया करते हैं, अतः एक ही जन्ममें प्रायः ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती, परंतु इस काशीपुरीमें जप, तप और योगके बिना भी एक ही जन्ममें कल्याणकी प्राप्ति हो जाती है। द्विजश्रेष्ठ! तुमने शुद्ध बुद्धिसे काशीतीर्थमें जो कल्याणकारी पुण्यका उपार्जन किया है, उसका भारी फल महान् है। भगवत्पार्षदोंके सामने ही इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी मौन हो गये और महामना शिवशर्मा भी बहुत प्रसन्न हुए।

वैकुण्ठ और कैलासकी स्थिति तथा शिव और विष्णुकी अभिन्नता एवं महत्ताका निरूपण

अगस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान्‌के पार्षद ब्रह्माजीको प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक चले और अपने विमानपर बैठकर वैकुण्ठधामके समीप जा पहुँचे। सत्यलोकसे जाते समय शिवशर्माने पुनः पूछा—'भगवत्पार्षदो! अब हमलोग कितनी दूर आये हैं और अभी कितनी दूर और चलना है।'

भगवत्पार्षद बोले—ब्रह्मन्! सूर्य और चन्द्रमाकी किरणोंका प्रकाश जहाँतक जाता है, समुद्र, पर्वत और वनसहित उतनी ही पृथ्वी मानी गयी है। उसके ऊपर आकाश है। पृथ्वीसे एक लाख योजन ऊपर सूर्यकी स्थिति है। पृथ्वीपर समुद्र, द्वीप, पर्वत और वनसहित जो कोई भी वस्तु है, वह सब भूलोकके नामसे विख्यात है। भूलोकसे लेकर सूर्यलोकतक भुवर्लोक कहलाता है। सूर्यसे ध्रुवलोकतक स्वर्गलोक कहलाता है। पृथ्वीसे एक करोड़ योजनकी ऊँचाईपर महर्लोक है, दो करोड़ योजन ऊँचे जनलोक है, चार करोड़ योजनकी ऊँचाईपर तपोलोक और पृथ्वीसे आठ करोड़ योजन ऊँचे सत्यलोक बताया गया है। सत्यलोकसे भी ऊपर वैकुण्ठधाम है, जो पृथ्वीसे सोलह करोड़ योजन ऊपर स्थित है, जहाँ सबको अभयदान करनेवाले साक्षात् भगवान् लक्ष्मीपति निवास करते हैं*। वैकुण्ठकी अपेक्षा सोलहगुनी ऊँचाईपर शिवजीका निवासस्थान कैलासधाम अवस्थित है (अर्थात् वह पृथ्वीसे २ अरब ५६ करोड़ योजनकी दूरीपर स्थित है), जहाँ गिरिराजनन्दिनी उमा, गणेशजी, कार्तिकेयजी तथा नन्दी आदिके साथ कल्याणस्वरूप भगवान् विश्वनाथ विराजमान हैं। लीलास्वरूप धारण करनेवाले उन भगवान्‌का यह सब दृश्यप्रपंच खेलमात्र है। वे सम्पूर्ण विश्वके स्वामीरूपसे विख्यात हैं और यह समस्त जगत् उनकी आज्ञाका पालक है। श्रुतियोंमें साकार, निराकार, सर्वव्यापी, नित्य, सत्य एवं द्वैतरहित कहकर जिस परब्रह्मका प्रतिपादन किया गया है, वे ही भगवान् शिव हैं। वे समस्त कारणोंसे परे एवं परात्पर हैं। उन्हींके विषयमें श्रुतियाँ कहती हैं कि ब्रह्मका स्वरूप परमानन्दमय है। उन भगवान् शिवको वेद भी नहीं जानते, वाणी मनके साथ उनतक न पहुँचकर लौट आती है। वे अपने द्वारा आप ही जानने योग्य हैं, परम ज्योतिःस्वरूप हैं और सबके हृदयमें अन्तर्यामीस्वरूपसे स्थित हैं। योगी पुरुष समाधिमें उनका साक्षात्कार करते हैं। वे वाणीद्वारा अनिर्वचनीय हैं। मायासे अनेक रूप धारण करके वास्तवमें रूपरहित हैं। वे अनन्त हैं, अन्तकस्वरूप हैं। सर्वज्ञ एवं कर्मशून्य हैं। उनका ऐश्वर्यमय स्वरूप इस प्रकार है—वे अर्धचन्द्रका मुकुट धारण करते हैं। उनका कण्ठ तमालके समान श्यामवर्ण है। ललाटमें ज्योतिर्मय नेत्र प्रकाशित होता है। उनके शरीरका वामार्ध भाग नारीके रूपमें सुशोभित होता है। वे अपने हाथोंमें शेषनागका भुजबंद पहनते हैं। गंगाजीकी तरंगोंके संसर्गसे उनकी जटाका तटप्रान्त सदा धुलता रहता है। उनका अंग विभूतिसमूहसे उज्ज्वल प्रतीत होता है। भगवान् रुद्रके पर और अपर (सगुण-निर्गुण अथवा कार्य-कारण) दो रूप हैं, जो सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त करके स्थित हैं। वे निराकार होकर भी साकार हैं। भगवान् शिव ही भोग और

* दिव्य वैकुण्ठधाम ब्रह्माण्डके अन्तर्गत नहीं, वह सबसे परे शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप है। भगवान् और उनके परम धाममें कोई अन्तर नहीं है। वह सर्वत्र व्यापक होकर भी त्रिपाद्विभूति परमव्योममें अभिव्यक्त है। भागवतमें उसे मूर्तिमान कैवल्य बताया गया है—'कैवल्यमिव मूर्तिमत्'। यहाँ जिस वैकुण्ठलोककी चर्चा की गयी है, वह ब्रह्मलोककी ही भाँति कोई अवान्तर लोक है।

मोक्षके कारण हैं। जैसे शिव हैं वैसे विष्णु हैं, जैसे विष्णु हैं वैसे शिव हैं। शिव और विष्णुमें तनिक भी अन्तर नहीं है*। भगवान् विष्णु शार्ङ्ग धनुष एवं कौमोदकी गदा धारण करके सम्पूर्ण त्रिलोकीका शासन करते हैं और साधुपुरुषोंकी रक्षाके लिये दानवोंका विनाश करते हैं। शिवशर्मन्! अब तुम भगवान् विष्णुके लोकमें निवास करो।

अगस्त्यजी कहते हैं—प्रिये लोपामुद्रे! इस प्रकार शिवशर्मा ब्राह्मण मोक्षपदको प्राप्त हुए। जो इस पुण्यमय उपाख्यानको सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो उत्तम ज्ञानको प्राप्त होता है।

अगस्त्यजीका श्रीशैलपर कार्तिकेयजीकी सेवामें जाना और उनके मुखसे काशीकी महिमा श्रवण करना

व्यासजी कहते हैं—सूत! इस प्रकार काशीकी महिमा सुनाते हुए अगस्त्यजीने अपनी पत्नीके साथ श्रीपर्वतकी परिक्रमा करनेके पश्चात् कार्तिकेयजीके सुन्दर एवं विशाल वनको देखा। वहाँ लोहित नामका पर्वत है। उस पर्वतके समीप मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यने अपनी पत्नीके साथ छः मुखोंवाले साक्षात् कार्तिकेयजीका दर्शन किया और पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़कर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर वैदिक सूक्तों तथा अपने बनाये हुए स्तोत्रद्वारा उनकी स्तुति की। स्तुतिके पश्चात् **'नमो नमः'** कहते हुए कार्तिकेयजीकी दो-तीन बार परिक्रमा करके उनके द्वारा बैठनेकी आज्ञा मिलनेपर वे उनके सामने बैठे।

तब कार्तिकेयजीने कहा—देवताओंके मुख्य सहायक मुनिवर अगस्त्यजी! कुशल तो है न? आप यहाँ आये हैं, यह मुझे मालूम हो गया था। विन्ध्याचल पर्वत ऊँचा उठ गया था, इसका भी मुझे पता है। वास्तवमें कुशल तो अविमुक्त नामक महाक्षेत्रमें ही है, जो भगवान् त्रिलोचनद्वारा सुरक्षित है और जहाँ साक्षात् भगवान् शिव मरे हुए प्राणियोंको मोक्षदान करते हैं। भूलोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोकमें अथवा पातालमें या महर्लोक आदि ऊपरके लोकोंमें भी मैंने वैसा उत्तम क्षेत्र कहीं नहीं देखा है। मुने! यद्यपि मैं अकेला ही सर्वत्र विचरता रहता हूँ तथापि काशीक्षेत्रकी प्राप्तिके लिये यहाँ तपस्या करता हूँ। किंतु आजतक मेरा मनोरथ सफल नहीं हुआ। पुण्य, दान, जप, तप तथा नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा काशीक्षेत्र मिलनेवाला नहीं है। उसकी प्राप्ति तो केवल श्रीमहादेवजीके अनुग्रहसे होती है। अत्यन्त दुर्लभ काशीपुरीका निवास केवल ईश्वरके अनुग्रहसे ही सुलभ है। शरीर प्रतिदिन बूढ़ा होता जाता है, इन्द्रियाँ जराजर्जर हो रही हैं और आयुरूपी मृगको मृत्युरूपी शिकारी अपना निशाना बनाना ही चाहता है। ऐसी दशामें सम्पत्तिको विपत्ति जानकर और आयुको विद्युत्के समान चपल मानकर मनुष्य काशीपुरीका भलीभाँति सेवन करे। जबतक जीवनका अन्त न हो जाय, तबतक काशी न छोड़े। अहो! बुढ़ापा निकट आ गया है, रोग अत्यन्त पीड़ा दे रहे हैं तथापि नाना प्रकारकी चेष्टाओंमें लगा हुआ देहधारी जीव काशीका सेवन करना नहीं चाहता! अर्थोपार्जनका उपाय किये बिना भी धन प्राप्त हो सकता है, यह एक निश्चित बात है। अतः धनकी चिन्ता छोड़कर एकमात्र धर्मकी शरण ले। धर्मसे स्वर्ग भी सुलभ है, परंतु एक काशीपुरी अत्यन्त दुर्लभ है। पाशुपतयोग मोक्षका साधन है। प्रयागमें गंगा-यमुनाके संगमका सेवन भी मुक्तिप्रद है तथा उससे भी बढ़कर अविमुक्त क्षेत्र है, जो अनायास

* यथा शिवस्तथा विष्णुर्यथा विष्णुस्तथा शिवः। अन्तरं शिवविष्णोश्च मनागपि न विद्यते॥ (स्क० पु०, का० पू० २३। ४१)

मोक्ष देनेवाला है। प्रतिदिन अविच्छिन्नरूपसे वेदोंका पाठ, मन्त्रोंका जप, अग्निहोत्र, दान, अनेक प्रकारके यज्ञ, देवताओंकी उपासना, त्रिरात्र अथवा पंचरात्र आदि आगमोक्त विधिसे आराधना, सांख्य, योग और श्रीविष्णुकी आराधना—ये सभी श्रेष्ठ कर्म मोक्षके साधन बताये गये हैं। अयोध्या, मथुरा आदि पुरियाँ भी मरे हुए जीवोंको मोक्ष देनेवाली बतायी गयी हैं। ये सभी कैवल्य मोक्षके साधन हैं, इसमें सन्देह नहीं। अन्य तीर्थ काशीकी प्राप्ति कराते हैं और काशीको प्राप्त होकर मनुष्य मुक्त हो जाता है। इसीलिये वह पवित्र क्षेत्र इस ब्रह्माण्डमण्डलमें भगवान् विश्वनाथको सदा प्रिय है। सुव्रत! मैं तो काशीसे आनेवाली वायुका भी स्पर्श चाहता हूँ। तुम तो साक्षात् काशीमें रहकर आये हो। जो जितेन्द्रिय होकर तीन रात भी काशीमें निवास करते हैं, उनकी चरणधूलिका स्पर्श अवश्य ही पवित्र कर देता है। तुम तो वहाँके निवासी ही थे, अतः तुम्हारे लिये क्या कहना है।

यों कहकर कार्तिकेयजीने अगस्त्य मुनिके सब अंगोंका स्पर्श किया और ऐसा करके उन्होंने अमृतके सरोवरमें स्नान करनेका सुख पाया। तत्पश्चात् 'जय विश्वनाथ' ऐसा कहकर उन्होंने अपने दोनों नेत्र बंद कर लिये और एक क्षणतक भगवान् शिवके अनिर्वचनीय स्वरूपका ध्यान किया। ध्यानसे निवृत्त होनेपर उनसे अगस्त्यजीने पूछा—'स्वामिन्! आप मुझसे काशीकी महिमा कहिये। वह क्षेत्र मुझे बहुत प्रिय है।'

स्कन्द बोले—अगस्त्यजी! काशीक्षेत्र इस लोकमें अत्यन्त गोपनीय बताया गया है। वहाँ सब प्रकारकी सिद्धि सन्निकट है; क्योंकि उसमें साक्षात् परमेश्वर सदा निवास करते हैं। काशीक्षेत्र आकाशमें स्थित है। वह इस भूलोकसे संलग्न नहीं है, किंतु इस बातको केवल योगीजन देख पाते हैं, अयोगी नहीं। जो पलभर भी अविमुक्त क्षेत्रके प्रति अतिशय भक्ति-भाव धारण करता है, उसने मानो ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक बड़ी भारी तपस्या कर ली। उसके द्वारा शिवसम्बन्धी सम्पूर्ण दिव्य व्रतोंका पालन हो जाता है। जो एक वर्षतक काशीमें क्रोधको जीतकर इन्द्रियसंयमपूर्वक रहता है, दूसरेके धनसे अपने शरीरका पोषण न करके पराये अन्नका परित्याग करता है, परनिन्दासे बचता है और प्रतिदिन कुछ-न-कुछ दान करता रहता है, उसने पूर्वजन्ममें सहस्रों वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की है, ऐसा मानना चाहिये। जो काशीक्षेत्रके माहात्म्यको जाननेवाला मनुष्य जीवनभर काशीवास करता है, वह जन्म-मृत्युका भय छोड़कर परम गतिको प्राप्त होता है। जो मृत्युपर्यन्त काशीका परित्याग नहीं करता, उसकी केवल ब्रह्महत्या ही नहीं दूर होती, अविद्या भी दूर हो जाती है। जो अनन्यचित्त होकर काशीक्षेत्रको नहीं छोड़ता, वह जरा-मृत्यु तथा गर्भवासके अत्यन्त दुःसह दुःखको त्याग देता है। जो बुद्धिमान् मानव इस पृथ्वीपर फिर जन्म लेना नहीं चाहता, वह देवताओं तथा ऋषियोंद्वारा सेवित काशीक्षेत्रका कभी त्याग न करे। अन्तकालमें बातसे पीड़ित हुए मनुष्यके मर्मस्थान जब विदीर्ण होने लगते हैं, उस समय वह अपनी सुध-बुध खो बैठता है। इसी समय साक्षात् भगवान् विश्वनाथ प्राणत्यागकालमें उपस्थित हो उस मुमूर्षु जीवको तारक मन्त्रका उपदेश देते हैं, जिससे वह शिवस्वरूप हो जाता है। अतः अतिशय पापोंसे भरे हुए इस मानव-शरीरको अनित्य जानकर मनुष्य संसारभयका नाश करनेवाले काशीक्षेत्रका सेवन करे। जो विघ्नोंसे आहत होनेपर भी काशीक्षेत्रका त्याग नहीं करता, वह मोक्ष-सम्पत्तिको पाकर ऐसी स्थितिमें पहुँच जाता है, जहाँ दुःखका सर्वथा अभाव है। अतः कौन ऐसा बुद्धिमान् पुरुष है, जो बड़े-बड़े पापपुंजका नाश तथा पुण्योंकी वृद्धि करनेवाली और अन्तमें भोग एवं मोक्ष देनेवाली काशीपुरीका सेवन न करेगा? अविमुक्त क्षेत्रके माहात्म्यका मैं केवल छः मुखोंसे किस प्रकार वर्णन कर सकता हूँ, जब कि शेषनाग सहस्र मुखोंसे भी उसका वर्णन करनेमें असमर्थ हैं।

काशीकी उत्पत्ति-कथा, काशी और मणिकर्णिकाका माहात्म्य

अगस्त्यजीने पूछा—भगवन्! यह अविमुक्त क्षेत्र इस भूतलपर कबसे प्रसिद्ध हुआ और किस प्रकार यह मोक्ष देनेवाला हुआ?

स्कन्द बोले—मुने! मेरे पिता महादेवजीने माता पार्वतीको इसी प्रश्नका उत्तर इस प्रकार दिया था—'महाप्रलयकालमें समस्त चराचर प्राणी नष्ट हो गये थे। सर्वत्र अन्धकार छा रहा था। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, दिन, रात आदि कुछ भी नहीं था। केवल वह सत्स्वरूप ब्रह्म ही शेष था, जिसका श्रुति '**एकमेवाद्वितीयम्**' कहकर वर्णन करती है। वह मन और वाणीका विषय नहीं है। उसका न कोई नाम है, न रूप। वह सत्य, ज्ञान, अनन्त, आनन्दस्वरूप एवं परम प्रकाशमय है। वहाँ किसी भी प्रमाणकी पहुँच नहीं है। वह आधाररहित, निर्विकार एवं निराकार है। निर्गुण, योगिगम्य, सर्वव्यापी, एकमात्र कारण, निर्विकल्प, कर्मोंके आरम्भोंसे रहित, मायासे परे और उपद्रवशून्य है। जिस परमात्माके लिये इस प्रकार विशेषण दिये जाते हैं, वह कल्पान्तमें अकेला ही था। कल्पके आदिमें उसके मनमें यह संकल्प हुआ कि 'मैं एकसे दो हो जाऊँ।' अत: यद्यपि वह निराकार है तो भी उसने अपनी लीलाशक्तिसे साकाररूप धारण किया। परमेश्वरके संकल्पसे प्रकट हुई वह द्वितीय मूर्ति सम्पूर्ण ऐश्वर्य-गुणोंसे युक्त, सर्वज्ञानमयी, शुभ, सर्वव्यापक, सर्वस्वरूप, सबकी साक्षी, सबको उत्पन्न करनेवाली और सबके लिये एकमात्र वन्दनीय थी। प्रिये! उस निराकार परब्रह्मकी वह मूर्ति मैं ही हूँ। प्राचीन और अर्वाचीन विद्वान् मुझे ईश्वर कहते हैं। तदनन्तर साकाररूपमें प्रकट होकर भी मैं अकेला ही स्वेच्छानुसार विहार करता रहा। फिर अपने शरीरसे कभी अलग न होनेवाली तुम प्रकृतिको मैंने अपने ही विग्रहसे प्रकट किया। तुम्हीं प्रधान, प्रकृति और गुणवती माया हो। तुम्हें बुद्धितत्त्वकी जननी तथा निर्विकार बताया जाता है। फिर एक ही समय मुझ कालस्वरूप आदिपुरुषने तुम शक्तिके साथ उस काशीक्षेत्रको भी प्रकट किया।

स्कन्द कहते हैं—मुने! वह शक्ति प्रकृति कही गयी है और ईश्वरको परम पुरुष कहा गया है। वे दोनों परमानन्दस्वरूपसे उस परमानन्दमय काशीक्षेत्रमें रमण करने लगे। उस क्षेत्रका परिमाण पाँच कोसका बताया गया है। मुने! प्रलयकालमें भी उन दोनों (शिव-पार्वती)-ने उस क्षेत्रका कभी त्याग नहीं किया है, इसलिये उसे 'अविमुक्त' क्षेत्र कहते हैं। जब यह भूमण्डल नहीं रहता और जब जलकी भी सत्ता नहीं रह जाती, उस समय अपने विहारके लिये जगदीश्वर शिवने इस क्षेत्रका निर्माण किया है। कुम्भज! काशीक्षेत्रके इस रहस्यको कोई नहीं जानता। यह काशीक्षेत्र भगवान् शिवके आनन्दका हेतु है, इसलिये उन्होंने पहले इसका नाम 'आनन्दवन' रखा था। उस आनन्दकाननमें इधर-उधर जो सम्पूर्ण शिवलिंग हैं, उन्हें आनन्दकन्दके बीजोंके अंकुरकी भाँति जानना चाहिये। तदनन्तर भगवान् शिवने सच्चिदानन्दरूपिणी जगदम्बाके साथ अपने बायें अंगमें अमृतकी वर्षा करनेवाली दृष्टि डाली। तब उससे एक त्रिभुवनसुन्दर पुरुष प्रकट हुआ, जो परम शान्त, सत्त्वगुणसे पूर्ण, समुद्रसे भी अधिक गम्भीर और क्षमावान् था। उसके अंगोंकी कान्ति इन्द्रनीलमणिके समान श्याम थी। नेत्र विकसित कमलदलके समान सुन्दर थे। उसने सुवर्णरंगके दो सुन्दर पीताम्बरोंसे अपने शरीरको आच्छादित कर रखा था। वह सुन्दर एवं प्रचण्ड युगल बाहुदण्डोंसे सुशोभित था। उसके नाभिकमलसे बड़ी उत्तम सुगन्ध फैल रही थी। वह अकेला ही सम्पूर्ण गुणोंका आश्रय और अकेला ही समस्त कलाओंकी निधि था। वह एक ही सब पुरुषोंसे उत्तम था, इसलिये 'पुरुषोत्तम' कहलाया। तत्पश्चात् महामहिमासे विभूषित उस महान् पुरुषको देखकर

महादेवजीने कहा—'अच्युत! तुम महाविष्णु हो, तुम्हारे निःश्वाससे वेद प्रकट होंगे और उनसे तुम सब कुछ जानोगे।' उनसे ऐसा कहकर भगवान् शिव शिवाके साथ पुनः आनन्दकाननमें प्रवेश कर गये।

तत्पश्चात् भगवान् विष्णुने क्षणभर ध्यानमें तत्पर हो तपस्यामें ही मन लगाया। उन्होंने अपने चक्रसे एक सुन्दर पुष्करिणी खोदकर उसे अपने शरीरके

पसीनेके जलसे भर दिया। फिर उसीके किनारे घोर तपस्या की। तब शिवजी पार्वतीजीके साथ वहाँ प्रकट हुए और बोले—'महाविष्णो! वर माँगो।'

श्रीविष्णु बोले—देवदेव महेश्वर! यदि आप प्रसन्न हैं तो मैं सदा भवानीसहित आपका दर्शन करना चाहता हूँ।

भगवान् शिव बोले—'एवमस्तु'। जनार्दन! इस स्थानपर मेरी मणिजटित कर्णिका (मणिमय कुण्डल) गिर पड़ी है, इसलिये इस तीर्थका नाम मणिकर्णिका हो।

श्रीविष्णुने कहा—प्रभो! यहाँ मुक्तामय कुण्डल गिरनेसे यह उत्तम तीर्थ मुक्तिका प्रधान क्षेत्र हो। यहाँ शिवस्वरूप अनिर्वचनीय ज्योति प्रकाशित होती है, इसलिये इसका दूसरा नाम 'काशी' प्रसिद्ध हो। चार प्रकारके जीवसमुदायमें ब्रह्मासे लेकर कीटतक जितने भी जीव हैं, वे सब काशीमें मरनेपर मोक्षको प्राप्त हों तथा इस मणिकर्णिका नामक श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान, सन्ध्या, जप, होम, वेदाध्ययन, तर्पण, पिण्डदान, गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, अश्व, दीप, अन्न, वस्त्र, आभूषण और कन्या—इन सबका दान, अनेक यज्ञ, व्रतोद्यापन, वृषोत्सर्ग और शिवलिंग आदिकी स्थापना—इत्यादि शुभकर्मोंको जो बुद्धिमान् मनुष्य करे, उसके उस कर्मका फल मोक्ष हो। जो है, जो होगा और जो हो चुका है, उन सबसे यह क्षेत्र अधिक एवं शुभोदयकारी हो। काशीका नाम लेनेवाले लोगोंके भी पापका सदा ही क्षय हो।

श्रीमहादेवजी बोले—महाबाहु विष्णु! तुम नाना प्रकारकी यथायोग्य सृष्टि करो और जो पापके मार्गपर चलनेवाले दुष्टात्मा हैं, उनका संहार करनेमें कारण बनो। यह पाँच-पाँच कोसका लम्बा-चौड़ा क्षेत्र काशीधाम मुझे बहुत प्रिय है। यहाँ केवल मेरी आज्ञा चल सकती है, यमराज आदि दूसरोंकी नहीं। अविमुक्त क्षेत्रमें निवास करनेवाले पापी जीवोंका भी मैं ही शासक हूँ, दूसरा नहीं। काशीसे सौ योजन दूर रहकर भी जो इस क्षेत्रका मन-ही-मन स्मरण करता है, वह पापोंसे पीड़ित नहीं होता। काशीमें पहुँचकर मनुष्य उसके पुण्यसे मोक्षपदका भागी होता है। जो मन-इन्द्रियोंको वशमें रखकर काशीमें बहुत समयतक निवास करके भी दैवयोगसे अन्यत्र मृत्युको प्राप्त होता है, वह भी स्वर्गीय सुख भोगकर अन्तमें काशीको प्राप्त हो मोक्षसम्पत्तिको पा लेता है। जो भगवान् विश्वनाथकी प्रसन्नताके लिये काशीमें न्यायपूर्वक धन देता है, अथवा निधन (मृत्यु)-को प्राप्त होता है, वह धन्य है और वही धर्मका ज्ञाता है। पाँच कोसका लम्बा-चौड़ा सम्पूर्ण अविमुक्त क्षेत्र विश्वनाथ नामसे प्रसिद्ध एक ज्योतिर्लिंगस्वरूप है, ऐसा जानना चाहिये। जैसे आकाशके एक देशमें स्थित होनेपर भी सर्वगत सूर्यमण्डल सबको दिखायी देता

है, उसी प्रकार विश्वनाथ केवल काशीमें स्थित होकर भी सर्वव्यापी होनेके कारण सर्वत्र उपलब्ध होते हैं। जो क्षेत्रकी महिमाको नहीं जानता, जिसमें श्रद्धाका सर्वथा अभाव है, वह भी यदि समयानुसार काशीमें प्रवेश कर गया, तो निष्पाप हो जाता है और यदि वहाँ उसकी मृत्यु हो गयी तो वह भी मोक्ष प्राप्त कर लेता है। काशीमें पाप करके भी मनुष्य यदि काशीमें ही मर जाय तो पहले रुद्रपिशाच होकर वह पुनः मुक्तिको प्राप्त कर लेगा। इस शरीरको नाशवान् जानकर और गर्भवासके समय होनेवाली वेदनाको याद करके धन-धान्यसे सम्पन्न राज्यको भी त्यागकर निरन्तर काशीपुरीका सेवन करना चाहिये। अभी मैं नौजवान हूँ, अभी मेरी मृत्यु बहुत दूर है, ऐसी बात चित्तमें कभी नहीं लानी चाहिये। वृद्धावस्थाको प्राप्त होनेके पहले ही पुरानी झोंपड़ीकी तरह अपने तुच्छ गृहको त्यागकर शीघ्र शंकरजीकी पुरी काशीकी यात्रा करनी चाहिये।

श्रीगंगाजीकी महिमा

श्रीमहादेवजी कहते हैं—विष्णो! सूर्यवंशके महातेजस्वी परम धार्मिक राजा भगीरथ अपने पितामहोंका उद्धार करनेकी इच्छासे तपस्याके लिये पर्वतश्रेष्ठ हिमवान्‌को गये। हरे! ब्राह्मणकी शापाग्निसे दग्ध होकर बड़ी भारी दुर्गतिमें पड़े हुए जीवोंको गंगाके सिवा दूसरा कौन स्वर्गलोकमें पहुँचा सकता है, क्योंकि वह शुद्ध, विद्यास्वरूपा, इच्छा, ज्ञान एवं क्रियारूप तीन शक्तियोंवाली, दयामयी, आनन्दामृतरूपा तथा शुद्ध धर्मस्वरूपिणी हैं। जगद्धात्री परब्रह्मस्वरूपिणी गंगाको मैं अखिल विश्वकी रक्षा करनेके लिये लीलापूर्वक अपने मस्तकपर धारण करता हूँ। विष्णो! जो गंगाजीका सेवन करता है, उसने सब तीर्थोंमें स्नान कर लिया, सब यज्ञोंकी दीक्षा ले ली और सम्पूर्ण व्रतोंका अनुष्ठान पूरा कर लिया। कलियुगमें कलुषित चित्तवाले, पराये धनका लोभ रखनेवाले तथा विधिहीन कर्म करनेवाले मनुष्योंके लिये गंगाजीके बिना दूसरी कोई गति नहीं है। जो दूर रहकर भी गंगाजीके माहात्म्यको जानता है और भगवान् गोविन्दमें भक्ति रखता है, वह अयोग्य हो तो भी गंगा उसपर प्रसन्न होती हैं। अज्ञान, राग और लोभ आदिसे मोहित चित्तवाले पुरुषोंकी धर्म और गंगामें विशेष श्रद्धा नहीं होती। गंगाके गर्भमें मेरा तेजस्वरूप अग्नि है, वह मेरे वीर्यसे सुरक्षित है। अतएव सब दोषोंको जलानेवाली तथा सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली है। जैसे वज्रका मारा हुआ पर्वत सैकड़ों टुकड़ोंमें बिखर जाता है, उसी प्रकार पापोंका समूह गंगाके स्मरणमात्रसे शतधा नष्ट हो जाता है। जो चलते, खड़े होते, जप और ध्यान करते, खाते-पीते, जागते-सोते तथा बात करते समय भी सदा गंगाजीका स्मरण करता रहता है, वह संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है[१]। जो पितरोंके उद्देश्यसे भक्तिपूर्वक गुड़, घी और तिलके साथ मधुयुक्त खीर गंगामें डालते हैं, उसके पितर सौ वर्षतक तृप्त बने रहते हैं और वे सन्तुष्ट होकर अपनी सन्तानोंको नाना प्रकारकी मनोवांछित वस्तुएँ प्रदान करते हैं। जैसे बिना इच्छाके भी स्पर्श करनेपर आग जला ही देती है, उसी प्रकार अनिच्छासे भी अपने जलमें स्नान करनेपर गंगा मनुष्यके पापोंको भस्म कर देती हैं[२]। जो गंगा-स्नानके लिये उद्यत होकर चलता है और मार्गमें ही मर जाता है, वह

१. गच्छंस्तिष्ठन् जपन् ध्यायन् भुञ्जन् जाग्रत् स्वपन् वदन्। यः स्मरेत् सततं गङ्गां स हि मुच्येत बन्धनात्॥
(स्क० पु०, का० पू० २७। ३७)

२. अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहनो हि यथा दहेत्। अनिच्छयापि संस्नाता गङ्गा पापं तथा दहेत्॥
(स्क० पु०, का० पू० २७। ४९)

भी निःसन्देह गंगा-स्नानका फल पाता है। जो लोग खोटी बुद्धिवाले, दुराचारी, कोरा तर्क करनेवाले और अधिक सन्देह रखनेवाले मोहित मनुष्य हैं, वे गंगाको अन्य साधारण नदियोंके समान ही देखते हैं। जैसे क्रोधसे तपका, कामसे बुद्धिका, अन्यायसे लक्ष्मीका, अभिमानसे विद्याका तथा पाखण्ड, कुटिलता और छल-कपटसे धर्मका नाश होता है, उसी प्रकार गंगाजीके दर्शनमात्रसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जैसे मन्त्रोंमें ॐकार, धर्मोंमें अहिंसा और कमनीय वस्तुओंमें लक्ष्मी श्रेष्ठ हैं तथा जिस प्रकार विद्याओंमें आत्मविद्या और स्त्रियोंमें गौरीदेवी उत्तम हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थोंमें गंगातीर्थ विशेष माना गया है। हरे! जो परम बुद्धिमान् मनुष्य तुममें और मुझमें भेद-भाव नहीं करता, वही शिवभक्त जानने योग्य है। अनेक रूपवाले पितर सदा यह गाथा गाते हैं कि 'क्या हमारे कुलमें भी कोई गंगा नहानेवाला होगा, जो विधि और श्रद्धाके साथ गंगा-स्नान कर देवताओं तथा ऋषियोंका भलीभाँति तर्पण करके दीनों, अनाथों और दुःखियोंको तृप्त करते हुए हमारे निमित्त जलांजलि देगा? हमारे कुलमें कोई ऐसा पुरुष उत्पन्न हो, जो भगवान् शिव और विष्णुमें समान दृष्टि रखते हुए उनके लिये मन्दिर बनवावे और भक्तिपूर्वक उस मन्दिरमें झाड़ू देने आदिका कार्य करे।' जो गंगाका सेवन करता है, वही मुनि है और वही पण्डित है। वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष— चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धि करके कृतार्थ जानने योग्य है। गंगास्नान करनेके लिये तिथि, नक्षत्र और पूर्व आदि दिशाका विचार नहीं करना चाहिये; क्योंकि गंगामें स्नान करनेमात्रसे समस्त संचित पापका नाश हो जाता है। जो प्रतिदिन आदरसे गंगाजीका माहात्म्य सुनते हैं, उन्हें गंगा-स्नानका फल होता है। जो पितरोंके उद्देश्यसे गंगाजलके द्वारा शिवलिंगको स्नान कराते हैं, उनके पितर यदि बड़े भारी नरकमें पड़े हों तो भी तृप्त हो जाते हैं। जो एक बार भी ताँबेके पात्रमें रखे हुए अष्टद्रव्ययुक्त गंगाजलसे भगवान् सूर्यको अर्घ्य देते हैं, वे अपने पितरोंके साथ सूर्यलोकमें जाकर प्रतिष्ठित होते हैं। जल, दूध, कुशका अग्रभाग, घी, मधु, गायका दही, लाल कनेर तथा लाल चन्दन— इन आठ अंगोंसे युक्त अष्टांग अर्घ्य बताया गया है, जो सूर्यदेवको अधिक सन्तुष्ट करनेवाला है[1]। चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें, व्यतीपात योगमें, विषुवयोगमें[2] तथा दोनों अयनोंमें (मकर और कर्कको संक्रान्तिके दिन) किया हुआ गंगा-स्नान लाखगुना पुण्य देनेवाला होता है। यदि सोमवारको चन्द्रग्रहण तथा रविवारको सूर्यग्रहण हो तो वह चूड़ामणि नामक पर्व कहलाता है। उसमें किया हुआ गंगा-स्नान असंख्य पुण्यदायक है। ज्येष्ठमासके शुक्ल पक्षमें हस्त नक्षत्रयुक्त दशमी तिथिको स्त्री हो या पुरुष भक्तिभावसे गंगाजीके तटपर रात्रिमें जागरण करे और दस प्रकारके दस-दस सुगन्धित पुष्प, फल, नैवेद्य, दस दीप और दशांग धूपके द्वारा बुद्धिमान् पुरुष श्रद्धा और विधिके साथ दस बार गंगाजीकी पूजा करे। गंगाजीके जलमें घृतसहित तिलोंकी दस अंजलि डाले। फिर गुड़ और सत्तूके दस पिण्ड बनाकर उन्हें भी गंगाजीमें डाले। यह सब कार्य मन्त्रद्वारा होना चाहिये। मन्त्र इस प्रकार है— '**ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गंगायै स्वाहा**।' यह बीस अक्षरका मन्त्र है। गंगाजीके लिये पूजा, दान, जप, होम सब इसी मन्त्रसे करने योग्य है। इस प्रकार मन्त्रोच्चारणके साथ धूप, दीप आदि समर्पण करते हुए पूजा करके मुझ शिवका, तुम

१- आपः क्षीरं कुशाग्राणि घृतं मधु गवां दधि। रक्तानि करवीराणि रक्तचन्दनमित्यपि॥
अष्टाङ्गार्घ्योऽयमुद्दिष्टस्त्वतीव रवितोषणः॥
(स्क० पु०, का० पू० २७। ९८-९९)

२- ज्योतिषके अनुसार वह समय जब कि सूर्य विषुवरेखापर पहुँचता है और दिन-रात दोनों बराबर होते हैं, विषुवयोग कहलाता है। ऐसा समय वर्षमें दो बार आता है। एक तो सौर चैत्रमासकी नवमी तिथिको और दूसरा सौर आश्विनकी नवमी तिथिको।

विष्णुका, ब्रह्माका, सूर्यका, हिमवान् पर्वतका और राजा भगीरथका भलीभाँति पूजन करे। दस ब्राह्मणोंको आदरपूर्वक दस सेर तिल दे। इस प्रकार विधानसे पूजा सम्पन्न करके दिनभर उपवास करनेवाला पुरुष निम्नांकित दस पापोंसे मुक्त हो जाता है। बिना दी हुई वस्तुको लेना, निषिद्ध हिंसा, परस्त्री-संगम—यह तीन प्रकारका दैहिक पाप माना गया है। कठोर वचन मुँहसे निकालना, झूठ बोलना, सब ओर चुगली करना और अंट-संट बातें बकना—ये वाणीसे होनेवाले चार प्रकारके पाप हैं। दूसरेके धनको लेनेका विचार करना, मनसे दूसरोंका बुरा सोचना और असत्य वस्तुओंमें आग्रह रखना—ये तीन प्रकारके मानसिक पाप कहे गये हैं *। पूर्वोक्त प्रकारसे दान-पूजा और व्रत करनेवाला पुरुष दस जन्मोंमें उपार्जित इन दस प्रकारके पापोंसे निःसन्देह छूट जाता है।

तदनन्तर गंगाजीके सम्मुख श्रद्धापूर्वक इस स्तोत्रको पढ़े—'ॐ' शिवस्वरूपा श्रीगंगाजीको नमस्कार है। कल्याणदायिनी गंगाको नमस्कार है। देवि गंगे! आप विष्णुरूपिणी हैं, आपको नमस्कार है। ब्रह्मस्वरूपा! आपको नमस्कार है, रुद्ररूपिणी! आपको नमस्कार है। शंकरप्रिया! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। देवस्वरूपिणी! आपको नमस्कार है। ओषधिरूपा! आपको नमस्कार है। आप सबके सम्पूर्ण रोगोंकी श्रेष्ठ वैद्या हैं, आपको नमस्कार है। स्थावर और जंगम प्राणियोंसे प्रकट होनेवाले विषका आप नाश करनेवाली हैं। आपको नमस्कार है। संसाररूपी विषका नाश करनेवाली जीवनरूपा आपको नमस्कार है। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों प्रकारके क्लेशोंका संहार करनेवाली आपको नमस्कार है। प्राणोंकी स्वामिनी आपको नमस्कार है, नमस्कार है। शान्तिका विस्तार करनेवाली शुद्धस्वरूपा आपको नमस्कार है। सबको शुद्ध करनेवाली तथा पापोंकी शत्रुस्वरूपा आपको नमस्कार है। भोग, मोक्ष तथा कल्याण प्रदान करनेवाली आपको बार-बार नमस्कार है। भोग और उपभोग देनेवाली भोगवती नामसे प्रसिद्ध आप पातालगंगाको नमस्कार है। मन्दाकिनी नामसे प्रसिद्ध तथा स्वर्ग प्रदान करनेवाली आप आकाशगंगाको बार-बार नमस्कार है। आप भूतल, आकाश और पाताल—तीन मार्गोंसे जानेवाली और तीनों लोकोंकी आभूषणस्वरूपा हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। गंगाद्वार, प्रयाग और गंगासागर-संगम—इन तीन विशुद्ध तीर्थस्थानोंमें विराजमान आपको नमस्कार है। क्षमावती आपको नमस्कार है। गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्निरूप त्रिविध अग्नियोंमें स्थित रहनेवाली तेजोमयी आपको बार-बार नमस्कार है। आप ही अलकनन्दा हैं, आपको नमस्कार है। शिवलिंग धारण करनेवाली आपको नमस्कार है। सुधाधारामयी आपको नमस्कार है। जगत्‌में मुख्य सरितारूप आपको नमस्कार है। रेवती-नक्षत्ररूपा आपको नमस्कार है। बृहती नामसे प्रसिद्ध आपको नमस्कार है। लोकोंको धारण करनेवाली आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्वके लिये मित्ररूपा आपको नमस्कार है। सबको समृद्धि देकर आनन्दित करनेवाली आपको बारंबार नमस्कार है। आप पृथ्वीरूपा हैं, आपको नमस्कार है। आपका जल कल्याणमय है और आप उत्तम धर्मस्वरूपा हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। बड़े-छोटे सैकड़ों प्राणियोंसे सेवित आपको नमस्कार है। सबको तारनेवाली आपको नमस्कार है, नमस्कार है। संसार-बन्धनका उच्छेद करनेवाली अद्वैतरूपा आपको नमस्कार है। आप परम शान्त, सर्वश्रेष्ठ

---

* अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः। परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम्॥
पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चैव सर्वशः। असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्॥
परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम्। वितथाभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम्॥
(स्क० पु०, का० पू० २७। १५२—१५४)

तथा मनोवांछित वर देनेवाली हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। आप प्रलयकालमें उग्ररूपा हैं, अन्य समयमें सदा सुखका भोग करानेवाली हैं तथा उत्तम जीवन प्रदान करनेवाली हैं, आपको नमस्कार है। आप ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मज्ञान देनेवाली तथा पापोंका नाश करनेवाली हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। प्रणतजनोंकी पीड़ाका नाश करनेवाली जगन्माता आपको नमस्कार है। आप समस्त विपत्तियोंकी शत्रुभूता तथा सबके लिये मंगलस्वरूपा हैं, आपके लिये बार-बार नमस्कार है। शरणागतों, दीनों तथा पीड़ितोंकी रक्षामें संलग्न रहनेवाली और सबकी पीड़ा दूर करनेवाली देवि नारायणि! आपको नमस्कार है। आप पाप-ताप अथवा अविद्यारूपी मलसे निर्लिप्त, दुर्गम दुःखका नाश करनेवाली तथा दक्ष हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। आप पर और अपर सबसे परे हैं। मोक्षदायिनी गंगे! आपको नमस्कार है। गंगे! आप मेरे आगे हों, गंगे! आप मेरे पीछे रहें, गंगे! आप मेरे उभयपार्श्वमें स्थित हों तथा गंगे! मेरी आपमें ही स्थिति हो। आकाशगामिनी कल्याणमयी गंगे! आदि, मध्य और अन्तमें सर्वत्र आप हैं। गंगे! आप ही मूल-प्रकृति हैं, आप ही परम पुरुष हैं तथा आप ही परमात्मा शिव हैं; शिवे! आपको नमस्कार है*। जो श्रद्धापूर्वक इस स्तोत्रको पढ़ता और सुनता है, वह मन, वाणी और शरीरद्वारा होनेवाले पूर्वोक्त दस प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है। यह स्तोत्र जिसके घरमें लिखकर रखा हुआ हो, उसे कभी अग्नि, चोर और सर्प आदिका भय नहीं होता। ज्येष्ठमासके शुक्ल पक्षमें हस्त नक्षत्रसहित दशमी तिथिका यदि बुधवारसे योग हो, तो उस दिन गंगाजीके जलमें खड़ा होकर जो दस बार इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह दरिद्र हो या असमर्थ, वह भी उसी फलको प्राप्त होता है, जो पूर्वोक्त विधिसे यत्नपूर्वक गंगाजीकी पूजा करनेपर उपलब्ध होनेवाला बताया गया है। विष्णो! जैसे मैं हूँ, वैसे तुम हो, जैसे तुम हो, वैसी उमादेवी हैं और जैसी उमादेवी हैं, वैसी गंगा हैं। इन चारों रूपोंमें भेद नहीं है।

* ॐ नमः शिवायै गंगायै शिवदायै नमो नमः। नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमो नमः। सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये॥
सर्वस्य सर्वव्याधीनां भिषक्छ्रेष्ठ्यै नमोऽस्तु ते। स्थास्नुजङ्गमसंभूतविषहन्त्र्यै नमोऽस्तु ते॥
संसारविषनाशिन्यै जीवनायै नमोऽस्तु ते। तापत्रितयसंहन्त्र्यै प्राणेश्यै ते नमो नमः॥
शान्तिसन्तानकारिण्यै नमस्ते शुद्धमूर्तये। सर्वसंशुद्धिकारिण्यै नमः पापारिमूर्तये॥
भुक्तिमुक्तिप्रदायिन्यै भद्रदायै नमो नमः। भोगोपभोगदायिन्यै भोगवत्यै नमोऽस्तु ते॥
मन्दाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमो नमः। नमस्त्रैलोक्यभूषायै त्रिपथायै नमो नमः॥
नमस्त्रिशुक्लसंस्थायै क्षमावत्यै नमो नमः। त्रिहुताशनसंस्थायै तेजोवत्यै नमो नमः॥
नन्दायै लिङ्गधारिण्यै सुधाधारात्मने नमः। नमस्ते विश्वमुख्यायै रेवत्यै ते नमो नमः॥
बृहत्यै ते नमस्तेऽस्तु लोकधात्र्यै नमोऽस्तु ते। नमस्ते विश्वमित्रायै नन्दिन्यै ते नमो नमः॥
पृथ्व्यै शिवामृतायै च सुवृषायै नमो नमः। परापरशताढ्यायै तारायै ते नमो नमः॥
पाशजालनिकृन्तिन्यै अभिन्नायै नमोऽस्तु ते। शान्तायै च वरिष्ठायै वरदायै नमो नमः॥
उग्रायै सुखजग्ध्यै च सञ्जीविन्यै नमोऽस्तु ते। ब्रह्मिष्ठायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमो नमः॥
प्रणतार्तिप्रभञ्जिन्यै जगन्मात्रे नमोऽस्तु ते। सर्वापत्प्रतिपक्षायै मङ्गलायै नमो नमः॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे। सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥
निर्लेपायै दुर्गहन्त्र्यै दक्षायै ते नमो नमः। परापरपरायै च गङ्गे निर्वाणदायिनि॥
गङ्गे ममाग्रतो भूया गङ्गे मे तिष्ठ पृष्ठतः। गङ्गे मे पार्श्वयोरेधि गङ्गे त्वय्यस्तु मे स्थितिः॥
आदौ त्वमन्ते मध्ये च सर्वं त्वं गाङ्गते शिवे।
त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं पुमान् पर एव हि। गङ्गे त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमः शिवे॥
(स्क० पु०, का० पू० २७। १५७—१७४)

गंगाजीकी महिमा

भगवान् शिव कहते हैं—जो तीनों लोकोंमें प्रवाहित होनेवाली गंगाजीके तटपर जाकर एक बार भी पिण्डदान करता है, वह तिलमिश्रित जलके द्वारा अपने पितरोंका भवसागरसे उद्धार कर देता है। सम्पूर्ण देवता और पितर गंगाजीमें सदा वर्तमान रहते हैं इसलिये वहाँ उनका आवाहन और विसर्जन नहीं होता। पिताके कुलमें अथवा माताके कुलमें तथा गुरु, श्वशुर और भाई-बन्धुओंके कुलमें जो अपने सम्बन्धी मरे हों; अथवा जो अन्य बन्धु-बान्धव मृत्युको प्राप्त हुए हों; जो दाँत निकलनेके पहले अथवा गर्भमें ही पीड़ित होकर मरे हों; जो अग्नि, बिजली और चोरके द्वारा मरे हों; जो व्याघ्र अथवा अन्य दाढ़ोंवाले हिंसक जीवोंसे मारे गये हों; जो फाँसी लगाकर या ऊपरसे नीचे गिरकर मरे हों; जिन्होंने आत्मघात किया हो अथवा जो अपना शरीर बेचनेवाले, चोर, यज्ञके अनधिकारियोंसे यज्ञ करानेवाले, रस-विक्रयी, पापरोगी, घरोंमें आग लगानेवाले, जहर देनेवाले अथवा गोहत्यारे रहे हों और अपने कुलमें ही उनका जन्म हुआ रहा हो; उनको भी यदि एक बार मनुष्य विधिपूर्वक गंगाजलसे तर्पण करे तो वे भी स्वर्गलोकमें पहुँच जाते हैं और यदि पहलेसे स्वर्गमें हों तो मोक्षको प्राप्त होते हैं। तीनों लोकोंमें जो कोई भी मनोवांछित फल देनेवाले हैं, वे सब काशीमें उत्तरवाहिनी गंगाका सेवन करते हैं। केवल गंगा भी मुक्ति देनेमें समर्थ हैं, ऐसा निर्णय हो चुका है। किंतु अविमुक्त क्षेत्रमें मेरे निवासस्थानके गौरवसे वे विशेषरूपसे मुक्तिदायिनी होती हैं। पापोंसे चंचल चित्तवाले तथा संसाररूपी रोगसे ग्रस्त रहनेवाले मन्दबुद्धि मनुष्योंके लिये गंगाजी ही सर्वश्रेष्ठ हैं। जो गंगाजीके तटपर टूटे-फूटे घाटोंका संस्कार करते हैं अथवा वहाँके गिरे-पड़े देवमन्दिरोंका जीर्णोद्धार करते हैं, वे मेरे लोकमें चिरकालतक अक्षय सुख भोगते हैं। मनुष्योंकी हड्डी जबतक गंगाजीके जलमें स्थित रहती है, उतने हजार वर्षोंतक वे स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होते हैं।

स्कन्दजी कहते हैं—मुनिवर अगस्त्य! वस्तुशक्तिका यह विचार अद्भुत एवं अनिर्वचनीय है। गंगाजी द्रवके रूपमें भगवान् सदाशिवकी कोई परा शक्ति हैं। करुणारूपी अमृतरससे भरे हुए देवाधिदेव भगवान् शंकरने समस्त संसारका उद्धार करनेके लिये ही गंगाजीको प्रवृत्त किया है। मुने! गंगाधर शिवने दयावश श्रुतियोंके अक्षरोंको निचोड़कर उस ब्रह्मद्रवसे ही गंगाका निर्माण किया है। जो गंगाजीके तटकी मिट्टीको अपने मस्तकपर लगाता है उसका अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाता है। गंगा अपने नामका कीर्तन करनेसे पुण्यकी वृद्धि और पापका नाश करती है। दर्शन, स्पर्श, जलपान तथा उसमें स्नान करनेसे क्रमशः दसगुना फल होता है, ऐसा जानना चाहिये। ऋषियोंद्वारा सेवित, भगवान् विष्णुके चरणोंसे उत्पन्न, अति प्राचीन तथा परम पुण्यमयी धारासे युक्त भगवती गंगाकी जो लोग मनसे शरण लेते हैं वे ब्रह्मधामको प्राप्त होते हैं। जो माताकी भाँति इस संसारके जीवोंको पुत्र मानकर सदा उन्हें स्वर्गलोकको पहुँचाती है और सम्पूर्ण उत्तम गुणोंसे सम्पन्न है, उत्तम ब्रह्मलोककी इच्छा रखनेवाले जितेन्द्रिय पुरुषोंको सदा ही उस गंगाकी उपासना करनी चाहिये। जैसे ब्रह्मलोक सब लोकोंमें उत्तम है, उसी प्रकार गंगा समस्त सरिताओं और सरोवरोंसे श्रेष्ठ है। गंगाके जलमें स्नान करनेवाले पुरुषका समस्त पातक तत्काल नष्ट हो जाता है और उसे उसी क्षण महान् श्रेयकी प्राप्ति हो जाती है। गंगामें पुत्र-पौत्र आदि यदि अपने पितरोंके लिये श्रद्धापूर्वक जल देते हैं तो उस जलसे वे पितर तीन वर्षोंतक पूर्णतया तृप्त रहते हैं।

गंगासहस्रनामस्तोत्र[१]

अगस्त्यजी बोले—गंगामें स्नान किये बिना मनुष्योंका जन्म व्यर्थ ही बीतता है। क्या कोई दूसरा उपाय भी है, जिससे गंगास्नानका फल प्राप्त हो सके?

स्कन्दने कहा—अगस्त्यजी! जान पड़ता है, यही सोचकर देवाधिदेव भगवान् शंकरने अपने मस्तकपर गंगाजीको धारण कर रखा है। एक परम गोपनीय उपाय है, जिससे देवनदी गंगामें स्नान करनेका पूरा फल प्राप्त होता है। वह उपाय उसीको बतलाना चाहिये, जो भगवान् शिव और विष्णुका भक्त, शान्त, श्रद्धालु, आस्तिक तथा गर्भवाससे छूटनेकी इच्छा रखनेवाला हो। दूसरे किसीके सामने कहीं भी उसकी चर्चा नहीं करनी चाहिये। वह परम रहस्यमय साधन महापातकोंका नाश करनेवाला है। वह उपाय है— भगवती गंगाका सहस्रनामस्तोत्र। वह सम्पूर्ण उत्तम स्तोत्रोंमें श्रेष्ठ है, जपनेयोग्य मन्त्रोंमें सर्वोत्तम है और वेदोंके उपनिषद्-भागके समान मनन करनेयोग्य है। साधकको मौन होकर प्रयत्नपूर्वक इसका जप करना चाहिये। यदि पवित्र स्थान हो तो वहाँ स्वयं भी पवित्रभावसे बैठकर सुस्पष्ट अक्षरोंमें इसका पाठ करना चाहिये।

स्कन्दजी कहते हैं—ॐ नमो गङ्गादेव्यै। १ **ॐकाररूपिणी**—प्रणवरूपा, सच्चिदानन्दस्वरूपा अथवा ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूपिणी, २ **अजरा**—वृद्धावस्थासे रहित, ३ **अतुला**—तुलनारहित, ४ **अनन्ता**—जिसका कभी कहीं भी अन्त न हो, ऐसी, ५ **अमृतस्रवा**—अमृतमय जलका स्रोत बहानेवाली, ६ **अत्युदारा**—अतिशय उदार, किसीको भी शरणमें लेने अथवा सद्गति देनेमें संकोच न करनेवाली, ७ **अभया**—भयरहित, जिसका आश्रय लेनेसे संसार-भयका निवारण हो जाता है, ऐसी, ८ **अशोका**—शोकसे रहित अथवा जिससे शोकका निवारण होता है, ऐसी, ९ **अलकनन्दा**—अलकावासियोंको आनन्द देनेवाली अथवा केशोंमें जिसके जलका स्पर्श होनेसे आनन्द प्राप्त होता है, ऐसी, १० **अमृता**—सुधारूपिणी अथवा मुक्ति देनेके कारण अमृतस्वरूपा, ११ **अमला**—निर्मल जलवाली अथवा संसाररूपी मलका निवारण करनेवाली।[२]

१२ **अनाथवत्सला**—अनाथोंपर दया करनेवाली, १३ **अमोघा**—जिनकी सेवा कभी व्यर्थ नहीं जाती, ऐसी, १४ **अपांयोनिः**—जलकी उत्पत्तिका स्थान, १५ **अमृतप्रदा**—मोक्ष प्रदान करनेवाली, १६ **अव्यक्तलक्षणा**—अव्यक्तब्रह्मस्वरूपा अथवा अव्याकृत प्रकृतिरूपा, १७ **अक्षोभ्या**—किसीके द्वारा भी क्षुब्ध न की जा सकनेवाली, १८ **अनवच्छिन्ना**—अपने दिव्य एवं व्यापक स्वरूपके कारण त्रिविध परिच्छेदसे शून्य, १९ **अपरा**—जिसके लिये कोई भी पराया नहीं है अथवा जिससे श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है, ऐसी, २० **अजिता**—किसीसे भी परास्त न होनेवाली।[३]

२१ **अनाथनाथा**—अनाथोंको भी शरण देनेवाली, २२ **अभीष्टार्थसिद्धिदा**—भक्तजनोंके अभीष्ट अर्थकी सिद्धि करनेवाली, २३ **अनङ्गवर्द्धिनी**—कामनाकी पूर्ति या मनोवांछित भोगोंकी वृद्धि करनेवाली अथवा कामभावका नाश या निराकार ब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाली, २४ **अणिमादि-गुणा**—अणिमा आदि आठ प्रकारके ऐश्वर्य प्रदान करना जिसका स्वाभाविक गुण है, ऐसी, २५ **आधारा**—'अ' अर्थात् विष्णु आधार हैं जिसके, ऐसी, २६ **अग्रगण्या**—श्रेष्ठता और पवित्रतामें सबसे प्रथम गणना करने योग्य, २७ **अलीकहारिणी**—अलीक अर्थात् अज्ञानका हरण करनेवाली।[४]

२८ **अचिन्त्यशक्तिः**—जिनकी शक्ति चिन्तनका

---

१. स्कन्दपुराण, काशीखण्ड पूर्वार्ध, अध्याय २९, श्लोक १७ से ६८ तक।

२. ॐकाररूपिण्यजरातुलानन्तामृतस्रवा । अत्युदाराभयाशोकालकनन्दामृतामला ॥

३. अनाथवत्सलामोघापांयोनिरमृतप्रदा । अव्यक्तलक्षणाक्षोभ्यानवच्छिन्नापराजिता ॥

४. अनाथनाथाभीष्टार्थसिद्धिदानङ्गवर्द्धिनी । अणिमादिगुणाऽऽधाराग्रगण्यालीकहारिणी ॥

विषय नहीं है, ऐसी, २९ **अनघा**—निष्पाप, ३० **अद्भुतरूपा**—आश्चर्यमय स्वरूपवाली, ३१ **अघहारिणी**—अपने कीर्तन, दर्शन, स्पर्श और जलस्नानसे सबके पापोंको हर लेनेवाली, ३२ **अद्रिराजसुता**—गिरिराज हिमालयकी पुत्री, ३३ **अष्टाङ्गयोगसिद्धिप्रदा**—अष्टांगयोगसे प्राप्त होनेवाली सिद्धि (मुक्ति)-को देनेवाली, ३४ **अच्युता**—अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाली अथवा विष्णुस्वरूपा।[१]

३५ **अक्षुण्णशक्तिः**—जिसकी शक्ति कभी खण्डित या कुण्ठित नहीं होती, वह, ३६ **असुदा**—अपने जीवनरूपी जलसे प्राणदान करनेवाली, ३७ **अनन्ततीर्था**—सर्वतीर्थमयी होनेके कारण असंख्य तीर्थोंसे युक्त, ३८ **अमृतोदका**—अमृतके समान मधुर अथवा मोक्षदायक जलवाली, ३९ **अनन्तमहिमा**—जिसकी महिमाका कहीं अन्त नहीं है, ऐसी, ४० **अपारा**—सीमारहित, ४१ **अनन्तसौख्यप्रदा**—मोक्ष या भगवत्प्राप्तिका अक्षय सुख प्रदान करनेवाली, ४२ **अन्नदा**—भोग प्रदान करनेवाली।[२]

४३ **अशेषदेवतामूर्तिः**—सम्पूर्ण देवस्वरूपा, ४४ **अघोरा**—शान्तस्वरूपा, ४५ **अमृतरूपिणी**—मोक्षस्वरूपा, ४६ **अविद्याजालशमनी**—अविद्यारूपी आवरणका नाश करनेवाली, ४७ **अप्रतर्क्यगतिप्रदा**—जहाँ मन और वाणीकी पहुँच नहीं है, ऐसी मोक्षरूप गति प्रदान करनेवाली।[३]

४८ **अशेषविघ्नसंहर्त्री**—समस्त विघ्नोंका संहार करनेवाली, ४९ **अशेषगुणगुम्फिता**—सम्पूर्ण सद्‌गुणोंसे ग्रथित, ५० **अज्ञानतिमिरज्योतिः**—अज्ञानमय अन्धकारका नाश करनेवाली ज्योतिः-स्वरूपा, ५१ **अनुग्रहपरायणा**—भक्तोंपर अनुग्रह करनेमें तत्पर।[४]

५२ **अभिरामा**—सब ओरसे मनोरम, ५३ **अनवद्याङ्गी**—निर्दोष स्वरूपवाली, ५४ **अनन्तसारा**—जिसके सार अर्थात् शक्तिका अन्त नहीं है, ऐसी, ५५ **अकलङ्किनी**—कलंकसे रहित, ५६ **आरोग्यदा**—अपने अमृतमय जलसे आरोग्य प्रदान करनेवाली, ५७ **आनन्दवल्ली**—दिव्य आनन्दकी प्राप्ति करानेवाली कल्पलताके समान, ५८ **आपन्नार्तिविनाशिनी**—शरणमें आये हुए जीवोंकी पीड़ा (संसार-बन्धन)-का नाश करनेवाली।[५]

५९ **आश्चर्यमूर्तिः**—आश्चर्यमय स्वरूपवाली, ६० **आयुष्या**—आयु प्रदान करनेवाली, ६१ **आढ्या**—दिव्य वैभवसे सम्पन्न, ६२ **आद्या**—सबकी कारणभूता आदिशक्ति, ६३ **आप्रा**—सब ओरसे परिपूर्ण, ६४ **आर्यसेविता**—श्रेष्ठ पुरुषों (देवता और ऋषि आदि)-के द्वारा सेवित, ६५ **आप्यायिनी**—सबको तृप्त करनेवाली, ६६ **आप्तविद्या**—ब्रह्मविद्यास्वरूपा अथवा सम्पूर्ण विद्याओंको जाननेवाली, ६७ **आख्या**—सदा और सर्वत्र प्रसिद्ध, ६८ **आनन्दा**—सुखस्वरूपा, ६९ **आश्वासदायिनी**—नरक आदिके भयसे डरे हुए प्राणियोंको सान्त्वना प्रदान करनेवाली।[६]

७० **आलस्यघ्नी**—आलस्यका नाश करनेवाली, ७१ **आपदां हन्त्री**—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक आपत्तियोंका नाश करनेवाली, ७२ **आनन्दामृतवर्षिणी**—ब्रह्मानन्दमय अमृतकी वर्षा करनेवाली, ७३ **इरावती**—इरावती नामवाली नदी अथवा इरा अर्थात् लक्ष्मीसे युक्त, ७४ **इष्टदात्री**—भक्तोंको अभीष्ट वस्तु देनेवाली, ७५ **इष्टा**—आराध्यदेवी अथवा सबके द्वारा पूजित, ७६ **इष्टापूर्तफलप्रदा**—इष्ट—यज्ञ, होम आदि और आपूर्त—कूप, तड़ाग, वापीनिर्माण आदि, इन सबके पुण्यफलको देनेवाली।[७]

७७ **इतिहासश्रुतीड्यार्था**—इतिहास और वेद दोनोंके द्वारा जिसके पुरुषार्थकी स्तुति की जाती

१. अचिन्त्यशक्तिरनघाद्भुतरूपाघहारिणी । अद्रिराजसुताष्टाङ्गयोगसिद्धिप्रदाच्युता ॥
२. अक्षुण्णशक्तिरसुदानन्ततीर्थामृतोदका । अनन्तमहिमापारानन्तसौख्यप्रदान्नदा ॥
३. अशेषदेवतामूर्तिरघोरामृतरूपिणी । अविद्याजालशमनी ह्यप्रतर्क्यगतिप्रदा ॥
४. अशेषविघ्नसंहर्त्री त्वशेषगुणगुम्फिता । अज्ञानतिमिरज्योतिरनुग्रहपरायणा ॥
५. अभिरामानवद्याङ्ग्यनन्तसाराकलङ्किनी । आरोग्यदाऽऽनन्दवल्ली त्वापन्नार्तिविनाशिनी ॥
६. आश्चर्यमूर्तिरायुष्या ह्याढ्याऽऽद्याऽऽप्राऽऽर्यसेविता । आप्यायिन्याप्तविद्याऽऽख्या त्वानन्दाऽऽश्वासदायिनी ॥
७. आलस्यघ्न्यापदां हन्त्री ह्यानन्दामृतवर्षिणी । इरावतीष्टदात्रीष्टा त्विष्टापूर्तफलप्रदा ॥

है, ऐसी, ७८ **इहामुत्र शुभप्रदा**—इहलोक और परलोकमें कल्याण प्रदान करनेवाली, ७९ **इज्याशीलसमिज्ज्येष्ठा**—यज्ञ आदि करनेवाले कर्मनिष्ठ तथा समस्वरूप ब्रह्मका विचार करनेवाले ज्ञानी, दोनोंमें श्रेष्ठ अथवा इन दोनोंके लिये श्रेष्ठ मानकर पूजनीय, ८० **इन्द्रादिपरिवन्दिता**—इन्द्र आदि देवताओंद्वारा वन्दित।[१]

८१ **इलालङ्कारमाला**—पृथ्वीको विभूषित करनेवाली पुष्पमालाके सदृश, ८२ **इद्धा**—दीप्तिमती अथवा प्रकाशस्वरूपा, ८३ **इन्दिरा**—लक्ष्मीस्वरूपा, ८४ **रम्यमन्दिरा**—भगवच्चरणारविन्द, ब्रह्मकमण्डलु तथा भगवान् शंकरका मस्तक—ये सब रमणीय आश्रय हैं जिसके, ऐसी, ८५ **इदिन्दिरादिसंसेव्या**—निरन्तर लक्ष्मी आदि देवियोंके सेवन करने योग्य, ८६ **ईश्वरी**—ऐश्वर्यसम्पन्न, ८७ **ईश्वरवल्लभा**—शंकरप्रिया।[२]

८८ **ईतिभीतिहरा**—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी पड़ना, चूहे लगना, तोते आदि पक्षियोंकी अधिकता और दूसरे राजाकी चढ़ाई—इन छः प्रकारके उपद्रवोंका भय दूर करनेवाली, ८९ **ईड्या**—स्तवन करने योग्य, ९० **ईडनीयचरित्रभृत्**—स्तुत्य चरित्र धारण करनेवाली, ९१ **उत्कृष्टशक्तिः**—उत्तम शक्तिसे युक्त, ९२ **उत्कृष्टा**—श्रेष्ठ, ९३ **उडुपमण्डलचारिणी**—चन्द्रमण्डलमें विचरनेवाली।[३]

९४ **उदिताम्बरमार्गा**—जिसके द्वारा आकाशमें मार्गका उदय होता है अथवा जो ऊर्ध्वलोकमें जानेके लिये प्रकाशित मार्गके समान है, ऐसी, ९५ **उस्रा**—उज्ज्वल किरणके समान प्रकाशमान, ९६ **उरगलोकविहारिणी**—पाताललोकमें प्रवाहित होनेवाली, ९७ **उक्षा**—भूतलको सींचनेवाली, ९८ **उर्वरा**—भूमिको उर्वरा (उपजाऊ) बनानेमें हेतु, ९९ **उत्पला**—कमलस्वरूपा, १०० **उत्कुम्भा**—जिसमें भरे जानेवाले कलश उत्कृष्ट हो जाते हैं, वह, १०१ **उपेन्द्रचरणद्रवा**—भगवान् वामनके चरण पखारनेसे प्रकट चरणोदकस्वरूपा।[४]

१०२ **उदन्वत्पूर्तिहेतुः**—समुद्रको पूर्ण करनेमें कारणभूत, १०३ **उदारा**—उत्तम गति प्रदान करनेमें उदार, १०४ **उत्साहप्रवर्द्धिनी**—अपने आश्रितोंका उत्साह बढ़ानेवाली, १०५ **उद्वेगघ्नी**—घबराहट अथवा भयको मिटानेवाली, १०६ **उष्णशमनी**—गर्मीको शान्त करनेवाली, १०७ **उष्णरश्मिसुताप्रिया**—सूर्यकन्या यमुनाकी प्रिय सखी।[५]

१०८ **उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी**—ब्रह्मशक्ति, विष्णुशक्ति तथा रुद्रशक्तिके रूपमें उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाली, १०९ **उपरिचारिणी**—पृथ्वी अथवा स्वर्गलोकके ऊपर विचरनेवाली, ११० **ऊर्जवहन्ती**—बलवर्द्धक जलको प्रवाहित करनेवाली, १११ **ऊर्जधरा**—बल अथवा प्राणशक्तिको धारण करनेवाली, ११२ **ऊर्जावती**—बल अथवा प्राणशक्तिका आश्रय, ११३ **ऊर्मिमालिनी**—तरंग-मालाओंसे युक्त।[६]

११४ **ऊर्ध्वरेतःप्रिया**—ऊर्ध्वरेता महात्माओंको प्रिय लगनेवाली, ११५ **ऊर्ध्वाध्वा**—जिसका मार्ग ऊपर विष्णुलोककी ओर गया है, ऐसी, ११६ **ऊर्मिला**—लहरोंको धारण करनेवाली अथवा भक्तोंके शोक, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा, पिपासा—इन छः ऊर्मियोंको ग्रहण करनेवाली, ११७ **ऊर्ध्वगतिप्रदा**—अपने सम्पर्कमें आये हुए मुमूर्षुओंको ऊर्ध्वगति (स्वर्ग एवं मोक्ष) प्रदान करनेवाली, ११८ **ऋषिवृन्दस्तुता**—महर्षियोंके समुदायसे प्रशंसित, ११९ **ऋद्धिः**—समृद्धिस्वरूपा, १२० **ऋणत्रयविनाशिनी**—देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋणका नाश करनेवाली।[७]

१२१ **ऋतम्भरा**—ऋत अर्थात् सत्य एवं ब्रह्मका

---

१. इतिहासश्रुतीड्यार्था त्विहामुत्रशुभप्रदा। इज्याशीलसमिज्ज्येष्ठा त्विन्द्रादिपरिवन्दिता॥
२. इलालङ्कारमालेद्धा त्विन्दिरा रम्यमन्दिरा। इदिन्दिरादिसंसेव्या त्वीश्वरीश्वरवल्लभा॥
३. ईतिभीतिहरेड्या च त्वीडनीयचरित्रभृत्। उत्कृष्टशक्तिरुत्कृष्टोडुपमण्डलचारिणी॥
४. उदिताम्बरमार्गोस्रोरगलोकविहारिणी। उक्षोर्वरोत्पलोत्कुम्भा उपेन्द्रचरणद्रवा॥
५. उदन्वत्पूर्तिहेतुश्चोदारोत्साहप्रवर्द्धिनी। उद्वेगघ्न्युष्णशमनी ह्युष्णरश्मिसुताप्रिया॥
६. उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिण्युपरिचारिणी। ऊर्जवहन्त्यूर्जधरोर्जावती चोर्मिमालिनी॥
७. ऊर्ध्वरेतःप्रियोर्ध्वाध्वा ह्यूर्मिलोर्ध्वगतिप्रदा। ऋषिवृन्दस्तुतर्द्धिश्च ऋणत्रयविनाशिनी॥

आश्रय लेनेवाली बुद्धिस्वरूपा, **१२२ ऋद्धिदात्री**—समृद्धि देनेवाली, **१२३ ऋक्स्वरूपा**—ऋग्वेदरूपिणी, **१२४ ऋजुप्रिया**—सरल स्वभाववाले साधु महात्माओंको प्रिय लगनेवाली, **१२५ ऋक्षमार्गवहा**—नक्षत्रलोकके मार्गसे बहनेवाली, **१२६ ऋक्षार्चिः**—ताराओंके सदृश उज्ज्वल कान्तिवाली, **१२७ ऋजुमार्गप्रदर्शिनी**—धर्म एवं मोक्षका सरल मार्ग दिखानेवाली।[1]

१२८ एधिताखिलधर्मार्था—सम्पूर्ण धर्म और अर्थको बढ़ानेवाली, **१२९ एका**—अपने ढंगकी अकेली, **१३० एकामृतदायिनी**—एकमात्र अमृतस्वरूप ब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाली, **१३१ एधनीयस्वभावा**—जिसके दया, उदारता आदि स्वाभाविक गुण निरन्तर बढ़ने योग्य हों, ऐसी **१३२ एज्या**—पूजनीया, **१३३ एजिताशेषपातका**—सम्पूर्ण पातकोंको कम्पित करनेवाली।[2]

१३४ ऐश्वर्यदा—अणिमा, महिमा आदि ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली, **१३५ ऐश्वर्यरूपा**—भगवद्विभूतिस्वरूपा, **१३६ ऐतिह्यम्**—इतिहासस्वरूपा, **१३७ ऐन्दवीद्युतिः**—चन्द्रमाकी कान्तिरूपा, **१३८ ओजस्विनी**—शक्तिमती, **१३९ ओषधीक्षेत्रम्**—अन्न पैदा करनेका क्षेत्र, **१४० ओजोदा**—बल एवं तेज प्रदान करनेवाली, **१४१ ओदनदायिनी**—धानकी पैदावार बढ़ाकर भात देनेवाली, अथवा अन्नदायिनी अन्नपूर्णारूपा।[3]

१४२ ओष्ठामृता—जिसका जल ओष्ठके भीतर आनेपर अमृतके समान प्रतीत होता है अथवा जिसके ओष्ठमें अमृत हो, वह, **१४३ औन्नत्यदात्री**—आध्यात्मिक, लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति प्रदान करनेवाली, **१४४ भवरोगिणाम् औषधम्**—संसार-रोगसे ग्रस्त प्राणियोंके लिये ओषधिरूपा, **१४५ औदार्यचञ्चुरा**—उदारतामें कुशल, **१४६ औपेन्द्री**—उपेन्द्र अर्थात् वामनरूपधारी विष्णुकी पत्नी लक्ष्मीस्वरूपा अथवा विष्णुकी चरणोदकस्वरूपा, **१४७ औग्री**—रुद्रकी शक्ति, **१४८ औमेयरूपिणी**—उमाके सदृश रूपवाली।[4]

१४९ अम्बराध्ववहा—आकाशमार्गपर बहनेवाली, **१५० अम्बष्ठा**—अ अर्थात् विष्णुकी शरण लेनेवाले वैष्णवोंको अम्ब कहते हैं; उनमें स्थित होनेवाली, **१५१ अम्बरमाला**— आकाशमें पुष्पहारके समान शोभा पानेवाली, **१५२ अम्बुजेक्षणा**—कमलरूप अथवा कमल-सदृश नेत्रोंवाली, **१५३ अम्बिका**—जगदम्बास्वरूपा, **१५४ अम्बुमहायोनिः**—जलकी उत्पत्तिका मूल कारण, **१५५ अन्धोदा**—अन्न देनेवाली, **१५६ अन्धकहारिणी**—अन्धकासुरका नाश करनेवाले शिवकी शक्ति अथवा अज्ञानान्धकारका नाश करनेवाली।[5]

१५७ अंशुमाला—तेजका समुदाय, **१५८ अंशुमती**—तेजोमयी, **१५९ अङ्गीकृतषडानना**—छः मुखोंवाले स्कन्दको पुत्ररूपमें स्वीकार करनेवाली, **१६० अन्धतामिस्रहन्त्री**—अन्धतामिस्र आदि नरकोंका निवारण करनेवाली, **१६१ अन्धुः**—कूपमात्रमें स्वयं प्रकट होनेवाली, **१६२ अञ्जना**—आध्यात्मिक दृष्टिको शुद्ध करनेके लिये दिव्य अंजनरूपा अथवा हनुमान्‌जीको जन्म देनेवाली अंजनास्वरूपा, **१६३ अञ्जनावती**—ईशानकोणकी रक्षा करनेवाली हस्तिनी, अंजनावतीसे अभिन्न।[6]

१६४ कल्याणकारिणी—सबका कल्याण करनेवाली, **१६५ काम्या**—कमनीया, **१६६ कमलोत्पलगन्धिनी**—कमल और उत्पलकी सुगन्धसे सुवासित, **१६७ कुमुद्वती**—कुमुद पुष्पोंसे युक्त, **१६८ कमलिनी**—कमल पुष्पोंसे अलंकृत, **१६९ कान्तिः**—दीप्तिमयी, **१७० कल्पितदायिनी**—मनोवांछित वस्तु देनेवाली।[7]

१. ऋतम्भरर्द्धिदात्री च ऋक्स्वरूपा ऋजुप्रिया। ऋक्षमार्गवहर्क्षार्चिर्ऋजुमार्गप्रदर्शिनी॥
२. एधिताखिलधर्मार्था त्वेकैकामृतदायिनी। एधनीयस्वभावैज्या त्वेजिताशेषपातका॥
३. ऐश्वर्यदैश्वर्यरूपा ह्यैतिह्यं ह्यैन्दवीद्युतिः। ओजस्विन्योषधीक्षेत्रमोजोदौदनदायिनी॥
४. ओष्ठामृतौन्नत्यदात्री त्वौषधं भवरोगिणाम्। औदार्यचञ्चुरौपेन्द्री त्वौग्री ह्यौमेयरूपिणी॥
५. अम्बराध्ववहाम्बष्ठाम्बरमालाम्बुजेक्षणा। अम्बिकाम्बुमहायोनिरन्धोदान्धकहारिणी॥
६. अंशुमाला ह्यंशुमती त्वङ्गीकृतषडानना। अन्धतामिस्रहन्त्र्यन्धुरञ्जना ह्यञ्जनावती॥
७. कल्याणकारिणी काम्या कमलोत्पलगन्धिनी। कुमुद्वती कमलिनी कान्तिः कल्पितदायिनी॥

१७१ काञ्चनाक्षी—सुवर्णके समान उद्दीप्त नेत्रोंवाली, **१७२ कामधेनुः**—भक्तोंकी मनोवांछा पूर्ण करनेमें कामधेनुके समान अथवा कामधेनुस्वरूपा, **१७३ कीर्तिकृत्**—अपने सुयशका विस्तार करनेवाली, **१७४ क्लेशनाशिनी**—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेशरूप पाँच क्लेशोंका नाश करनेवाली, **१७५ क्रतुश्रेष्ठा**—यज्ञोंसे श्रेष्ठ— अश्वमेध आदि यज्ञोंसे अधिक फल देनेवाली, **१७६ क्रतुफला**—जिसमें स्नान करनेसे यज्ञोंका फल प्राप्त होता है, ऐसी, **१७७ कर्मबन्धविभेदिनी**—शुभाशुभकर्मजनित बन्धनका नाश करनेवाली।[1]

१७८ कमलाक्षी—कमलके समान या कमलरूप नेत्रोंवाली, **१७९ क्लमहरा**—सांसारिक क्लेशको हर लेनेवाली, **१८० कृशानुतपनद्युतिः**—आधिदैविक स्वरूपमें अग्नि और सूर्यके समान कान्तिवाली, **१८१ करुणार्द्रा**—करुणारससे भीगी हुई, **१८२ कल्याणी**—मंगलस्वरूपा, **१८३ कलिकल्मषनाशिनी**—कलिकालमें होनेवाले पापोंका नाश करनेवाली।[2]

१८४ कामरूपा—इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली, **१८५ क्रियाशक्तिः**—क्रियाशक्ति, **१८६ कमलोत्पलमालिनी**—कमल और उत्पलोंकी माला धारण करनेवाली, **१८७ कूटस्था**—ब्रह्मस्वरूपा, **१८८ करुणा**—दयामयी, **१८९ कान्ता**—कान्तिमती, **१९० कूर्मयाना**—कच्छपरूप वाहनवाली, **१९१ कलावती**—चौंसठ कलाओंको जाननेवाली।[3]

१९२ कमला—लक्ष्मीस्वरूपा, **१९३ कल्पलतिका**— कल्पलताके समान सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाली, **१९४ काली**—कालिकास्वरूपा, **१९५ कलुषवैरिणी**—पापोंका नाश करनेवाली, **१९६ कमनीयजला**—कमनीय अर्थात् स्वच्छ जलवाली, **१९७ कम्रा**—मनोहर स्वरूपवाली, **१९८ कपर्दिसुकपर्दगा**—भगवान् शंकरके सुन्दर जटाजूटमें वास करनेवाली।[4]

१९९ कालकूटप्रशमनी—भगवान् शंकरके पीये हुए कालकूट नामक विषकी ज्वालाको शान्त करनेवाली, **२०० कदम्बकुसुमप्रिया**—कदम्बके पुष्पोंमें रुचि रखनेवाली, **२०१ कालिन्दी**—कलिन्दकन्या यमुनास्वरूपा, **२०२ केलिललिता**—क्रीडासे मनोहर प्रतीत होनेवाली, **२०३ कलकल्लोलमालिका**—मनोहर लहरोंकी श्रेणियोंसे सुशोभित।[5]

२०४ क्रान्तलोकत्रया—स्वर्ग, भूतल और पाताल तीनों लोकोंको अपनी धारासे आक्रान्त करनेवाली, **२०५ कण्डूः**—अविद्या और उसके कार्यको खण्डित करनेवाली, **२०६ कण्डूतनयवत्सला**—कण्डू शब्द मृकण्डुका वाचक है, उनके पुत्र मार्कण्डेयजीपर वात्सल्य स्नेह रखनेवाली, **२०७ खड्गिनी**—देवी-रूपसे खड्ग धारण करनेवाली, **२०८ खड्गधाराभा**—तलवारकी धारके समान उज्ज्वल कान्तिवाली, **२०९ खगा**—आकाशमें प्रवाहित होनेवाली, **२१० खण्डेन्दुधारिणी**—अर्धचन्द्र धारण करनेवाली।[6]

२११ खेखेलगामिनी—आकाशमें लीलापूर्वक चलनेवाली, **२१२ खस्था**—आकाश अथवा ब्रह्ममें स्थित, **२१३ खण्डेन्दुतिलकप्रिया**—चन्द्रभाल शिवकी प्रिया अथवा अर्धचन्द्राकार तिलकसे प्रसन्न होनेवाली, **२१४ खेचरी**—आकाशमें विचरण करनेवाली, **२१५ खेचरीवन्द्या**—आकाशमें विहार करनेवाली सिद्धांगनाओंकी वन्दनीया, **२१६ ख्यातिः**—प्रतिष्ठास्वरूपा, **२१७ ख्यातिप्रदायिनी**—प्रतिष्ठा देनेवाली।[7]

---

१. काञ्चनाक्षी कामधेनुः कीर्तिकृत्क्लेशनाशिनी । क्रतुश्रेष्ठा क्रतुफला कर्मबन्धविभेदिनी ॥
२. कमलाक्षी क्लमहरा कृशानुतपनद्युतिः । करुणार्द्रा च कल्याणी कलिकल्मषनाशिनी ॥
३. कामरूपा क्रियाशक्तिः कमलोत्पलमालिनी । कूटस्था करुणा कान्ता कूर्मयाना कलावती ॥
४. कमला कल्पलतिका काली कलुषवैरिणी । कमनीयजला कम्रा कपर्दिसुकपर्दगा ॥
५. कालकूटप्रशमनी कदम्बकुसुमप्रिया । कालिन्दी केलिललिता कलकल्लोलमालिका ॥
६. क्रान्तलोकत्रया कण्डूः कण्डूतनयवत्सला । खड्गिनी खड्गधाराभा खगा खण्डेन्दुधारिणी ॥
७. खेखेलगामिनी खस्था खण्डेन्दुतिलकप्रिया । खेचरी खेचरीवन्द्या ख्यातिः ख्यातिप्रदायिनी ॥